अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर '७४ दूरभाष : ६२११३ पंजीयत क्रमांक ए.जी. ००४६

श्री अमर भारती

वर्ष ११ | महावीरनिर्वाण-विशेषांक | अंक १०, ११, १२ सन् १९७४

मूल्य :

वार्षिक शुल्क	:	१०) रु०
त्रिवार्षिक शुल्क	:	२५) रु०
पंचवार्षिक शुल्क	:	४०) रु०
आजीवन शुल्क	:	१२५) रु०
विशेषांक की एक प्रति	:	५) रु०

गुरुदेव

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज

के

चरणों में सविनय समर्पित

जिनके आशीर्वाद से

यह महान् कार्य

सम्पन्न हो

सका है।

और प्रतापचन्दजी जैन का उदार सहयोग मिला। अतः हम इन सबके बहुत ही आभारी हैं। विशेषांक की रूपरेखा का प्रारूप तैयार करवा कर सभी लेखकों को अपनी-अपनी रचनाएँ भेजने का अनुरोध किया गया। बहुत-से लेखों को, जो विलम्ब से आए थे, इस विशेषांक के अनुरूप नहीं थे, या इसके स्तर के अनुरूप नहीं थे, हमें अलग छांटना पड़ा। हमने यह सावधानी रखी है कि किसी भी लेखक के साथ अन्याय न हो। जिन-जिन लेखकों की रचनाओं को उपर्युक्त कारणवश हम इस विशेषांक में स्थान नहीं दे पाए हैं, उनसे हम सविनय क्षमा चाहते हैं।

खासतौर से हम श्रीप्रेमचन्दजी जैन, प्रो० प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यवसाय के अमूल्य क्षणों में से समय निकाल कर विज्ञापन-व्यवस्था संभाली और अपने प्रेस में द्रुतगति से इतने बड़े विशेषांक के मुद्रण की व्यवस्था भी की। यदि उन्होंने इस ओर ध्यान न दिया होता तो हम इतना शीघ्र इतना सुन्दर अंक पाठकों के हाथों में नहीं पहुँचा सकते थे।

भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धालु विज्ञापनदाताओं के प्रति भी हम कृतज्ञता प्रगट करते हैं, जिन्होंने हमारे अतिरिक्त व्यय की पूर्ति करने में हमें सहयोग दिया। भविष्य में भी हम आशा करते हैं कि वे उदार हृदय से हमें सहयोग देते रहेंगे।

अन्त में, श्रीअमरभारती के समस्त सदस्यों व पाठकों से हम नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं कि उन्हें सितम्बर के अंक के बाद इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी। वास्तव में इस विशेषांक के प्रकाशन के पहले ही हमने यह निश्चय करके सूचित कर दिया था कि यह अंक नवम्बर में प्रकाशित होगा। और यही अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर का संयुक्त अंक होगा। अतः अक्टूबर और दिसम्बर में अलग से अंक प्रकाशित नहीं होंगे।

श्री अमरभारती के इस विशेषांक के प्रकाशन की सफलता का सारा श्रेय तो सेवामूर्ति श्रीअखिलेशजी महाराज और विद्वद्वर्य मुनिश्री नेमिचन्द्रजी महाराज को है, जिनकी सक्रियता और कृपादृष्टि से हम इस अंक को इतना सर्वांगसुन्दर बना सके हैं।

फिर भी इस विशेषांक में कुछ क्षतियाँ रह गई होंगी। दयालु पाठक एवं हमारे सभी शुभचिन्तक उदार हृदय से हमें क्षमा करेंगे।

भगवान् महावीर के इस निर्वाण-विशेषांक से यदि पाठक लाभान्वित हुए और अपने जीवन को उनके उपदेशों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया तो हम अपना प्रयास सार्थक समझेंगे। सुज्ञेषु कि बहुना………… ।

विनीत—

सोनाराम जैन

मन्त्री, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।

आभार दर्शन

राष्ट्रसंत उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी कहा करते हैं—समाज एवं राष्ट्र के कार्य जगन्नाथ का रथ है—हजारों हाथ मिल कर ही इसे खींचते हैं।

श्रीअमरभारती एवं वीरायतन का साहित्य अधिकतर अपने प्रेस में ही छपता है। आदरणीय पिताजी श्रीपदमचन्द जैन की इस कार्य में विशेष रुचि भी है, वे कविश्रीजी के एक निष्ठावान तथा वीरायतन-योजना के अनन्य सहयोगी भी हैं। उन्हीं की प्रेरणा से मैं भी इन कार्यों में विशेष रुचि रखूँ; यह स्वाभाविक है।

गत अगस्त मास में जब भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में श्री अमरभारती का निर्वाण विशेषांक प्रकाशित करने की योजना बनी तो श्रद्धेय श्री अखिलेशमुनिजी तथा लाला कल्याणदासजी जैन आदि के स्नेहभरे आग्रह के कारण मैंने संयोजक का दायित्व स्वीकार कर लिया। दायित्व बहुत बड़ा था और धार्मिक क्षेत्र में मेरा यह पहला ही प्रयत्न था। किन्तु साथियों के सहयोग के विश्वास पर मैंने इस दायित्व को स्वीकार लिया। यह पत्रिका किस रूप में प्रकाशित हुई है तथा कितनी आकर्षक है, इसका निर्णय पाठक करेंगे।

संप्रति समूचे राष्ट्र में भगवान् श्री महावीर की २५ वीं निर्वाणशताब्दी का समायोजन चल रहा है। क्षेत्रीय संस्थाएँ विभिन्न साहित्य व स्मारिका आदि के प्रकाशन में व्यस्त हैं। इस कारण एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र का सहयोग अपेक्षाकृत कम ही मिल पाता है। किन्तु श्रीअमरभारती अखिल भारतीय स्तर की पत्रिका होने से तथा श्रद्धेय कविश्रीजीका राष्ट्रव्यापी प्रभाव होने के कारण श्री अमरभारती को पूरे राष्ट्र का सहयोग प्राप्त हुआ है। यह विशेष गौरव की बात है। विज्ञापनसंग्रह में श्री सुरेन्द्रसिंह गादिया, जयपुर; श्री रनजीतसिंह जैन, आगरा; श्री हरीसिंहजी सकलेचा, आगरा का

विशेप सहयोग रहा है। वीरायतन वालिका संघ ने कलकत्ता आदि क्षेत्रों से जो सहयोग प्राप्त किया है, वह आश्चर्यजनक है। नारीशक्ति क्या कर सकती है, और हमारी राष्ट्रीय समायोजनाओं में उसका कितना महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है, इसकी कल्पना तव साकार हो जाती है; जव वीरायतन वालिका संघ की कार्यशील वहनों के प्रत्यक्ष कर्तव्य को देखते हैं।

मैं उन सवका हार्दिक आभार मानता हूँ, जिन्होंने इस पत्रिका को प्रकाशित करने में सहयोग किया है तथा विज्ञापनदाताओं का भी आभारी हूँ, जिनके सहयोग से इतना वड़ा कार्य सफल हो सका है।

—प्रेमचन्द जैन, आगरा

सम्पादक-मण्डल

मुख्य-संपादक—मुनि नेमिचन्द्रजी

मुनि समदर्शी 'प्रभाकर'

पं० विजयमुनिजी शास्त्री

साध्वी चन्दनाजी

सम्पादक-मंडल

श्रीचन्द सुराना—प्रवन्ध-सम्पादक

श्रीप्रतापचंद जैन, आगरा

डॉ० चन्दनलाल पाराशर
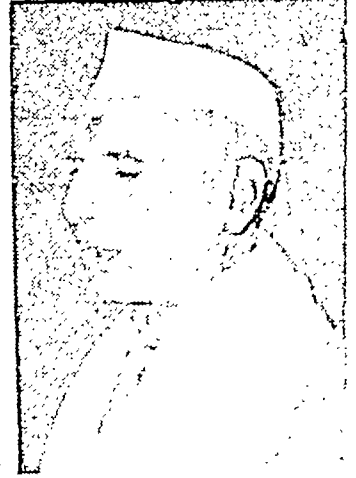
पं० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी
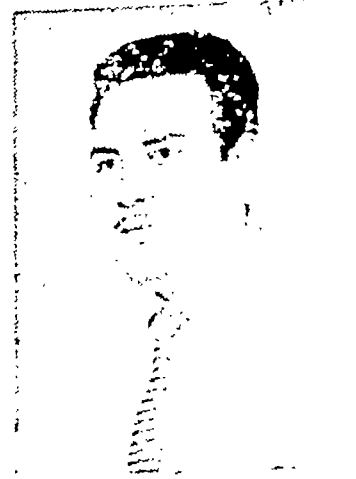
महावीरप्रसाद जैन एम० ए०

सामान्यत: मनुष्य जन्म पर उत्सव मनाता है और मृत्यु पर शोक ! पर तत्त्व-चिन्तकों की कल्पना में दोनों ही उत्सव हैं। जन्म कथा का प्रारम्भ है, मृत्यु उपसंहार ! जिस प्रकार मन्दिर की शोभा का चरमरूप कलश में अभिव्यक्त होता है, वैसे ही जीवन-मन्दिर की चरम शोभा मृत्युरूप कलश द्वारा प्रकट होती है। इसलिए मृत्यु, जीवनभर की कृतार्थताओं का एक लेखामात्र माना जा सकता है।

मृत्यु और निर्वाण समानार्थक शब्द नहीं हैं, दोनों की ध्वनि, संकेत और दृष्टियाँ बहुत भिन्न हैं। यद्यपि 'निर्वाण' का अर्थ 'दीपक' का विराम हो जाना मान लिया है, पर निर्वाण शब्द अपनी इस अर्थाभिव्यक्ति के लिए कसमसाने लगता है। मृत्यु सिर्फ पटाक्षेप है, वस्त्रपरिवर्तन है, किन्तु निर्वाण जन्मपरम्परा का समूल उच्छेद सूचित करता है। वासना और विकारों का सर्वथा क्षय, जन्म-जन्म से चले आ रहे रागात्मक संस्कारों का सम्पूर्ण-विलय 'निर्वाण' की ध्वनि है। और साथ ही इसमें परम ज्योति के अनावरण की सूचना भी है। 'निर्वाण' की यह सूचना बड़ी विचित्र है। पूर्व संस्कारों का सम्पूर्ण-निर्वाण (विलय) और चिन्मयज्योति का निरावरण रूप-निर्वाण-निर्वाणशब्द की ये दोनों अर्थाभिव्यक्तियाँ—इसके वैशिष्ट्य का दर्शन करा देती हैं। भगवान् महावीर का निर्वाणदर्शन या निर्वाणसाधना निर्वाण शब्द के इन दोनों अर्थों को जागृत करती है—उनकी साधना का सम्पूर्ण प्रयोजन भी इतना मात्र है—रागात्मक संस्कारों का सम्पूर्ण क्षय कर डालो, और अपने आपको, अपने ज्योतिर्मय रूप को निरावरण कर दो, प्रकट कर दो ! आवरण व्यर्थ है, निरावरण-धर्म है।

आज हम उस निर्वाणवादी परम पुरुष की २५वीं निर्वाणशताब्दी मना रहे हैं। हमें गौरव है, हमारे इस समारोह में सम्पूर्ण देश की जनता, विश्व का प्रबुद्ध जनमत श्रद्धा के साथ सहयोगी बन रहा है और आज समग्र मानवजाति के लिए महावीर के संदेशों की कल्याणकारिता सार्थक हो रही है।

निर्वाणशताब्दी की पावन स्मृति में भारत के पूर्वांचल में जहाँ महावीर का जन्म हुआ, महावीर जहाँ की मिट्टी में खेले थे, जिन जंगलों और नदीतटों पर महावीर ने साधना की थी, गंगा के उस तटवर्ती प्रदेश में जहाँ महावीर की पतित पावनी वचन-गंगा प्रवाहित हुई थी, जिस विदेहभूमि में—विदेहभाव की उत्कृष्ट साधना करते हुए अपने आपको निरावरण कर परमनिर्वाण प्राप्त कर स्वयं के ज्योतिर्मय रूप को प्रकट किया था—उस ज्ञान-सूर्योदय वाले प्रदेश में आज महावीर का सच्चा स्मारक बन रहा है, उनके आदर्शों और उपदेशों का एक जीता-जागता नगर बस रहा है—वीरायतन। वीरायतन—आने वाली शताब्दी में महावीर की आत्मा का ज्योतिर्मान केन्द्र होगा। इस पुनीत निर्माण में आज दत्तचित्त हैं—मनीषीप्रवर राष्ट्रसंत उपाध्याय श्रीअमरमुनि।

'श्री अमर भारती' भगवान् महावीर की निर्वाणशताब्दी के प्रसंग पर महावीर का निर्वाण-संदेश अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रही है, वहाँ महावीर का ज्योतिर्मान

स्मारक वनाने के लिए देश के उदार-विचारकों और कर्मशक्ति को आह्वान करती है 'वीरायतन' के लिए ।

प्रस्तुत विशेपांक—'निर्वाणविशेपांक के रूप में पाठकों के हाथों में है। इस का हर पृष्ठ और हर पंक्ति निर्वाण की भावना एवं निर्वाण की ध्वनि लिए हो, यह हमारा प्रयत्न रहा है। सामग्री का चयन भी इसी दृष्टि से किया गया है कि पाठक इसमें सामयिकता के साथ-साथ शाश्वतता का भी आनन्द अनुभव करें।

निर्वाणविशेपांक की कल्पना तो सहज ही थी, इसको प्राणवान वनाने का श्रेय है—उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी के एकनिष्ठ सेवाभावी संत श्री अखिलेशमुनिजी को। वे ही इस आयोजन के सच्चे प्राणदाता कहे जा सकते हैं। परिकल्पना, व्यवस्था और सामग्री-चयन तक उनका अनवरत सहयोग रहा है। श्रीअमरभारती-परिवार उनके उदात्त अध्यवसाय के प्रति कृतज्ञ है।

हम अपने आदरणीय विद्वानों, मुनिवरों एवं साथी लेखकों का स्नेह एवं सहयोग पा कर कृतार्थ हैं। आशा से अधिक, काफी अधिक सामग्री आई। लगभग दो विशेपांकों की सामग्री तो सुरक्षित रख दी गई है। इसमें उपयोग उन्हीं रचनाओं का हुआ है—जो मुख्यतः निर्वाणसाधना की दृष्टि लिए हुए थी और जो समय पर प्राप्त हो गई। प्राप्त सामग्री को सूक्ष्मदृष्टि से देखना, व्यवस्थित करना और संवर्धन-परिवर्तन के साथ पत्रिका के स्तर के अनुरूप देना, यह सव श्रेय कर्मठ एवं विचारक मुनिश्री नेमिचन्द्रजी को है। इस पत्रिका के वे प्राण-प्रतिष्ठापक हैं। लगभग तीन मास से वे १६-१८ घंटा सतत श्रम करके इस विशेपांक के रूप को निखारने में जुटे हैं। हम उनके प्रति शाब्दिक आचार प्रकट करें तो उनकी सतत कर्मयोग-साधना का एक मजाक हो जायेगा, उनका तो सव कुछ है ही। मुनि श्रीसमदर्शीजी, विद्वद्वर श्रीदलसुखभाई विचारों के धनी हैं। लेखनी के जादूगर हैं। हम तो इसी प्रकार उनके निरपेक्ष सहयोग की कामना करते हैं।

हमारे सम्पादन-सहयोगी श्री प्रतापचन्दजी जैन, श्री महावीरप्रसादजी जैन, पं० चन्द्रभूपणजी त्रिपाठी आदि हैं। राज्यों का वहुमूल्य मार्गदर्शन एवं सेवाभाव युक्त सहयोग मिला है, जिसके लिए श्री अमरभारती-परिवार कृतज्ञ रहेगा।

पत्रिका के लिए अर्थसाधन जुटाने में विज्ञापनों का अपना महत्त्व है। आज की स्थिति में विज्ञापन के विना पत्र-पत्रिकाएँ चल नहीं सकतीं—यह सच्चाई है। हम उन समस्त विज्ञापनदाताओं के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। विज्ञापनसंग्रह करने में—वीरायतन वालिका संघ, राजगृह तथा श्रीयुत प्रेमचन्दजी जैन आगरा का जो आत्मीय सहयोग मिला है उसके लिए आभारदर्शन। पत्रिका को इतने कम समय में इतनी सुन्दर छापने और सभी दृष्टियों से समर्थ वनाने में श्रीप्रेमचन्दजी जैन (प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस) का अनुकरणीय सहयोग सदा मिलता रहा है, मिलता रहेगा, यह विश्वास है।

अनेक कठिनाइयों, समस्याओं और समय की कमी के वावजूद हजारों श्रद्धालु-भक्तों के सहयोग से हम समस्याओं की वैतरणी को पार कर निर्वाण-साहित्य के नन्दन वन में आ पहुँचे और अपने प्रिय पाठकों को निर्वाण-विशेपांक का अमर फलसमर्पित कर रहे हैं।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रथम खण्ड—जीवनरेखा

द्वितीय खण्ड—सिद्धान्त

तृतीय खण्ड—उपदेश

चतुर्थ खण्ड—वीरायतन

संदेश

उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली

Vice President
India

अक्तूबर २७, १९७४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक १४ अक्टूबर १९७४ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद ! मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आप श्री अमर भारती मासिक पत्रिका का भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दि के उपलक्ष में एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूँ।

आपका

B. D. Jatti

(ब० दा० जत्ती)

उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली

Vice President
India

अक्तूबर २७, १९७४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक १४ अक्टूबर १९७४ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद ! मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आप श्री अमर भारती मासिक पत्रिका का भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दि के उपलक्ष में एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूँ।

आपका

B. D. Jatti

(ब० दा० जत्ती)

No. 41/MA-1/74
सिंचाई व कृषि मन्त्री
भारत सरकार
नई दिल्ली

Minister of Agriculture
Government of India
New Delhi 110001

दिनांङ्क 18 अक्टूबर 74

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा के तत्वावधान में श्रीअमरभारती पत्रिका का महावीरजी के २५००वें निर्वाणदिवस के उपलक्ष में एक निर्वाण-विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है, यह ज्ञात हुआ।

आशा है, विशेषांक में महावीरजी के सिद्धान्तों एवम् उपदेशों का समुचित दिग्दर्शन होगा। विशेषांक उपयोगी सिद्ध हो।

—जगजीवनराम

नौवहन और परिवहनमन्त्री
नई दिल्ली
(भारत)

नवम्बर १३, १९७४

यह हर्ष की बात है कि 'श्री अमरभारती' का 'महावीर-निर्वाण-विशेषांक' भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। आशा है, इस शुभ अवसर पर पत्र भगवान् महावीर के सन्देश एवं उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने में अपना सहयोग देगा। पत्र की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएँ हैं।

—कमलापति त्रिपाठी

H/68200/Cm
विधान भवन
लखनऊ
20 अक्टूबर, 1974

प्रिय श्री त्रिपाठी,

भगवान महावीर की 25वीं निर्वाणशताब्दी के शुभ अवसर पर प्रकाशित होने वाले विशेषांक "महावीर-निर्वाणविशेषांक" के सफल प्रकाशन एवं सम्पादन हेतु मेरी शुभ कामनायें हैं।

आपका
हेमवतीनन्दन बहुगुणा

RAJ BHAVAN
MADRAS-22
28-16-1974.

Message

I am glad to know that a special number of "Amar Bharti" will be published to mark the 2500th Nirvan Anniversary of 'MAHAVIR'. "Ahimsa is the most important tenet of Jainism. Bhagwan Shri Mahavir's immortal message needs wide propagation specially at a time when violence is resorted to for the solution of problems.

K. K. Shah
Governor of TAMILNADU

अर्जुनसिंह
शिक्षामन्त्री
मध्य प्रदेश

No. 2248/ME/74
भोपाल
दिनांक 11-11-1974

मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता है कि भगवान् महावीर की 25वीं निर्वाण शताब्दी के पुण्यावसर पर श्रमण-संस्कृति की प्रतिनिधि पत्रिका "श्रीअमरभारती" ने महावीर-निर्वाण-विशेषांक के प्रकाशन का निश्चय किया है। श्रीअमरभारती ने राष्ट्रसंत कविरत्न 'श्रीअमरमुनि महाराज के उदात्त एवं मानवीय विचारों के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि "महावीर-निर्वाण-विशेषांक में भगवान् महावीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अतिरिक्त उनके आध्यात्मिक विचारों से सम्बन्धित सामग्री का मूल्यवान संकलन होगा। आज विश्व में जब हिंसा, द्वेष, लोभ इत्यादि की आसुरी शक्तियाँ प्रबल हो उठी हैं, भगवान् महावीर के अहिंसा, करुणा, मैत्री और अपरिग्रह के मूलभूत सिद्धान्त मानवकल्याण के एकमात्र आधार हैं।

मुझे आशा है कि विशेषांक भगवान् महावीर के जीवनदर्शन को जन-जन तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा।

—अर्जुनसिंह

राजमंगल पाण्डे
परिवहन, न्याय एवं श्रम मंत्री

विधान भवन
लखनऊ
दिनांक 5 नवम्बर, 1974

मुझे जान कर प्रसन्नता हुई सन्मति ज्ञानपीठ के तत्वावधान में राष्ट्रसंत कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी महाराज के मौलिक एवं उदात्त विचारों का प्रचार-प्रसार करने हेतु आगरा से श्रीअमरभारती नाम की मासिक पत्रिका 12 वर्षों से प्रकाशित हो रही है और अपना विशेषांक—भगवान महावीर की 25वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में महावीर-निर्वाण-विशेषांक प्रकाशित करने जा रही है।

आशा है कि इस विशेषांक द्वारा महावीरजी के आदर्शों एवं उनकी शिक्षा का जन-जन में प्रचार एवं प्रसार होगा।

—राजमंगल पाण्डे

CHIEF MINISTER

Government of Himachal Pradesh

SIMLA-2

संदेश

मुझे यह जान कर अति हर्ष हो रहा है कि 'अमर भारती' महावीरजी की पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

महावीर अहिंसा और मानवता का संदेश प्रसारित कर जनकल्याण के कार्य को समर्पित रहे। मुझे विश्वास है कि अमर भारती मासिक उनके जीवन एवं दर्शन पर प्रकाश डालकर उनके विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार में योग देगा।

मैं विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

य० सि० परमार

यशवन्तसिंह परमार

मुख्य-मन्त्री

जीवनरेखा
प्रथम खण्ड
श्री अमर भारती भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक
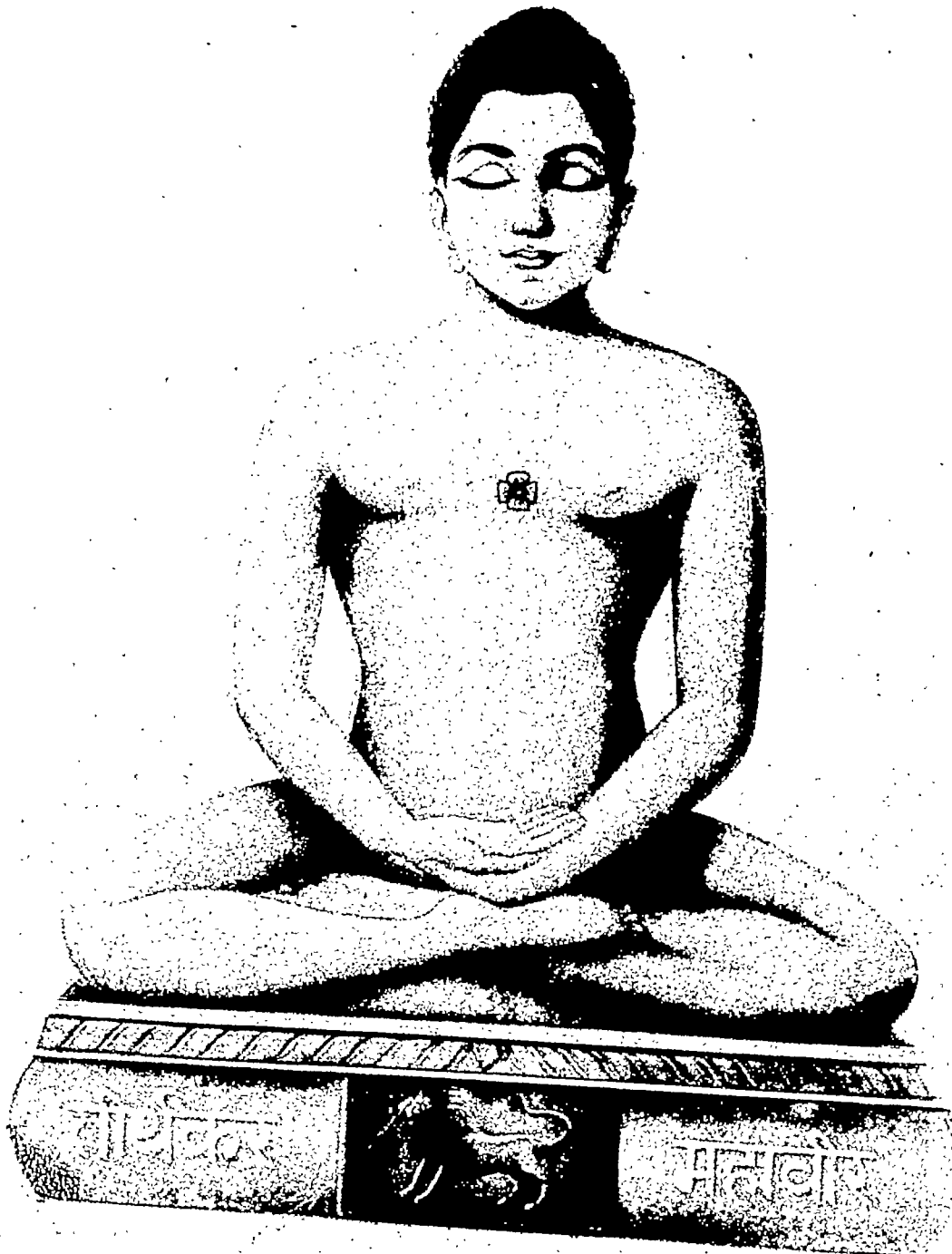
महावीर-वन्दना

(नंदीसूत्र-कृत मंगलाचरण)

जयइ जगजीवजोणी-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥
जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धुयरयस्स ॥

सम्पूर्ण जगत् एवं समस्त जीवयोनियों के (रहस्य के) विज्ञाता, जगद्‌गुरु, प्राणिमात्र को आनन्द देने वाले, चर-अचर प्राणियों के नाथ, विश्ववन्धु, एवं जगत्-पितामह भगवान की जय हो । समग्र श्रुतज्ञान के मूलस्रोत, वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम (चौवीसवें) तीर्थंकर, समस्त लोकों के गुरु, महान् आत्मा (विश्वपूज्य), महावीर की जय हो ।

समस्त विश्व को अपने ज्ञानालोक से प्रकाशित करने वाले, रागद्वेष के विजेता, महान् वीर, देवों और दानवों द्वारा अभिवन्दित, कर्ममल से रहित, परम पवित्र भगवान् महावीर हमारा भद्र करने वाले हैं, अर्थात् समस्त लोक का कल्याण करने वाले हैं ।

वीर-स्तुति

से सव्वदंसी अभिभूय नाणी, निरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।।

से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सुरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ।।

अणुत्तरे धम्ममिणं जिणाणं, नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदेव्व देवाण महाणुभावे, सहस्सणेता दिविणं विसिट्ठे ।।

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा नगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासिमुदागरे से, विरायए णेग—गुणोववेए ।।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं च विसोहइत्ता ।
सिद्धिगते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण ।।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसण-णाण-सीले ।।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चन्दोव्व ताराण महाणुभावे ।
गन्धेसु वा चन्दणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ।।

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठं ।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ।।

हत्थीसु एरावणमाहु णायं, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ।।

जोहेसु णाए जह वीससेण, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ।।

—सूत्रकृतांग सूत्र—'वीरस्तुति'

भगवान् महावीर सब पदार्थों के ज्ञाता एवं द्रष्टा थे, काम, क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं को जीत कर वे केवल ज्ञानी बने थे, वे निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, अटल वीर पुरुष थे, अपने आत्मस्वरूप में स्थिर थे, सारे जगत में सर्वोत्कृष्ट अध्यात्मविद्या के पारगामी थे, समस्त परिग्रहों के त्यागी, निर्भय, मृत्युञ्जयी एवं अजर-अमर थे।

उनकी प्रज्ञा विश्वमंगलकारी थी, वे अप्रतिबद्ध-विहारी थे, संसारसागर को पार करने वाले थे, उपसर्ग-परिषहों को सहने में धीर, अनन्त पदार्थों के साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता, सूर्यसम उत्कृष्ट तेजस्वी, वैरोचन अग्नि के समान अज्ञानान्धकार नष्ट कर ज्ञान के प्रकाशक थे।

वे ऋषभदेव आदि प्रचीन तीर्थंकरों द्वारा प्रचारित अहिंसादि धर्म के पुनरुद्धारक मुनि थे, काश्यपवंश के तेजस्वी सूर्य और महाप्रभावशाली, विलक्षण ज्ञानी थे। देवलोक में असंख्य देवों पर नेतृत्व करने वाले इन्द्र के समान वीरप्रभु भी अपने युग के सर्वप्रधान धर्मनेता थे।

वे वीर्याचार में प्रतिपूर्ण वीर्य (शक्ति) वान थे, सुमेरुपर्वत की तरह सर्वश्रेष्ठ थे। स्वर्गवासी देवों के लिए प्रमोद के धाम थे, सत्य, शील आदि अनेक गुणों से सुशोभित थे।

परम महर्षि महावीर ने समस्त कर्मों को सदा के लिए निर्मूल करके लोक के अग्रभाग में स्थित, सर्वप्रधान, सादि, अनन्त, उत्तम सिद्धिगति को प्राप्त कर लिया। फलत: अपने ज्ञान, दर्शन एवं शील के द्वारा कर्म-बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली।

संसारप्रसिद्ध पर्वतराज सुमेरु की तरह भ० महावीर भी तीन लोक में महायशस्वी थे। धर्मसाधना में अतीव उग्रश्रम करने वाले ज्ञात-पुत्र महावीर जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील आदि सद्‌गुणों में सर्वश्रेष्ठ थे।

जिस प्रकार शब्दों में मेघगर्जना का शब्द अनुपम है, तारामण्डल में चन्द्र महाप्रभावशाली है, सुगन्धित पदार्थों में बावना चंदन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार भूमंडल के समस्त मुनियों में इहलोक-परलोक की वासना से सर्वथा मुक्त भ० महावीर श्रेष्ठ थे।

जिस प्रकार सब समुद्रों में स्वयंभूरमण प्रधान है, नागकुमार जाति के भवनपति देवों में धरणेन्द्र प्रधान है, सर्वरसों में ईक्षुरस प्रधान है, उसी प्रकार तपश्चरण की साधना के क्षेत्र में भ० महावीर सर्वप्रधान थे।

जिस प्रकार हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हाथी मुख्य है। पशुओं में सिंह मुख्य है, नदियों में गंगानदी मुख्य है, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़पक्षी मुख्य है, उसी प्रकार निर्वाणवादी उपदेशकों में ज्ञातपुत्र महावीर मुख्य थे।

जिस प्रकार वीर योद्धाओं में वासुदेव महान् है, फूलों में अरविन्द कमल महान् है, क्षत्रियों में चक्रवर्ती महान् है, उसी प्रकार ऋषियों में श्री वर्द्धमान भगवान् महावीर सबसे महान् थे।

—:०:—

वीर-स्तुति

से सव्वदंसी अभिभूय नाणी, निरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।।

से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सुरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ।।

अणुत्तरे धम्ममिणं जिणाणं, नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदेव्व देवाण महाणुभावे, सहस्सणेता दिविणं विसिट्ठे ।।

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा नगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासिमुदागरे से, विरायए णेग—गुणोववेए ।।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं च विसोहइत्ता ।
सिद्धिगते साइमणंतपत्तो, नाणेण सीलेण य दंसणेण ।।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसण-णाण-सीले ।।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चन्दोव्व ताराण महाणुभावे ।
गन्धेसु वा चन्दणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ।।

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ।।

हत्थीसु एरावणमाहु णायं, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ।।

जोहेसु णाए जह वीससेण, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ।।

—सूत्रकृतांग सूत्र—'वीरस्तुति'

भगवान् महावीर सब पदार्थों के ज्ञाता एवं द्रष्टा थे, काम, क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं को जीत कर वे केवल ज्ञानी बने थे, वे निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, अटल वीर पुरुष थे, अपने आत्मस्वरूप में स्थिर थे, सारे जगत में सर्वोत्कृष्ट अध्यात्मविद्या के पारगामी थे, समस्त परिग्रहों के त्यागी, निर्भय, मृत्युञ्जयी एवं अजर-अमर थे।

उनकी प्रज्ञा विश्वमंगलकारी थी, वे अप्रतिबद्ध-विहारी थे, संसारसागर को पार करने वाले थे, उपसर्ग-परिषहों को सहने में धीर, अनन्त पदार्थों के साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता, सूर्यसम उत्कृष्ट तेजस्वी, वैरोचन अग्नि के समान अज्ञानान्धकार नष्ट कर ज्ञान के प्रकाशक थे।

वे ऋषभदेव आदि प्राचीन तीर्थंकरों द्वारा प्रचारित अहिंसादि धर्म के पुनरुद्धारक मुनि थे, काश्यपवंश के तेजस्वी सूर्य और महाप्रभावशाली, विलक्षण ज्ञानी थे। देवलोक में असंख्य देवों पर नेतृत्व करने वाले इन्द्र के समान वीरप्रभु भी अपने युग के सर्वप्रधान धर्मनेता थे।

वे वीर्याचार में प्रतिपूर्ण वीर्य (शक्ति) वान थे, सुमेरुपर्वत की तरह सर्वश्रेष्ठ थे। स्वर्गवासी देवों के लिए प्रमोद के धाम थे, सत्य, शील आदि अनेक गुणों से सुशोभित थे।

परम महर्षि महावीर ने समस्त कर्मों को सदा के लिए निर्मूल करके लोक के अग्रभाग में स्थित, सर्वप्रधान, सादि, अनन्त, उत्तम सिद्धिगति को प्राप्त कर लिया। फलतः अपने ज्ञान, दर्शन एवं शील के द्वारा कर्म-बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली।

संसारप्रसिद्ध पर्वतराज सुमेरु की तरह भ० महावीर भी तीन लोक में महायशस्वी थे। धर्मसाधना में अतीव उग्रश्रम करने वाले ज्ञात-पुत्र महावीर जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील आदि सद्गुणों में सर्वश्रेष्ठ थे।

जिस प्रकार शब्दों में मेघगर्जना का शब्द अनुपम है, तारामण्डल में चन्द्र महाप्रभावशाली है, सुगन्धित पदार्थों में बावना चंदन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार भूमंडल के समस्त मुनियों में इहलोक-परलोक की वासना से सर्वथा मुक्त भ० महावीर श्रेष्ठ थे।

जिस प्रकार सब समुद्रों में स्वयंभूरमण प्रधान है, नागकुमार जाति के भवनपति देवों में धरणेन्द्र प्रधान है, सर्वरसों में ईक्षुरस प्रधान है, उसी प्रकार तपश्चरण की साधना के क्षेत्र में भ० महावीर सर्वप्रधान थे।

जिस प्रकार हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हाथी मुख्य है। पशुओं में सिंह मुख्य है, नदियों में गंगानदी मुख्य है, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़पक्षी मुख्य है, उसी प्रकार निर्वाणवादी उपदेशकों में ज्ञातपुत्र महावीर मुख्य थे।

जिस प्रकार वीर योद्धाओं में वासुदेव महान् है, फूलों में अरविन्द कमल महान् है, क्षत्रियों में चक्रवर्ती महान् है, उसी प्रकार ऋषियों में श्री वर्द्धमान भगवान् महावीर सबसे महान् थे।

—:o:—

भगवान महावीर के चरणों में

हे ज्योतिपुंज जय वीर ! सत्य का ज्ञाता द्रष्टा तू ।
हे महाप्राण ! मूर्च्छित जनमन का जीवन-स्रष्टा तू ॥
हे जिन ! प्रभात तू सघन तमस् से घिरती संसृति का ।
हे निर्विकार ! परिशोधक मानवता की संस्कृति का ॥

●

तू ने अपने अन्तर्तम का सोया देव जगाया ।
तू ने नर से नारायण तक अपने को पहुँचाया ॥
सीमित नरतन में असीम की ज्ञानचेतना जागी ।
जन्म-जन्म की धूमिल कलुषित मोह-चेतना भागी ॥

●

तेरी वाणी जगकल्याणी, प्रखर सत्य की धारा ।
खण्ड-खण्ड हो गई दम्भ की, अन्धाग्रह की कारा ॥
'सत्य एक है', उस पर 'तेरे-मेरे' का क्या अंकन ?
विश्व-समन्वय कर देता है, तेरा यह उद्‌बोधन ॥

●

तू उन अन्धों की आँख भटकते ठोकर खाते जो ।
तू उन अबलों की लाठी, प्रताड़ित अश्रु बहाते जो ॥
मानवता के महामन्त्र का दाता तू गुरुवर है ।
अस्तंगत जो कभी न होगा, ऐसा तू दिनकर है ॥

●

जाति-पंथ-भेदों से ऊपर, तू सबका सब तेरे ।
देश-काल वह कौन तुझे जो सीमाओं में घेरे ॥
तू अनन्त है, अजर अमर है तेरा जीवन-दर्शन ।
अखिल विश्व का तव चरणों में हो निर्वाणगामी वन्दन ॥

—उपाध्याय अमरमुनि

वीर-वन्दना

सुप्रसिद्ध संगीतकार श्री प्यारे लाल 'सरस' जैनकाव्य की रसधारा के प्रमुख गायक हैं।

□

ए वीर तेरी वन्दना !
बर्बर था दानव था जगती का हर मनुष्य।
अन्धकार में विलीन हो चुका था भविष्य ।।
सम्मति का दीप जला दूर की विडम्बना

अनेकान्त की अमूल्य देन दी समष्टि को।
अहिंसा सुपाठ पढ़ा सुखी किया सृष्टि को ।।
जन-जन मन हर्षाया आई नव चेतना

स्वयं—जीत जैन है, न फक्त नामधारी।
धर्म है विवेक ही, न रूढ़ी दुखकारी ।।
भटकी मानवता को दी सुबोध सान्त्वना

धन्य मात त्रिशला है धन्य तात सिद्धारथ।
धन्य नगर वैशाली धन्य भूमि भारत ।।
धन्य शिष्य गौतम हे धन्य सती चन्दना

रत्नत्रय—पालन से मानस की शुद्धि हो।
तेरे सत्पन्थ चलूँ प्रभू यही बुद्धि हो ।।
'सरस' जन्म सार्थक हो तेरी कर अर्चना

—प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस पंडित', उज्जैन

निर्वाणवादी महावीर की जन्मभूमि :

—प्रमोद मधुर, अम्बाला

इन दिनों भगवान् महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें धूमधाम से मना रही है। उनके जन्म के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। मगर इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि महावीर का जन्म वैशालीराज्य के कुण्डग्राम में हुआ था। महावीर अब मात्र पुराणों की गाथा न रह कर इतिहास की घटनाओं का क्रम प्रमाणित हो गये हैं।

डा० हीरालाल जैन ने लिखा है—प्राचीन वैशाली के समीप ही एक वासुकुण्ड नामक ग्राम है, जहां के निवासी परम्परा से एक स्थल को महावीर की जन्मभूमि मानते आये हैं और उसके प्रति पूजाभाव से उस पर कभी हल नहीं चलाया गया। समीप ही एक विशाल कुण्ड है, जो अब भर गया है और जोता-बोया जाता है। वैशाली की खुदाई में ऐसी प्राचीन मुद्रा मिली है, जिसमें "वैशाली नाम कुण्डे" ऐसा उल्लेख है।

मगर किसी भूमि का एक अज्ञात अवधि से जोता-बोया नहीं जाना, कोई विशेष महत्व नहीं रखता। तब गांवों में गो-चरभूमियाँ रखने का प्रचलन था, जिस पर सामूहिक अधिकार होता था। इन्हें जोता-बोया नहीं जाता था और ऐसे घास-फूस प्राकृतिक रूप में उपजते रहते थे, जो पशुओं की उदर पूर्ति में साधन बनते थे। आज भी गाँवों में ऐसे चरागाह मिलेंगे।

महान इतिहासकार श्री विसेन्ट स्मिथ का "जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी (१६०२) पृष्ठ २८३ पर उल्लेख है कि "वाणिज्यगाम वाज द रेसीडेन्स आफ महावीर, द ग्रेट प्रोफेट आफ जैन्स" अर्थात् भगवान् महावीर का निवास-स्थान वाणिज्यग्राम था। यह ग्राम वैशाली से दो-अढ़ाई मील दूर स्थित है। मगर इसकी सत्यता पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आगे चल कर श्री विसेन्ट स्मिथ "एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन्स एण्ड एथिक्स" जि०, १ पृष्ठ ५६८ पर लिखते

हैं—"आर्कियालाजिस्ट्स हैव नाट सार फार जैन रिमैन्स वाज द साइट एण्ड नथिंग इन देअर रिपोर्ट वुड लीड द रीडर टू सपोज देट द वसाढ़ (वैशाली) एरिया वाज द वर्थ प्लेस आफ जैनिज्म।"

डिक्शनरी आफ पाली प्रापरनेम्स, भाग १, पृष्ठ ६१६ पर लिखा है—नाटिका—ए लौकेलिटी इन वज्जि कन्ट्री द बिटवीन कोटिग्राम एण्ड वैशाली।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि० १, पृष्ठ १५ पर लिखा है—जस्ट आउट साइड वैशाली ले द सबर्ब कुंडग्राम।

भगवती सूत्र में निम्न वर्णन मिलता है—ब्राह्मणकुंडग्राम की पश्चिम दिशा में क्षत्रिय-कुंडग्राम था। (श० उ० ३३-८)

धम्मो मंगलमुकिट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो॥

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, वह अहिंसा, संयम और तपरूप है। जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

सोही उज्जूयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्तं व्व पावगं॥

जो सरलात्मा होता है, उसी की आत्मशुद्धि होती है। शुद्ध आत्मा में ही धर्मटिकता है। से घी जैसे सींची हुई अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, वैसे ही धर्म से सिक्त आत्मा ही परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

एकांकी नाटक

निर्वाणसाधना के गुणों से युक्त महावीर वर्धमान

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा जाने माने कथाशिल्पी और नाटककार हैं। उनकी शैली में सरसता और सजीवता है। महावीर वर्धमान नाटक में भ० महावीर में बाल्यकाल से ही अहिंसा, दया, समता आदि निर्वाणसाधना के बीजों के प्रवेश होने का रोचक घटनाक्रम है।

पात्र (प्रवेशानुसार)

१—विजय
२—सुमित्र } महावीर वर्धमान के हमजोली सखा
३—महावीर वर्धमान—वैशालीनरेश सिद्धार्थ के कुमार
४—दो नागरिक—कुंडग्राम के निवासी

स्थान—वैशाली नगरी में गंडक नदी के तट पर क्षत्रियकुंडग्राम। उसके समीप एक उपवन। नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं की शोभा। वसन्त के फूल और फल।

समय—प्रात:काल का प्रथम प्रहर। पक्षियों का कूजन।

स्थिति—परदा उठने पर नैपथ्य की दाहिनी ओर से एक वाण आता है। साथ ही नेपथ्य में 'साधु' शव्द गूंजता है। फिर वांई ओर से वाण आता है और फिर 'साधु' शव्द गूंजता है। कुछ ही क्षणों वाद दोनों दिशाओं से दो क्षत्रियकुमार आते हैं। एक का नाम विजय है, दूसरे का सुमित्र। दोनों के हाथों में धनुष-वाण हैं। केश खुले हुए, अंगों पर पीत वस्त्र, पैरों में उपानह। वे दोनों आखेटक वेश में हैं।

विजय—भाई सुमित्र ! तुमने मेरे बाणों की गति देखी ? लक्ष्य-वेध करने में कितना आनन्द आता है। ऐसा लगता है, जैसे मेरा प्रत्येक बाण सूर्य की किरण है, जिसके छूटते ही क्षितिज के बादलों का रूप बिगड़ जाता है और पक्षियों का कलरव जय-गान करने लगता है।

सुमित्र—और मेरे बाण की शांति तो जैसे विद्युत् की शांति को भी लज्जित करती है। मैं जब लक्ष्य-वेध करता हूं तो अनुभव करता हूं कि शत्रुओं के राज्यों की जो सीमाएं सीधी थीं, वे टेढ़ी हो कर संकुचित हो गयी हैं और मेरे बाण शत्रुओं के हृदय में आतंक की आंधी उठा रहे हैं।

विजय—यह तो ठीक है किन्तु अब कुमार वर्धमान ने लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

सुमित्र—क्षत्रियकुमार हो कर लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध ?

विजय—हां, क्षत्रियकुमार हो कर लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध ! वे कहते हैं कि लक्ष्य-वेध में कुशलता अवश्य प्राप्त करो, किन्तु इस लक्ष्य-वेध से किसी प्रकार की हिंसा न हो।

सुमित्र—यदि लक्ष्य-वेध में हिंसा-अहिंसा का ध्यान रखा जाय तो लक्ष्य-वेध का कौशल ही क्या रहा ! यह तो वैसा ही हुआ कि शत्रु को ललकारो, किन्तु कंठ से ध्वनि न निकले।

विजय—यदि इस कुंडग्राम के गणराज्य में रहना है तो ऐसा ही करना पड़ेगा। अब यही देखो, उस पेड़ में कितने मधुर फल लगे हुए हैं। इच्छा होती है कि अपने बाण से लक्ष्य ले कर सारे मीठे फल गिरा लें। सुगंधित फूलों को झकझोर कर भूमि पर गिरा लें और माला बना कर अपनी प्रियतमा के कंठ में डाल दें। किन्तु-किन्तु कुमार वर्धमान ऐसा नहीं चाहते।

सुमित्र—क्यों ? क्यों नहीं चाहते ? फूलों और फलों के गिराने में क्या हानि है ?

विजय—वे तो इसे हानि ही मानते हैं। कहते हैं कि वृक्षों में चेतना है, जीवन है। वे फूलते हैं, फलते हैं। उन पर प्रहार करोगे तो हिंसा होगी। यदि लक्ष्य-वेध करना है तो जड़ पदार्थों पर करो; जिनमें चेतना नहीं है।

सुमित्र—जड़ पदार्थों में तो पत्थर है, जिसमें चेतना नहीं है। वे वर्षों से एक ही दशा में पड़े रहते हैं; किन्तु पत्थरों पर बाण चलाओगे तो उनकी धार कुंठित नहीं होगी ? फिर लक्ष्य-वेध का क्या कौशल रहा ? सोचो···समझो। उड़ते हुए पक्षी को बाण से न गिराओ, किसी हिंस्र पशु का भी लक्ष्य न लो। फिर तो धनुष-बाण हमारे शस्त्र नहीं रहे, हाथ के आभूषण हो गये।

विजय—एक बार तो वे बड़े कौतुक की बात कह रहे थे।

सुमित्र—कैसे कौतुक की बात ?

विजय—कहते थे कि तुम्हारे सामने पाँच-पाँच लक्ष्य हैं, तुम इनमें से एक का भी वेध नहीं कर सकते ? उनका लक्ष्य लो।

सुमित्र—अच्छा पाँच-पांच लक्ष्य हैं ? सुनूँ तो, वे पाँच लक्ष्य कौन से हैं ?

विजय—वे पाँच लक्ष्य सुनोगे ? वे हैं—अहिंसा एक, सत्य दो, अस्तेय तीन, अपरिग्रह चार और ब्रह्मचर्य पांच।

सुमित्र—(अट्टाहस कर) ये पाँच लक्ष्य हैं ? किन्तु इनका लक्ष्य लिया कैसे जाता है ? ये स्थूल रूप से तो कहीं दिखलायी नहीं देते। फिर इनका लक्ष्य कैसे लिया जाय ?

विजय—भाई, तुम समझे नहीं। स्थूल वस्तुओं का लक्ष्य-वेध तो कोई भी कर सकता। इस सूक्ष्म लक्ष्य-वेध के लिए दूसरे बाणों की आवश्यकता है।

सुमित्र—अच्छा सुनूँ। वे दूसरे बाण कौन से हैं ?

विजय—वे हैं—संयम, त्याग, क्षमा, प्रायश्चित और तप।

सुमित्र—ये बाण कहाँ मिलेंगे ? और ऐसा लक्ष्य-वेध किस धनुर्वेद में है ? बन्धु ! यह धनुर्वेद नहीं है, ज्ञान का रूपक है। और यह किसी क्षत्रिय का गौरव नहीं है, किसी ब्राह्मण का भले ही हो।

विजय—यहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण की बात नहीं है, मित्र ! बात है पुरुषार्थ की।

सुमित्र—तो पुरुषार्थ असंभव बातों में नहीं होता, विजय ! यदि कुमार वर्धमान कहें कि इन्द्रधनुष के रंगों का लक्ष्य-वेध करो तो तुम इन पाँच बाणों से उन रंगों का लक्ष्य-वेध कर सकोगे ?

विजय—मुझसे तो संभव नहीं है और यदि संभव हुआ भी तो पाँच रंगों के लक्ष्य-वेध के बाद दो रंग तो शेष बच ही जावेंगे।

सुमित्र—(हँस कर) उनका लक्ष्य-वेध कुमार वर्धमान कर लेंगे। (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे, कुमार वर्धमान इसी ओर आ रहे हैं।

विजय—अच्छा ? आ रहे हैं ? अब उनसे लक्ष्य-वेध का रहस्य पूछो।

(सुमित्र और विजय व्यवस्थित होकर सावधान हो जाते हैं। कुमार वर्धमान का प्रवेश। वे अत्यन्त सुन्दर हैं। आकर्षक वेश-भूषा। मुक्त केश, गैरिक उत्तरीय। अधोवस्त्र जैसे ब्रह्मचारी की भाँति कसा हुआ। रत्न-जटित उपानह। हाथों में धनुष-बाण)।

विजय और सुमित्र—कुमार की जय !

वर्धमान—जय पार्श्वनाथ ! (क्रम से देख कर) विजय ! सुमित्र ! तुम दोनों ने लक्ष्य-वेध का अभ्यास किया ? कहाँ-कहाँ लक्ष्य-वेध किया ?

(दोनों नीचे देखते हुए मौन रहते हैं ।)

वर्धमान—तुम दोनों मौन हो । मौन से भी लक्ष्य-वेध होता है । (टहलते हुए) जो अपशब्द कहता है, यदि उसके समक्ष तुम मौन रहे तो तुम्हारे शान्त हृदय का तीर अपशब्दों का चिह्न भी नहीं रहने देगा ।

सुमित्र—जिस तीर का नाम आप ले रहे हैं, वह क्षत्रियों के धनुर्वेद में नहीं है, कुमार !

वर्धमान—क्षत्रियों के धनुर्वेद में ? सुमित्र ! वह क्षत्रियों के धनुर्वेद में ही है । क्षत्रिय का अर्थ जानते हो, क्या है ? क्षत से—हिंसा से बचा सके । और जो हिंसा से—क्षत से बचा सके, रक्षा कर सके, वही क्षत्रिय है ।

सुमित्र—तो आपने हिंसा के भय से इन स्थूल बाणों से लक्ष्य-वेध तो किया न होगा ।

वर्धमान—अवश्य किया है । मैं स्थूल बाणों में भी विश्वास रखता हूँ । और उनसे लक्ष्य-वेध करता हूँ । मिट्टी के शिखर बना कर उन्हें बाणों से बेधता हूँ । सूखे पेड़ों पर चिह्न बनाकर उन्हें धराशायी करता हूँ । यहाँ के पेड़ तो हरे-भरे हैं । कितने सजीव हैं । बढ़ते हैं, फूलते हैं, सुगन्धि देते हैं, फल देते हैं । कितनी सुरम्य चेतना है, उनमें । इन्हें बाणों का लक्ष्य बनाना हिंसा है—घोर हिंसा है इसीलिए मैं सूखे पेड़ों की खोज में दूर चला गया था ।

विजय—आप संसार की प्रत्येक वस्तु को बहुत गहरी दृष्टि से देखते हैं, कुमार !
(सहसा नेपथ्य में भारी तुमुल होता है । घबराहट के स्वरों में कंठों से गहरी चीख सुनायी देती है :

भागो·······भागो, रक्षा करो !
गजशाला से हाथी छूट गया है !
हाय ! वह वृद्ध कुचल गया !
बचो····बचो····भागो····भागो····
मार्ग से हटो !
हाय ! रक्षा करो, रक्षा करो !

वर्धमान—(चौंक कर) रक्षा की यह पुकार ?—यहीं पास से आ रही है । मैं अभी देखता हूँ । (चलने को उद्यत)

विजय—(विह्वलता से) आप न जायें, कुमार ! हम लोग जाते हैं। ज्ञात होता है कि गजशाला से हाथी छूट गया है। वह लोगों को कुचलता हुआ आ रहा है। कहीं आप पर भी आक्रमण न कर दे।

वर्धमान—मुझ पर आक्रमण कर दे तो अच्छा है। अन्य व्यक्ति बच जायेंगे।

सुमित्र—नहीं, ऐसा नहीं होगा, कुमार ! हमारे हाथों में धनुष-बाण हैं। आज हमारे हाथों उस हाथी के कुम्भ का ही लक्ष्य-वेध होगा।

विजय—इसके पहले कि वह हाथी लोगों को अपने पैरों से कुचले, मैं अपने बाणों से उसके पैरों की हड्डियां ही टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा।

सुमित्र—विजय ! मैं दाहिनी ओर हूँ, तुम दायीं ओर हो जाओ। हाथी के सामने आते ही हम दोनों एक साथ ही उस पर प्रहार करेंगे।

(दोनों ही मंच के दाहिनें-बायें हो कर धनुष पर बाण सांधते हैं।)

वर्धमान—(हाथ से वर्जित कर) नहीं, किसी जीव पर धनुष संधान करना ठीक नहीं होगा।

सुमित्र—किन्तु वह जीव पागल है, मतवाला है। उससे अन्य जीवों की हानि है।

विजय—और जब एक जीव से अनेक जीवों की हानि हो रही तो उस एक जीव को मारने में कोई हानि नहीं है, कोई हिंसा नहीं है, कुमार !

वर्धमान—जीव अन्ततः जीव ही है। तुम लोग रुको। मैं स्वयं अभी जा कर उस हाथी को देखता हूँ।

सुमित्र—हम लोग भी आपके साथ चलें ? आपका कोई अनिष्ट न हो।

वर्धमान—नहीं, तुम लोग यहीं रहो। तुम लोग क्रोध में आकर कुछ अनिष्ट कर बैठोगे। मैं अकेला जाऊँगा।

विजय—कुमार ! आप रुकें। आप अकेले न जायें।

वर्धमान—नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।

विजय—हाथी पागल हो गया है। वह आप पर भी आक्रमण कर देगा।

वर्धमान—आक्रमण करे तो कर दे। मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम लोग यहीं रुको। मेरा आदेश मान्य हो।

(कुमार वर्धमान का शीघ्रता से प्रस्थान)

विजय—(कुमार के जाने की दिशा में देखते हुए) कुमार अकेले ही चले गये। हम लोगों को आदेश दे दिया कि हम लोग यहीं रुकें। डर है, कहीं कोई अनिष्ट न हो।

सुमित्र—कुमार का यह साहस अनुचित है। पागल हाथी सामान्य व्यक्ति और

राजकुमार में कोई अन्तर नहीं रखेगा। और कुमार उस हाथी को क्या देखेंगे ? जब उनके सामने जीवों पर लक्ष्य लेने की बात ही नहीं है।

विजय—कुमार ने व्यर्थ ही हमें रोक दिया, नहीं तो आज बाण चलाने में मेरा कौशल देखते।

सुमित्र—मेरा लक्ष्य-वेध तो अचूक होता। आज तक मेरे बाणों ने लक्ष्य का केन्द्र ही देखा है, उसकी परिधि नहीं।

विजय—यह तो मैं जानता हूँ, किन्तु आश्चर्य है कि गजशाला से यह हाथी कैसे छूट गया ? क्या महावत उसे नहीं रोक सका ?

सुमित्र—महावत असावधान होगा, या प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं रोक सका होगा। अब कुमार वर्धमान उसे जा कर रोकेंगे।

विजय—वे कैसे रोकेंगे ? धनुष-बाण का प्रयोग तो वे करेंगे नहीं।

सुमित्र—(हँस कर) धनुष-बाण का प्रयोग क्यों करेंगे ? वे तो कोई सूक्ष्म बाण चलायेंगे। स्थूल बाण से जीव की हत्या होगी और जीव की हत्या संसार की सबसे बड़ी हिंसा है।

विजय—(सोचते हुए) हिंसा हो या न हो। किन्तु उस हाथी ने क्रोध में आ कर यदि कुमार पर आक्रमण कर दिया तो बड़ा अनर्थ होगा।

सुमित्र—(लापरवाही से) कुछ नहीं। क्या अनर्थ होगा। महाराज सिद्धार्थ हम दोनों को बन्दी-गृह में डाल देंगे। हम लोग कुमार के साथ क्यों नहीं गये ? हम दोनों ने उनकी रक्षा क्यों नहीं की ! इसी अपराध पर वे हम लोगों को बन्दी-गृह में अवश्य डाल देंगे।

विजय—क्यों डाल देंगे ? हम लोग तो कुमार के साथ जाने के लिए तैयार थे, कुमार ने ही हमें रोक दिया। इसमें हमारा क्या अपराध ?

सुमित्र—अपराध यही कि हम लोगों ने कुमार वर्धमान को हाथी का सामना करने के लिए जाने ही क्यों दिया ? उन्हें रोका क्यों नहीं।

विजय—मैंने तो उन्हें रोका था। वे रुके ? कहने लगे—हाथी यदि मुझ पर आक्रमण करे तो कर दे।

सुमित्र—जो भी हो। यह अच्छा नहीं हुआ। कुमार अकेले ही चले गये। वे हम लोगों के साथ जाने पर अनिष्ट की बात कह रहे थे पर हम लोग समझते हैं कि उनके अकेले जाने से ही अनिष्ट हो सकता है।

विजय—क्या कहा जाय। प्रभु पार्श्वनाथ रक्षा करें। कितना अच्छा होता यदि वे हम दोनों को अपने साथ ले जाते। यदि वह हाथी कुमार पर आक्रमण करता तो हमें उनकी रक्षा का अवसर मिल जाता।

सुमित्र—रक्षा तो हम लोग करते ही। फिर हमारे धनुष-वाण का कौशल भी जनता पर स्पष्ट हो जाता। ऐसे ही अवसर की वात है।

(नेपथ्य में उल्लास की ध्वनि····धन्य है ! धन्य है ! धन्य है !
कुमार वर्धमान की जय !
कुमार वर्धमान की जय !
कुमार वर्धमान की जय !

विजय—यह जय-ध्वनि कैसी ?

सुमित्र—कुमार वर्धमान की जय ? वहाँ हाथी निरीह जनता को कुचल रहा होगा, यहाँ कुमार वर्धमान की जय वोली जा रही है ?

विजय—(विवश होते हुए) कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

सुमित्र—चलो, हम लोग चल कर देखें कि वात क्या है।

विजय—कुछ अच्छी ही वात होगी। चलो, हम लोग भी जय-ध्वनि में सम्मिलित हों।

(चलने को उद्यत होते हैं, तभी दो नागरिक शीघ्रता से आते हैं।)

एक नाग०—क्षत्रिय-कुमारों को प्रणाम। आप लोग कुमार वर्धमान के साथी हैं ?

सुमित्र—हाँ, नागरिक ! किन्तु कुमार वर्धमान कहाँ हैं ?

दूसरा नाग०—धन्य है कुमार वर्धमान ! साधु ! साधु ! वे जनता के वीच में हैं ? चारों ओर से उन पर पुष्प-वर्षा हो रही है।

विजय—(कुतूहल से) पुष्प-वर्षा ! कैसे ! किसलिए ! और वह हाथी ?

सुमित्र—वह पागल हाथी जो गजशाला से छूट कर लोगों को कुचलता हुआ आ रहा था ?

पहला नाग०—उसी पागल हाथी को तो कुमार ने एक क्षण में अपने वश में कर लिया।

सुमित्र—वश में कर लिया ? कैसे ? क्या उन्होंने धनुष-वाण का प्रयोग किया ?

दूसरा नाग०—नहीं श्रीमान् ! वे धनुष-वाण अवश्य लिये हुए थे; किन्तु उन्होंने धनुष-वाण तो मुझे दे दिया और हाथी के सामने निर्भयता से पहुँच गये।

विजय—निर्भयता से पहुँच गये ? तव हाथी ने क्या किया ?

सुमित्र—वह तो दौड़ता हुआ आ रहा होगा ?

पहला नाग०—भयानक आंधी की तरह। जैसे एक गरजता हुआ काला वादल भूमि पर उतर आया है। उसके पैरों की धमक से पृथ्वी कांप रही थी। वह पेड़ों को इस तरह उखाड़ देता था जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींच लेता है और आँखें तो इस तरह लाल थीं जैसे दो दहकते हुए अँगारे रखे हों।

विजय—ऐसे भयानक हाथी के सामने पहुँचना कितने साहस का काम था ?

दूसरा नाग०—ओह ! कुमार में कितना साहस था ! और उनकी आँखों में कितना आकर्षण था।

पहला नाग०—श्रीमान ! कुमार दोनों हाथ फैला कर उस हाथी के मार्ग में खड़े हो गये। जैसे ही हाथी ने क्रोध से अपनी सूँड़ आगे बढ़ायी, वैसे ही कुमार ने उसे पकड़ कर अपने सामने कर लिया और उस ओर उस पर पैर रखकर वे विद्युत्‌गति से उसके मस्तक पर बैठ गये। उन्होंने न जाने किस तरह हाथी के कानों को सहलाया कि जो गजराज दो क्षण पहले क्रोध से पागल हो रहा था, वह कुमार को अपने मस्तक पर पा कर तुरन्त ही शान्त हो गया।

सुमित्र—(आश्चर्य से) शान्त हो गया ? आश्चर्य ! महान् आश्चर्य।

दूसरा नाग०—शान्त ही नहीं हो गया, वह अपनी सूँड़ उठा कर प्रणाम की मुद्रा में खड़ा हो गया।

विजय—सचमुच ! कुमार वर्धमान में अपार साहस और शक्ति है।

पहला नाग०—साहस और शक्ति ही नहीं, श्रीमान् ! लगता है, उनमें कोई दिव्य विभूति जगमगा रही है। उनको सामने देख कर बड़े से बड़ा क्रोधी शान्त हो जाता है।

दूसरा नाग०—मुझे तो ऐसा लगता है कि कुमार वर्धमान को अपने मस्तक पर बिठलाने के लिए ही वह हाथी मतवाला हो गया था। कुमार जैसे ही उसके मस्तक पर बैठे कि वह शान्त हो गया।

सुमित्र—हम लोग तो बड़े चिन्तित हो रहे थे कि वह मतवाला हाथी कुमार पर भी कहीं आक्रमण न कर दे।

विजय—हम लोग भी कुमार की रक्षा के लिए उनके साथ जाना चाहते थे, किन्तु उन्होंने हमें रोक दिया और अकेले ही दौड़ पड़े।

पहला नाग०—उन्हें किसी से रक्षा की आवश्यकता नहीं है। वे अकेले ही सैकड़ों हाथियों का सामना कर सकते हैं।

सुमित्र—वह हाथी अब कहाँ है ?

दूसरा नाग०—कुमार ने उसे फिर गजशाला में भेज दिया। जैसे ही हाथी शान्त हुआ महावत पीछे से दौड़ता हुआ आया। कुमार वर्धमान ने उसे हाथी सौंप दिया और वे हाथी से उतर पड़े। नगर की जनता जय-ध्वनि करते हुए उन पर पुष्प-वर्षा करने लगी।

पहला नाग०—और हाथी से उतरते ही उन्होंने गणपाल को आज्ञा दी कि जो अभागे व्यक्ति हाथी के पैरों से कुचल गए हैं, उनका शीघ्र ही उपचार किया जाय।

विजय—वास्तव में कुमार वर्धमान नर-रत्न हैं।

दूसरा नाग०—उन्होंने पुष्प-वर्षा रोक कर जनता से कहा कि वे जा कर घायल व्यक्तियों की देख-भाल करें। पुष्प-वर्षा करने की अपेक्षा क्षत-विक्षत व्यक्तियों की सेवा करना जनता का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

सुमित्र—तो इस समय कुमार कहाँ है ?

दूसरा नाग०—वे सब को विदा करके आते ही होंगे। उन्होंने कहा था कि उनके साथी सुमित्र और विजय हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आप ही उनके साथी ज्ञात होते हैं।

विजय—हाँ, हम लोगों का यह सौभाग्य है। (संकेत कर) ये सुमित्र हैं और मैं विजय हूँ। इस शुभ सूचना के लिए अनेक धन्यवाद।

पहला नाग०—तो हम लोग चल रहे हैं। हमें घायलों की सेवा करनी है।

दूसरा नाग०—घायलों में एक तो मेरा विरोधी रहा है। किन्तु जब वह हाथी के पैरों के नीचे आ गया तो कुमार वर्धमान ने मुझ से कहा कि मुझे उसकी सेवा करनी चाहिए।

पहला नाग०—तो फिर चलो।

दूसरा नाग०—हाँ, चलो। (विजय और सुमित्र) अब हमें आज्ञा दीजिए।

दोनों—जय वर्धमान। (प्रस्थान)

सुमित्र—इन लोगों ने अच्छी सूचना दी। पर यह विचित्र बात अवश्य है कि कुमार वर्धमान ने बिना किसी शस्त्र के उस मतवाले हाथी को वश में कर लिया।

विजय—विचित्र अवश्य है। सामान्य व्यक्ति तो ऐसी स्थिति में अपना धैर्य भी खो बैठता है। उन्होंने एक क्षण में हाथी का पागलपन दूर कर दिया। वे किसी अलौकिक शक्ति से विभूषित वीर पुरुष ज्ञात होते हैं।

सुमित्र—सचमुच वे वीर हैं। कुमार की इस वीरता की सूचना से महाराज सिद्धार्थ बड़े प्रसन्न होंगे।

विजय—तो चलो उन्हें सूचना दी जाय।

सुमित्र—इस समय तक तो उन्हें सूचना मिल गयी होगी। फिर भी चलो। हम लोग भी महाराज की प्रसन्नता के भागी बनें। (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे, कुमार वर्धमान तो इसी ओर आ रहे हैं।

विजय—हम लोगों के पास पुष्प-वर्षा के लिए पुष्प तो हैं नहीं। केवल जय-ध्वनि ही कर सकते हैं।

(कुमार वर्धमान का गम्भीर शांति से प्रवेश)

सुमित्र—कुमार वर्धमान की जय !

विजय—कुमार वर्धमान की वीरता की जय !

वर्धमान—(गम्भीर स्वर में) जय किस बात की ? यह तो सामान्य बात है, विजय ! पहले अपने आप को जीतना आवश्यक है। जो अपने को जीत लेता है, वह संसार की प्रत्येक वस्तु को जीत लेता है।

सुमित्र—निस्सन्देह आपने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया। अभी दो नागरिक आये थे। उन्होंने अभी हमें यह सूचना दी कि आपने बिना अस्त्र-शस्त्र के उस पागल हाथी को अपने वश में कर लिया। उन्होंने कहा कि आपने उन्हें अपना धनुष-बाण देकर निःशस्त्र हो कर हाथी का सामना किया। आपको किसी प्रकार का भय नहीं हुआ ?

वर्धमान—जिसे आत्म-विश्वास होता है उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। सुमित्र ! जिसे भय होता है, वह अपनी शक्ति से अपरिचित रहता है।

विजय—तो आपने बिना आक्रमण किये ही हाथी को वश में कर लिया।

वर्धमान—विजय ! मनुष्य यदि हिंसा-रहित है तो वह किसी को भी अपने वश में कर सकता है। बात यह है कि संसार में प्रत्येक को अपना जीवन प्रिय है। इसलिए जीवन को सुखी करने के लिए सभी कष्ट से दूर रहना चाहते हैं। जो व्यक्ति अपने कष्ट को समझता है, वह दूसरे के कष्ट का भी अनुभव कर सकता है। और जो दूसरों के कष्ट का अनुभव करता है, वही अपने कष्ट को समझ सकता है। इसीलिए उसे ही जीवित रहने का अधिकार है, जो दूसरों को कष्ट न पहुँचाये—दूसरों की हिंसा न करे। जो दूसरों के कष्ट हरने की योग्यता रखता है, वही वास्तव में वीर है।

विजय—आप दूसरों के कष्ट समझते हैं, इसलिए आप सच्चे वीर हैं, कुमार !

सुमित्र—तो आज से कुमार वर्धमान का नाम 'वीर वर्धमान' होना चाहिए।

विजय—मैं तुमसे पूर्ण सहमत हूँ, सुमित्र ! हमारे कुमार 'वीर वर्धमान' हैं।

सुमित्र—तो अब हम लोग चलें। महाराज सिद्धार्थ वीर वर्धमान की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। नागरिकों ने उन्हें सूचना दे दी होगी कि किस तरह उन्होंने एक मतवाले हाथी को विना किसी शस्त्र के अपने वश में कर लिया। वे वास्तव में वीर हैं।

विजय—अवश्य ! चलिए, कुमार वीर वर्धमान !

(सब चलने को उद्यत होते हैं किन्तु एक वृक्ष की ओर देख कर रुक जाता है।)

विजय—(चौंक कर) अरे, यह देखो।

सुमित्र—क्यों ? क्या है ?

विजय—अरे, उस पेड़ की जड़ की ओर देखो।

सुमित्र—ओह ! भयानक सर्प ! कितना बड़ा सर्प है ! हटो-हटो, पीछे हटो, विजय !

वर्धमान—(विजय से) पीछे क्यों हट रहे हो। देखो, वह सर्प कहाँ जाता है।

विजय—(डर कर) जायगा कहाँ ? वह हम लोगों को डसने के लिए आ रहा है।

सुमित्र—ओह ! उसने कितना भयानक फन फैला रक्खा है। कुमार वर्धमान क्षमा करें, इच्छा होती है कि इसके फन को अपने एक ही वाण से वेध दूँ।

विजय—और यदि लक्ष्य चूक गया तो वह इस तरह झपट पड़ेगा कि भागने का मार्ग भी नहीं मिलेगा।

सुमित्र—तुम जानते हो, विजय ! मेरे वाणों का लक्ष्य अचूक होता है। जो दूसरों के प्राण लेता है, उसे मारने में हिंसा नहीं होगी। कुमार वर्धमान मुझे क्षमा करें। लक्ष्य लेता हूँ। (धनुष पर वाण संधान करता है।)

वर्धमान—सुमित्र ! उसे वाण मत मारो। विना वाण चलाये ही इससे तुम्हारी रक्षा हो जायगी। तुम व्यर्थ ही भय खाते हो। मैं ही उसे मार्ग से हटा देता हूँ।

(वर्धमान आगे बढ़ कर सर्प की पूँछ पकड़ कर उसे नेपथ्य में दूर फेंक देते हैं।)

सुमित्र—(आगे बढ़ कर) अरे, अरे कुमार ! इसने आपको काटा तो नहीं।

विजय—हाय ! कहीं काट न लिया हो ! देखूँ ! (पास जाता है।)

वर्धमान—नहीं। वह मुझे क्यों काटेगा ? मेरे मन में सर्प के लिए कोई बुरा भाव नहीं है। न क्रोध है, न भय है।

सुमित्र—वास्तव में कुमार ! आपके हृदय में अदम्य साहस है।

विजय—यह तो महावीरता है। सुमित्र ! पहले तुमने कुमार के लिए 'वीर वर्धमान' नाम कहा। अब मैं इन्हें 'महावीर वर्धमान' कहता हूँ। महावीर वर्धमान।

सुमित्र—सचमुच 'महावीर वर्धमान'।

विजय—तो हमें महावीर वर्धमान की जय वोलनी चाहिए।

दोनों—महावीर वर्धमान की जय ! जय ! जय !

दोनों महावीर वर्धमान को प्रणाम करते हैं।
महावीर वर्धमान शान्त मुद्रा में खड़े रहते हैं।

(परदा गिरता है।)

निर्वाणवादी महावीर के जीवन के

पांच विरल चित्र

रतिलाल मफाभाई शाह, मांडल

रतिलाल मफाभाई शाह स्व० स्वनामधन्य न्यायाचार्य मुनिश्री न्यायविजयजी के निकट सम्पर्क में रहने वाले मांडल (गुजरात) निवासी विद्वान् गृहस्थ अन्तेवासियों में से अन्यतम हैं। आपकी लेखनी में मधुरता और सरसता है। इसी कारण आप अनायास ही कथाशिल्पी बन सके हैं। आपने निम्नांकित ५ लघुकथाओं में निर्वाणवादी महावीर में बाल्यकाल से ही निर्वाणसाधना के लिए आवश्यक गुण कैसे प्रगट हुए ? इस पर रोचक घटनाएँ दी हैं। इन घटनाओं को तथ्य की दृष्टि से नहीं, इनमें निहित सत्य की दृष्टि से परखना चाहिए। तभी महावीर जीवन में गर्भित सत्य की उपलब्धि होगी ।

—संपादक

१—मैं तो ऐसी नाक वाला शेर ही लूंगा !

हठीला बालक वर्द्धमान आज शेर के लिए मचल उठा। जिस दिन उसका हठ पूरा नहीं होता, उस दिन वह राजमहल में कहीं छिप जाता या आसपास के गली-कूचों में भाग जाता। उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते दास-दासियों के नाक में दम आ जाता। जब वह पकड़ लिया जाता, तब कह उठता—"मां से कह दो—मुझे पंछी नहीं चाहिए। मुझे तो सिंह चाहिए। शेर ला दोगे, तभी मैं मां के पास आऊंगा।

एक दिन ऐसा ही हुआ। जब माता त्रिशला सिंह का खिलौना ले कर आई, तब बालक वर्द्धमान ने दौड़ कर सिंह का खिलौना मां से ले लिया और उसकी गोद में लिपट गया। कई दफा वर्द्धमान की अत्यन्त मस्ती और नटखटपन से माता-पिता घबरा उठते, परन्तु समुद्र के समान उसकी उछलकूद एवं मस्ती भरी खिलखिलाहट हँसी के कारण उनके हृदय में आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगा। नटखट वर्द्धमान के नटखटपन को भड़काने के लिए कई बार दास-दासियां उसे चिढ़ातीं, जिससे वह खीज उठता था। एक दिन एक दासी ने उसे हाथी का खिलौना दिखाते हुए कहा—"कुमार ! तुम्हारा सिंह तो नकटा है, उसकी नाक इसके जैसी सुन्दर नहीं है।" वर्द्धमान बालक ही तो ठहरा। तुरन्त दौड़ कर माता के पास आया और कहने

लगा—"मुझे ऐसा नकटा सिंह नहीं चाहिए। उसके हाथी सरीखी नाक ही कहाँ है ?" माँ बोली—"बेटा ! सिंह की तो ऐसी ही नाक होती है।" माता ने बहुतेरा समझाया, परन्तु बालक टस से मस न हुआ। बालहठ तो ऐसा ही होता है। बस, अब एक ही धुन सवार हुई कि सिंह लूँगा तो ऐसी ही नाक वाला लूँगा। चौबीसों घंटे एक ही रट। न वह खाता, न पीता और न नींद लेता ! पिताजी ने बहुत समझाया, पर वर्द्धमान ने अपना हठ नहीं छोड़ा। आखिर तंग आकर पिता धमकाने लगे, मारने को उद्यत हुए, लेकिन वर्द्धमान और ज्यादा मचल पड़ा। खाये-पिये तीन दिन हो गये, घर के सभी लोग चिन्तित थे। अन्त में राजा सिद्धार्थ ने अपने बुद्धिशाली मंत्री सुमंगल को बुला कर इस समस्या को हल करने और बालक को किसी तरह समझा बुझा कर शान्त करने को कहा। मन्त्रीजी ने आद्योपान्त सारी बात जान कर माता-पिता से कहा—'मैं इस बालक को क्या समझाऊँ ? समझना तो आपको है ? जब आपने देख लिया कि बालक के दिल-दिमाग में ऐसे सिंह को लेने की भावना जागी है, और वह उस पर दृढ़ है तो अपने कारीगर से ऐसा खिलौना बनवाने की बात अब तक आपको क्यों नहीं सूझी ? बालक की भावना को न समझ कर उलटे आप उसे डांट रहे हैं ! सच है, **"पुराने सांचे में ढले हुए दिमागों में नई बात सहसा प्रविष्ट नहीं हो सकती।"** यह जैसा शेर चाहता है, वैसा शिल्पकार से बनवा लिया होता तो क्या वह खिलौने का शेर आपसे लड़ने आता या शेरों का समाज अदालत में आप पर दावा करता ?" मन्त्रीजी की बात सुन कर सब लोग झेंप गये।

फिर बालक वर्द्धमान को अपने पास बुला कर प्यार से पुचकारते हुए मंत्रीजी ने कहा—"वत्स ! पहले तुम कुछ खा-पी लो। इतने में मैं बड़ी नाक वाला शेर ले कर आता ही हूँ। वर्द्धमान आश्वासन पा कर शान्त हो गया, वह माँ त्रिशला की गोद में बैठ कर मिठाई खाने लगा। यह देख कर माँ-बाप पश्चाताप करने लगे—"अरे ! नाहक ही हमने बच्चे को तीन दिन तक भूखे रख कर हैरान किया !" कुछ ही देर में मन्त्रीजी बड़ी नाक वाला शेर ले कर आये और वर्द्धमान को देते हुए कहा—लो, अब तो तुम्हें मनचाहा खिलौना मिल गया न ? अब खूब खेलो इसके साथ !" वर्द्धमान भी मनचाहा खिलौना पा कर खुशी से उछल पड़ा। अपनी खुशी प्रकट करने के लिए वह सबको अपना मनचाहा सिंह बताने लगा। चिढ़ाने वाली उस दासी को भी वर्द्धमान ने अपना सिंह बताते हुए कहा—'देख ! अब तो मेरा सिंह नकटा नहीं है न ?' वर्द्धमान को चिढ़ाने की अब कोई गुंजाइश न देख कर दासी उसके दृढ़-संकल्प की सराहना करने लगी। वर्द्धमान के मन में आज जो आनन्द समा नहीं रहा था, वह मनचाहा खिलौना मिलने का उतना नहीं था, जितना कि अपना मजबूत संकल्प पूरा होने का था।

□

२—वर्द्धमान का प्रबल पराक्रम

वर्द्धमान आज अपने हमजोली बच्चों के साथ 'घोड़े' का खेल खेल रहे थे। सभी बालक अपनी-अपनी लकड़ी को घोड़ा मान कर उस पर सवार हो कर उसे कुदाते हुए नगर के उद्यान की ओर जाने को उद्यत थे। पर वर्द्धमान के पास लकड़ी नहीं थी। इधर-उधर ढूंढ़ने पर भी जब कोई लकड़ी हाथ न आई तो वह सीधा न्यायालय में पहुँचा और वहाँ पड़ा हुआ मोटा-सा राजदण्ड उठा ले आया। उसी को घोड़ा बना कर उस पर सवार होकर उद्यान की ओर चल पड़ा। सभी हमउम्र बच्चे मस्ती से उद्यान में खेल रहे थे। तभी न्यायालय में सोने-चाँदी से मढ़ा हुआ राजदंड नहीं मिला तो उसे ढूंढ़ने के लिए चारों ओर लोगों की दौड़धूप शुरू हो गई। राजा सिद्धार्थ और मन्त्रिगण भावी अमंगल की आशंका से अधीर हो रहे थे। माता त्रिशला के चेहरे पर भी आज उदासी छाई हुई थी। राजदंड का कहीं पता नहीं लग रहा था। इस व्यग्रता में सभी वर्द्धमान को भूल गये थे।

शाम को जब वर्द्धमान घर आया और चेहरे पर उदासी ला कर माता त्रिशला से कहने लगा—"मैया ! घोड़ा कुदाते-कुदाते मेरी लकड़ी टूट गई। पिताजी से कह कर मुझे ऐसी ही लकड़ी मंगवा दो।" माँ ने कहा—"मेरे लाल ! आज तेरे पिताजी बहुत बेचैन हैं, उन्हें और हैरान मत करना। मैं तुझे अच्छी-सी लकड़ी दे दूंगी।" वर्द्धमान ने दरवाजे के बाहर रखे हुए लकड़ी के टुकड़े ला कर माँ को दिखाते हुए कहा—"माताजी ! ऐसी ही लकड़ी देना।" माता त्रिशला राजदंड के टुकड़े देख कर स्तब्ध हो गई। आश्चर्य, गौरव और जरा-सी घबराहट की त्रिवेणी में डुबकियाँ लगाती हुई वह हर्षविभोर हो उठी। उसने राजा से जा कर कहा—"आप राजदंड ढूंढते-ढूंढते हैरान हो गये। राजदंड तो हमारा वर्द्धमान ले गया था, वह उसे तोड़ भी लाया है।" यह कहते-कहते माता त्रिशला का मुखमंडल अपने पुत्र के शौर्य और पराक्रम को देख कर चमक उठा। राजा सिद्धार्थ भी अपने पुत्र के प्रबल पराक्रम की बात सुन कर हर्ष से पुलकित हो उठे। उन्होंने दौड़ कर पुत्र को छाती से लगा कर गोद में उठा लिया और वात्सल्यमय हाथ से उसका मुँह सहला कर उसकी तुतलाती बोली में सारी बात सुनने को उत्सुक हुए।

डेढ़ मन वजन का राजदंड बालक वर्द्धमान द्वारा उठा लेने और तोड़ डालने की बात से वे इतने प्रभावित हुए कि घर-घर जा कर उसके पराक्रम की गौरव-गाथा सुनाने लगे। घर के दास-दासी नौकर-चाकर बालक वर्द्धमान के द्वारा वजनदार डंडा उठाने के गौरव से हर्षविह्वल हो कर अपनी गोद में उठा कर उस पर वात्सल्य बरसाने लगे। ☐

३—करुणाशील बालक वर्द्धमान

बालक वर्द्धमान जैसा वीर और साहसी था, वैसा ही करुणाशील भी था। किसी भी मनुष्य या प्राणी को वह संकट या कष्ट में देखता तो भेदभाव, जातपांत,

कुलपरम्परा, पदप्रतिष्ठा आदि के सामाजिक बन्धनों की कतई परवाह न करके वह सहायता करने दौड़ पड़ता था।

एक बार वर्द्धमान के यहाँ बहुत से मेहमान आये हुए थे। इससे काम का बोझ बढ़ना स्वाभाविक था। घर में दासदासियाँ तो थीं, पर वे अन्यान्य कार्यों में जुटी हुई थीं। रोहिणी नाम की दासी को अपने एक जरूरी काम से जल्दी घर जाना था। इसलिए उसने दूसरी दासियों से अपने जिम्मे का काम निपटा देने के लिए निवेदन किया। मगर दूसरी दासियाँ झल्ला कर उसे जली-कटी सुनाने लगीं—"हाँ, हाँ! हमें तो मानो कोई काम ही नहीं है! तू ही बड़ी काम वाली आई है। और तू काम ही कौन-सा करती है! जा, हम तेरा काम नहीं करेंगी, हमारा अपना काम भी तो बहुत-सा पड़ा है। इसलिए तुझे ही अपने जिम्मे का काम निपटाना होगा।"

घर जाने की जल्दी, काम का बोझ और ऊपर से यह झिड़की सुन कर रोहिणी आँखों से आँसू बहाती हुई बर्तन माँज रही थी। बालक वर्द्धमान ने रोहिणी को सिसकियाँ भरते हुए देखा तो वह करुणार्द्र हो कर एकदम दौड़ कर उसके पास पहुँचा। रोहिणी से अपनी तुतलाती बोली में कहा—'बुआ! रोती क्यों हो? क्या आज काम करते-करते थक गई हो? लो, मैं तुम्हारे काम में हाथ बंटाता हूँ। मुझे भी बर्तन मांजना आता है।"

भोलेभाले निर्दोष एवं वैभव में पले हुए बालक की मिश्री-सी मीठी बोली में सहानुभूति के स्वर सुन कर रोहिणी तो हर्षविभोर हो गई। उसका विषाद एकदम काफूर हो गया। उनका मनमयूर वर्द्धमान की सहानुभूतिपूर्ण वाणी से नाच उठा। उसने वर्द्धमान को अपनी गोद में बिठाया और प्यार से उसके सिर पर हाथ फिराते हुए कहा—"वत्स! तेरी बोली में इतनी मिठास है कि मेरी सारी थकान दूर हो गई। ऐसा मन होता है, तेरी मधुर बोली सुनती ही रहूँ।"

"अरे! यह क्या किया तूने? हाथ क्यों बिगाड़ लिया मिट्टी से! बर्तन मांजने के लिए क्या मैं कम हूँ। ला, तेरे हाथ साफ कर दूँ।" यों कहती हुई रोहिणी अपनी साड़ी के अंचल से वर्द्धमान का हाथ साफ करने जा रही थी, मगर वर्द्धमान बार-बार उसके बर्तन मांजने में यों कहता हुआ हाथ बंटाता रहा—'बुआ! मुझे भी बर्तन माँजना आता है।' रोहिणी ने उसका हाथ रोकते हुए कहा—"कुमार! भले ही तुम्हें आता हो, लेकिन अभी तो तू मेरी गोद में बैठा-बैठा बातें ही कर। इन बर्तनों को तो मैं अकेली ही शीघ्र साफ कर डालूँगी।"

रोहिणी की गोद में बैठा हुआ बालक वर्द्धमान इतना सलौना लगता था कि वह उसका मुख देखने, उसकी मधुर-मधुर तुतलाती बोली सुनने और उसके वात्सल्यमय स्पर्श सुख में इतनी भावविभोर हो गई कि वह अपने दिल में जमे हुए विषाद और कटुता को बिलकुल भूल गई थी।

ऐसा था बालक वर्द्धमान !, जिसने अनेकों के विषादमय रेगिस्तान में स्नेह, सुख और आनन्द की मधुर सरिता बहा दी थी। □

४—पीड़ित पशुओं की सेवा

माता त्रिशला के द्वारा सींचे हुए स्नेह, करुणा और सेवा के बीज बालक वर्द्धमान में अंकुरित हो उठे थे। इसी कारण जब भी वह किसी मनुष्य को, या पशु-पक्षी आदि को पीड़ित और परेशान देखता तो सहायता के लिए दौड़ पड़ता था।

एक दिन वर्द्धमान एक घायल मोर को ले आया और उसकी सेवा में जुट पड़ा। एक दिन नगर के बाहर एक जगह पड़े हुए घोड़े को देखा। उसकी पीठ पर घाव हो गया था, उसमें कीड़े पड़ गये थे, उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। घाव से इतनी बदबू निकल रही थी कि नाक बंद किये बिना वहाँ से गुजरना भी मुश्किल था। उसके मालिक ने उसे कहीं छोड़ दिया था। वह जहाँ भी बैठता, लोग उस पर दया करने के बजाय उसे खदेड़ देते थे, अगर वह उठता नहीं था तो उसके पीछे कुत्ते लगा देते थे, जिससे बेचारे को दुम दबा कर भागना ही पड़ता। ऐसी असहाय हालत में कोई उसे न तो चारा-दाना ही डालता और न पानी ही पिलाता। अस्थिपंजर बना हुआ वह दुर्बल घोड़ा लड़खड़ाता हुआ चलता था। कई बार गिर भी पड़ता था। उस मूक प्राणी को ऐसी दयनीय एवं पीड़ित दशा में देख कर वर्द्धमान का हृदय करुणार्द्र हो गया, आँखें गीली हो गईं। वर्द्धमान ने उसे प्यार से पुचकार कर अपने हाथ का सहारा दे कर उठाया और धीरे-धीरे उसे चला कर घर ले आया। बालक वर्द्धमान ने उसे अपना आत्मीय समझ कर अपने नन्हें-नन्हें हाथों से उसका घाव धोया, उस पर कोई जड़ी-बूटी लगा कर पट्टी बाँधी और उसे खिलाया-पिलाया भी। इस कार्य में माता त्रिशला भी मदद देती थीं। वर्द्धमान के द्वारा की गई सतत सेवा के फलस्वरूप वह मरियल घोड़ा कुछ ही दिनों में बिलकुल स्वस्थ हो गया। बाद में तो वह इतना हृष्टपुष्ट और सुडौल हो गया कि वर्द्धमान जब कभी उस पर बैठ कर जाता तो बाजारों और चौराहों पर लोग इकट्ठे हो कर उस पशु रत्न और इस मानव-रत्न को देखते ही रह जाते। घोड़ा भी कुमार के द्वारा की गई सेवा से अब अत्यन्त वफादार, कृतज्ञ और आत्मीय अश्वरत्न बन गया था।

इस प्रकार जब भी मौका मिलता बालक वर्द्धमान ऐसे बीमार, अपाहिज, घायल और पीड़ित मूक प्राणियों को अपने घर ले आता और उनकी सेवा में प्राणप्रण से जुट जाता। सेवा करने में वर्द्धमान इतना तन्मय और आनन्दविभोर हो जाता कि उसे पता ही नहीं चलता कि कब, कितना समय निकल गया है ? जब कोई बीमार या पीड़ित पशु या पक्षी चंगा हो जाता तो वर्द्धमान खुशी के मारे उछल पड़ता। धीरे-धीरे ऐसे कई पशु-पक्षी वर्द्धमान के यहाँ इकट्ठे हो गये और होते जाते थे, मानो वहाँ एक 'प्राणि-संग्रहालय' हो। सचमुच, वर्द्धमान की अद्भुत सेवा और करुणा का परिणाम था यह ! □

५—मातृवात्सल्य देख कर भीष्म-प्रतिज्ञा

घर पर कोई भी साधु-सन्त आते तो भावुक वर्द्धमान उन्हें अपने हाथों से भिक्षा देने को उद्यत हो जाता। अगर कोई दूसरा भिक्षा देता तो उसे अखरता था और वह रोयांसा हो कर मचल कर लोटने लगता था।

एक दिन घर पर एक वड़े सन्त पधारे। सिद्धार्थ राजा के यहाँ ही राजमहल के विशाल चौक में उनकी प्रवचनसभा का आयोजन किया जा रहा था। वालक वर्द्धमान को पता लगा तो झाड़ू ले कर वह अपने हमजोली वालकों के साथ महल के विशाल प्रांगण को साफ करने में जुट पड़ा। आज उसे अपने हाथों से जीवजन्तुओं की रक्षा करते हुए सफाई करने और कचरा, कंकड़ आदि इकट्ठे करके दूर फेंकने में वड़ा आनन्द आ रहा था। सफाई हो जाने के वाद सब वालकों ने मिल कर वहाँ श्रोताओं के वैठने के लिए दरियाँ विछा दीं। सन्त पधारे। उन्होंने धर्मभावना को प्रोत्साहित करने वाला सुन्दर रोचक प्रवचन दिया। सभी श्रोता प्रवचन के वाद चल दिये, तव राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला ने अपने परिवार का परिचय देते हुए वर्धमान में सहज प्रस्फुटित उत्साह, साहस, वीरता, करुणा और सेवाभावना आदि गुणों की प्रशंसा की। संत भी टकटकी लगा कर वर्द्धमान की ओर देखते रहे। फिर अन्तर में डूव कर भविष्यवाणी करते हुए-से वोले—'राजन! तुम्हारा यह लड़का भोगी नहीं वनेगा, मैं इसकी चमकभरी आँखों में एक महायोगी के दर्शन कर रहा हूँ। जब यह धर्मतीर्थ की स्थापना करेगा, तव तक मैं सम्भव है, इस संसार से विदा हो चुकूँगा।' यों कह कर उस महासंत ने वालक वर्द्धमान के सिर पर आशीर्वाद के रूप में हाथ फिराया।

कुछ औपचारिक वातचीत के वाद संत वहाँ से विदा होने लगे। सन्त को विदा देने के लिए त्रिशलादेवी के सिवाय सारे पारिवारिक जन काफी दूर तक गए। भविष्यद्रष्टा सन्त की वात सुन कर माता त्रिशला को ऐसा धक्का लगा कि वह अपनी शय्या पर लेटी-लेटी सिसकियाँ भरती हुई मन ही मन कई तरह के विचार कर रही थी।

कुमार संत को विदा करके वापिस लौटा तो माता के कमरे से रोने की आवाज सुन कर तेजी से उस कमरे में घुसा। वालक वर्द्धमान माता की हालत देख कर सिहर उठा। माता ने अपने लाल को देखा तो झपट कर उसे अपनी गोद में विठा लिया। वालक वर्द्धमान ने पूछा—"माँ! आज अकारण ही यह रुदन क्यों? क्या आपकी तवियत ठीक नहीं है, माताजी! जो भी चिन्ता हो, मुझे वताओ, मैं उसे मिटाने का प्रयत्न करूँगा।"

माता अपने लाल को आँचल में लपेटते हुए वोली—"वेटा! क्या तू अपनी माँ को छोड़ कर भाग जायगा? मैंने अपने मन में कितनी आशाएँ संजो रखी थीं,

१. मुनिदीक्षा के समय केशलोच.

र आज मेरी आशाओं पर पाला पड़ गया है।" "माताजी ! किसने कहा कि मैं म्हें छोड़ कर भाग जाऊंगा ! आपकी कौनसी आशाओं पर पाला पड़ गया ?"

"क्या संत ने नहीं कहा था कि तू भोगी नहीं, महायोगी बनेगा।"

"फिर क्या मैं भाग जाऊँगा ?"

"बेटा ! योगी कहीं घर में रहता देखा-सुना है ? मेरे प्राण ! मेरे हृदय के टुकड़े ! मेरे आनन्द की फुलवाड़ी ! क्या तू बुढ़ापे में हमें छोड़ कर अरण्यवास करेगा और मैं यहाँ राजमहल में पड़ी तड़फती रहूँगी ? तू सर्दी, गर्मी और बारिश के दिनों में निराश्रित हो कर जंगलों में मारा-मारा फिरेगा। हाय ! मैं अपने लाल को ऐसी स्थिति में कैसे देख सकूँगी ? अपने लाल के बिना कैसे जी सकूँगी ? प्रभो ! इससे तो यही अच्छा होगा कि मैं वह दिन देखने के लिए जिंदा न रहूँ।" यों कहती हुई वात्सल्यविवश माता जोंर-जोर से रोंने लगी।

माता की ऐसी करुणदशा देख कर वर्द्धमान भी फफक-फफक कर रोने लगा। माता के अपार वात्सल्य से वर्द्धमान को अन्तःप्रेरणा हुई; जिससे मन ही मन भीष्म-प्रतिज्ञा की—"महासंत का कथन चाहे यथार्थ हो, लेकिन माता-पिता जब तक विद्य-मान रहेंगे, तब तक मैं गृह-त्याग नहीं करूँगा।" दूसरे ही क्षण हँस कर वर्द्धमान कहने लगा—"माँ ! आज तुम पगली हो रही हो क्या ? मुझ पर विश्वास रखो। मैं अन्तरात्मा की साक्षी से कहता हूँ—"आपको छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगा। आपकी सेवा में सदा हाजिर रहूँगा। माता-पिता की सेवा करना ही तो मेरा प्रथम व्रत है, पहला धर्म है, यही मेरी प्रारम्भिक साधना है। वह कृतघ्न है, जो माँ-बाप को ठुकरा कर रुष्ट हो कर चला जाता है। आपकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है।" पुत्र के आश्वासन भरे वचन सुन कर माता आशंकामुक्त हो गई। उसे यह विश्वास हो गया कि अब मेरे रहते मेरा लाल कहीं भाग कर नहीं जायगा।

—:०:—

पर आज मेरी आशाओं पर पाला पड़ गया है।" "माताजी ! किसने कहा कि मैं तुम्हें छोड़ कर भाग जाऊंगा ! आपकी कौनसी आशाओं पर पाला पड़ गया ?"

"क्या संत ने नहीं कहा था कि तू भोगी नहीं, महायोगी बनेगा।"

"फिर क्या मैं भाग जाऊँगा ?"

"बेटा ! योगी कहीं घर में रहता देखा-सुना है ? मेरे प्राण ! मेरे हृदय के टुकड़े ! मेरे आनन्द की फुलवाड़ी ! क्या तू वुढ़ापे में हमें छोड़ कर अरण्यवास करेगा और मैं यहाँ राजमहल में पड़ी तड़फती रहूँगी ? तू सर्दी, गर्मी और बारिश के दिनों में निराश्रित हो कर जंगलों में मारा-मारा फिरेगा। हाय ! मैं अपने लाल को ऐसी स्थिति में कैसे देख सकूँगी ? अपने लाल के बिना कैसे जी सकूँगी ? प्रभो ! इससे तो यही अच्छा होगा कि मैं वह दिन देखने के लिए जिंदा न रहूँ।" यों कहती हुई वात्सल्यविवश माता जोर-जोर से रोने लगी।

माता की ऐसी करुणदशा देख कर वर्द्धमान भी फफक-फफक कर रोने लगा। माता के अपार वात्सल्य से वर्द्धमान को अन्तःप्रेरणा हुई; जिससे मन ही मन भीष्म-प्रतिज्ञा की—"महासंत का कथन चाहे यथार्थ हो, लेकिन माता-पिता जब तक विद्यमान रहेंगे, तब तक मैं गृह-त्याग नहीं करूँगा।" दूसरे ही क्षण हँस कर वर्द्धमान कहने लगा—"माँ ! आज तुम पगली हो रही हो क्या ? मुझ पर विश्वास रखो। मैं अन्तरात्मा की साक्षी से कहता हूँ—"आपको छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगा। आपकी सेवा में सदा हाजिर रहूँगा। माता-पिता की सेवा करना ही तो मेरा प्रथम व्रत है, पहला धर्म है, यही मेरी प्रारम्भिक साधना है। वह कृतघ्न है, जो माँ-बाप को ठुकरा कर रुष्ट हो कर चला जाता है। आपकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है।" पुत्र के आश्वासन भरे वचन सुन कर माता आशंकामुक्त हो गई। उसे यह विश्वास हो गया कि अब मेरे रहते मेरा लाल कहीं भाग कर नहीं जायगा।

—:o:—

गीत

जब हिंसा के अंधकार ने सारे जग को घेरा था

—हजारीलाल 'काका' सकरार (झांसी) उ० प्र०

पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की,
जनजीवन में ज्योति जला दी जिनने आत्मोत्थान की,

(१)

जब हिंसा के अन्धकार ने सारे जग को घेरा था,
शिव मग भटक गया था मानव, छाया घोर अन्धेरा था।
धर्म समझ कर तब अधर्म से करता मानव प्यार था,
प्रतिदिन लाखों पशु यज्ञों में झोंक रहा संसार था।
फिकर नहीं थी जरा किसी को बेगुनाह के जान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(२)

भ्रष्टाचार-पापमय थीं तब सत्य अहिंसा की राहें,
दानवता खिलखिला रही थी मानवता भरती आहें।
करुणा करुणाभरे स्वरों में सिसक रही थी जोरों से,
चीत्कार निर्बल जीवों की आती चारों ओरों से।
भारी खुशी मनाई जाती जीवों के बलिदान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(३)

सती नाम पर अबलाओं को पति के साथ जला देते,
उनके रोने चिल्लाने पर कोई ध्यान नहीं देते।
फिर पशुओं को कौन पूछते उन पर कौन रहम लाते,
जब नरमेघयज्ञ में जिन्दा मानव झोंक दिये जाते।
पशु जैसी बिक्री होती वाजारों में इन्सान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(४)

कुण्डलपुर में जन्म हुआ तब महावीर भगवान का,
दीन-दुखी जीवों को मानों दिन आया वरदान का।
तरुणाई आते ही देखी यहाँ धर्म की परिभाषा,
जीव मार कर मुक्ती पाने की रखता नर अभिलाषा।
राज त्याग चल पड़ा वीर तब ज्योति जलाने ज्ञान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

(५)

सही धूप शर्दी की बाधा शूल चुभे कई पाँव में,
वनवासी बन गया पला जो राजमहल की छाँव में।
ज्ञानज्योति प्रकटी अन्तर में बेपीरों का पीर बना,
सन्मति बन जीता कर्मों को पुनः वीर महावीर बना,
'सच्चा धर्म अहिंसा है, थी वाणी दयानिधान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

(६)

जिओ और जीने दो सबको प्राण सभी को प्यारा है,
नहीं सताओ किसी जीव को ये ही धर्म तुम्हारा है।
चोरी झूठ कुशील आदि की पास न फटकें बाधाएँ,
अगर मोक्ष की इच्छा है तो रोको अपनी इच्छाएँ।
सतत साधना से गति मिलती 'काका' सिद्धिस्थान की,
पच्चीस-सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

—o—
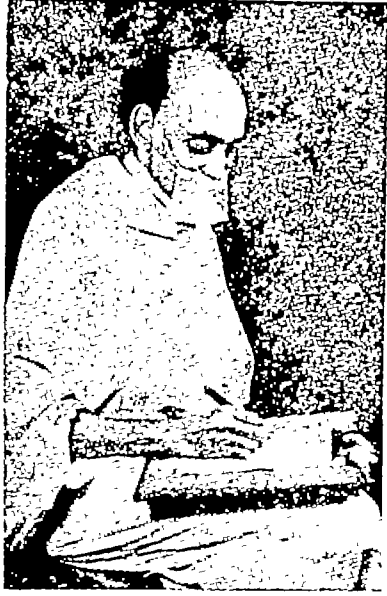
महावीर के बाल्यकाल में
निर्वाण के बीज

□

मुनि समदर्शी 'प्रभाकर'

निर्वाण, मुक्ति अथवा मोक्ष का मूल सम्यक्-दर्शन है, इसे ही सम्यक्-श्रद्धा एवं निष्ठा कहते हैं। स्व के द्वारा स्व पर श्रद्धा करना और स्व से स्व-स्वरूप का बोध एवं परिज्ञान करना ही वस्तुतः सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-ज्ञान है। वही व्यक्ति स्व के द्वारा परिज्ञात स्व में स्थित होता है। अथवा उसी की परिणति स्व-स्वरूप में स्थिर होती है। यही निश्चयदृष्टि से सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार रत्नत्रय की समन्वित साधना ही मोक्ष-मार्ग या निर्वाण-पथ है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तचारित्र का प्रकट हो जाना ही निर्वाण है। इसका प्रथम सोपान है—भेद-विज्ञान के द्वारा स्व और पर के भेद से स्व-स्वरूप को भलीभाँति जान कर उसमें श्रद्धा-निष्ठ होना।

मोह के कारण व्यक्ति स्व और पर के यथार्थ स्वरूप को और उनके भेद को समझ नहीं सकता। वह पर को ही स्व समझ कर उसमें आसक्त वना रहता है। पर में स्वतत्वबुद्धि रखना ही अज्ञान है और यही मिथ्यात्व है। इसी के कारण अनुकूल पदार्थों का वियोग होने पर और प्रतिकूल पदार्थों का संयोग होने पर व्यक्ति को पीड़ा, वेदना तथा दुःख की अनुभूति होती है। और अनुकूल तथा प्रतिकूल के संयोग एवं वियोग का निमित्त मिलने पर वह भय से संत्रस्त हो जाता है। संयोग और वियोग की कल्पना अथवा विकल्प ही उसे भयभीत वनाए रखते हैं। परन्तु

---

१. आचारांग सूत्र

दर्शनमोह के क्षय या क्षयोपशम से स्व-स्वरूप का ज्ञाता एवं द्रष्टा अनुकूल और प्रतिकूल अथवा संयोग और वियोग दोनों परिस्थितियों में ज्ञाता एवं द्रष्टा बन कर रहता है। अपने से सम्बद्ध पदार्थों पर प्रहार होने पर भी वह भयभीत नहीं होता। उसे किसी भी समय कैसी भी परिस्थिति में भय नहीं रहता। वह सदा-सर्वदा भयमुक्त रहता है। यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी सामने आ कर उपस्थित हो जाए, तब भी वह निर्भय एवं निर्द्वन्द्वभाव से अपने स्वभाव में स्थित बना रहता है। वह जानता है, कि जो मेरा अपना है, वह कभी नष्ट नहीं होता, और जो नष्ट होता है, वह अपना नहीं है। जब वह अपना है ही नहीं, फिर उसकी चिन्ता करना, उसके लिए विलाप करना, और भयभीत होना ही अज्ञान है। इसलिए निर्भयता और निर्द्वन्द्वता सम्यक्-दर्शन की सबसे बड़ी पहचान है। अतः वास्तव में भय से मुक्त व्यक्ति ही संसार से, दुःखों से और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकता है। सचमुच में भय-मुक्ति ही मुक्ति है और भयों से मुक्त व्यक्ति ही निर्वाण के परम आनन्द को पा सकता है।

श्रमण भगवान् महावीर के जीवनविकास की यह भूमिका प्रारम्भ से ही परिलक्षित होती है। आगम में बताया गया है कि जब वे महारानी त्रिशला के गर्भ में आए, तब विशिष्ट ज्ञान से यह जान कर कि मेरे हलन-चलन की क्रिया से माता को वेदना एवं पीड़ा होती होगी। मेरे द्वारा माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह अनुकम्पा की भावना मन में उद्बुद्ध हुई और वे निष्कंप हो गए। माता के मन पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। गर्भ का स्पन्दन बन्द हो जाने से उसने समझ लिया कि मेरा गर्भ मर गया है या गिर गया है। इससे वह शोक में डूब गई। माता की इस वेदना को जान कर बालक ने अपना हलन-चलन प्रारम्भ कर दिया। कितनी बड़ी बात है कि अभी न तो अंगों का पूरा विकास हो पाया था और न उनमें कार्य करने की पूरी क्षमता थी तथा न फैलने एवं सिकुड़ने के लिए खुला स्थान था, फिर भी उस बालक ने अपने शरीर को स्थिर रख ही लिया है। निर्भय और निर्द्वन्द्व व्यक्ति ही स्व और पर-हित के लिए अपने आप पर पूरा नियन्त्रण रख सकता है।

वर्द्धमान के बाल्य-काल की भी कुछ घटनाएँ हैं, जिनमें उनकी निर्भयता, अनुकम्पा, करुणा एवं सद्भावना का स्पष्ट दर्शन होता है। एक बार वह राजभवन के उद्यान में अपने साथियों के साथ एक खेल खेल रहे थे, कि अचानक एक विशालकाय विषधर निकल आया। उसे देखते ही सब बालक इतस्ततः भाग खड़े हुए, पर वर्द्धमान डर कर भागा नहीं। वह सांप के निकट गया, और उसे धीरे से अपने सुकोमल हाथों से उठा कर दूर छोड़ आया। जिससे उसे कोई चोट न पहुँचा सके, और न वह अन्य को भयभीत कर सके या चोट पहुँचा सके।

इसी प्रकार एक बार खेल के समय उनके धैर्य और निडरता की परीक्षा लेने की भावना से एक देव बालक के रूप में आ कर उनके साथ खेलने लगा। और वर्द्ध-

मान के साथ खेलते समय वह जानबूझ कर हार गया। हारने वाले को उस खेल में विजेता को कुछ दूरी तक अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाना पड़ता था। खेल की परम्परा के अनुसार वर्द्धमान उसकी पीठ पर चढ़ा। कुछ दूरी तय करते ही देव ने उसे भयभीत करने के लिए अपना विराट् और विकराल रूप बना लिया और उसे ले कर आकाश की ओर उड़ने लगा। यह देख कर सब बालक भय से संत्रस्त हो कर रोने-चिल्लाने लगे; पर वर्द्धमान के मन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह शान्तभाव से उस पिशाच के कंधे पर बैठा रहा, मानो विशालकाय हाथी की पीठ पर सवार हो कर घूमने जा रहा हो, और अपने स्नेहभरे व्यवहार से उसे अपने अनुकूल बनाकर उसके साथ राजमहल में आ गया। वह देव राजमहल में सिद्धार्थ के सामने उपस्थित होने में डर रहा था। पर महावीर ने उसे अभय का वचन दे कर सहमत कर लिया। राजकुमार ने कहा कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति जरा भी द्वेष नहीं है। मैं तुमको अपना शत्रु नहीं, मित्र ही समझता हूँ। फिर मेरे घर चलने में डर कैसा? तुम निश्चित और निर्भय रहो, तुम्हारा वहाँ कोई बाल वांका नहीं होगा।

यह हैं, उनके बाल्य-काल की कुछ घटनाएँ, जिनके अनुशीलन-परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन्हें अपने स्वरूप का पूर्णरूपेण बोध था, और वे अपने आप में जागृत थे।

इसका एक ही कारण था, कि उन्होंने अपने अनन्त-ज्योतिर्मय स्वरूप को जान लिया था और उसे अनावृत करने में प्रयत्नशील थे। उनकी दृष्टि एवं चिन्तन अपने देह में रहते हुए उस महाज्योति का ध्यान देह-शरीर में नहीं था। उनकी दृष्टि आप में केन्द्रित थी। देहातीत थी। उनको देह पर भाव नहीं था। इसीलिए वे प्रारम्भ से ही निर्भय और निर्द्वन्द्व रहे। प्रत्येक परिस्थिति में वे अपने आप में स्थित रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर के जीवन में बाल्य-काल में ही निर्वाण और सिद्धान्त के बीज अंकुरित हो चुके थे, जो साधना-काल में पल्लवित-पुष्पित होते-होते कैवल्य प्राप्ति के बाद आयु-कर्म के क्षय के साथ अन्तिम क्षण में फलित हुए।

निर्वाणवादी भगवान् महावीर की अद्भुत क्षमा

—भूरचन्द जैन

□

विश्व को सत्य और अहिंसा का मार्ग बताने वाले विश्व की महान् विभूति भगवान् महावीर स्वामी ने अपने कर्म-बन्धनों से मुक्ति पाने के लिये संसार के सभी सुखों का मोह तज कर वैराग्य-जीवन अंगीकार किया। आपने अपने कर्म-बन्धनों से मुक्त होने के लिए यातनाएँ, पीड़ाएँ, लोक-अवहेलनाएँ एवं तिरस्कार का सामना करते हुए गम्भीरता, सहनशीलता, दया और करुणा बताई। भगवान् महावीर स्वामी ने अपने को कष्ट, पीड़ा एवं यातना देने वालों के प्रति कभी बदले की भावना तक नहीं रखी; अपितु उनके कल्याण एवं उद्धार के लिए मार्ग बताया। संयमी जीवन के पश्चात् महावीर प्रभु को लगातार बारह वर्षों तक अति घोर उपसर्गों का सामना करना पड़ा। ग्वाले की मार, तापसों द्वारा तिरस्कार, शूलपाणि यक्ष की वेदना, कठ-पूतना राक्षसी का शीतप्रकोप, चण्डकौशिक नाग का विषवमन, सुदंष्ट्र नागकुमार के द्वारा महावीर को डुबोने की हरकतें, अनार्यदेश में शिकारी कुत्तों द्वारा कटवाना, मारना-पीटना एवं फांसी के तख्ते पर चढ़ाने के अतिरिक्त, संगमदेव द्वारा प्रभु को भीषण १८ यातनाओं से पीड़ित करने का प्रयास किया गया। लेकिन प्रभु अधिकांश ध्यान-मग्न रहकर अपने कर्मों को काटते रहे। यहाँ तक कि उनके कानों में ग्वाले द्वारा कीलें ठोकने पर भी वे क्रुद्ध नहीं हुए।

क्षमामूर्ति भगवान महावीर स्वामी ने जब संसार से वैराग्य जीवन स्वीकार किया तब इनके सुगन्धित एवं कौशल शरीर पर कीट-पतंगों-भौरों ने महावीर के शरीर को काटना शुरू किया, लेकिन महावीर इन पीड़ाओं से कदापि विचलित नहीं हुए। प्रभु के रूप, लावण्य एवं शारीरिक सुन्दरता से कई ललनाओं ने अपनी काम-वासना पूर्ण करने का प्रयास किया, लेकिन वैरागी तो वैरागी ही रहे। कामुकता के आवेश में बावली ललनाओं ने इन पर नाना प्रकार के घोर उपसर्ग भी किये। कई पुरुषों ने प्रभु को उनके तपो-मार्ग से हटाने का भरसक प्रयास किया, लेकिन वे सफल

नहीं हुए। महावीर को इन विपदाओं एवं कठिनाइयों से मुक्त करने के लिये इन्द्रदेव ने सहायता लेने की प्रार्थना की, लेकिन प्रभु ने अपने कर्मों को काटने के लिये इन्द्र की प्रार्थना भी सुनी-अनसुनी कर दी।

कुमारग्राम के एक खेत में जब महावीर कायोत्सर्ग में खड़े तपस्या कर रहे थे कि छह मास की बीमारी से ठीक हुआ ग्वाला जब अपने खेत में आया तो देखता है कि एक सिर मुंडा व्यक्ति खेत में खड़ा है। इसने अपशकुन समझ कर उन्हें हल से मारने का प्रयास किया लेकिन इन्द्रदेव की अनुकम्पा एवं बीचबिचाव से वह महावीर का बाल बांका भी नहीं कर सका।

महावीर प्रभु को यह प्रारम्भिक यातना ही थी। प्रभू जगह-जगह बिहार कर अपनी तपस्या में लीन रहने लगे। मोराक गाँव में महावीर के पिता सिद्धार्थ के मित्र दुईज्जंतक जाति के तापस रहते थे। उन्होंने महावीर को आश्रम में तपस्या करने की स्वीकृति दी। महावीर एक घास की झोंपड़ी में कायोत्सर्गमुद्रा में तपस्या करने लगे। उन दिनों वर्षा के अभाव में सभी ओर सूखा पड़ा हुआ था। पानी के अभाव में घास की कमी स्वतः ही उत्पन्न हो गई। कई गायें घास न मिलने के कारण तपस्वियों के आश्रम में बनी झोपड़ियों के घास को खाने लगीं। अन्य तपस्वियों ने पशुओं को भगाने हेतु कार्यवाही की; लेकिन महावीर कायोत्सर्गमुद्रा में लीन रहे; जिसकी वजह से इनकी झोपड़ी की रक्षा न हो सकी। अन्य तपस्वी महावीर के इस आचरण पर क्रोधित हुए और महावीर को भलाबुरा कहने लगे। महावीर अप्रीति देख कर पाँच प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कर यहाँ से चातुर्मास में ही अन्यत्र बिहार कर गये।

महावीर मोराक गाँव से विहार कर अस्थिक गाँव में आये। यहाँ वे गाँव के बाहर शूलपाणि यक्ष के सूनसान मन्दिर में ठहरने लगे कि गाँव के लोगों ने यक्ष के उपद्रवों की चर्चा करते हुए प्रभु को मना किया। लेकिन निर्भय महावीर ने रात वहीं गुजारने का निश्चय किया। रात में शूलपाणि ने महावीर को कई शारीरिक यातनाएँ दी। भीषण अट्टहास्य से डराने का प्रयास, विशाल हाथी के रूप में हटाने, भयंकर देह वाले पिशाच के रूप में भयभीत करने, सर्प के आक्रमण एवं जकड़ के प्रयास से प्रभु को रातभर यातनाएँ दी जाती रही। महावीर के शरीर के कोमल भाग, सिर, आँखें, मूत्राशय, नासिका, दाँत, पीठ, नाक पर ऐसी वेदना उत्पन्न की कई कि साधारण व्यक्ति इस वेदना से कभी का कालग्रस्त हो जाता, लेकिन महावीर ने इन वेदनाओं को गम्भीरता एवं सहनशीलता के साथ सहा। आखिर यक्ष ने अपने कुकृत्यों के लिये महावीर से क्षमा चाही और अपने आत्मकल्याण में लग गया। महावीर पर रातभर यक्ष के भीषण उपसर्गों के कारण प्रातः नींद-सी स्थिति हो गई। इस अवस्था में प्रभु ने अपने कल्याणमार्ग के दस स्वप्न देखे।
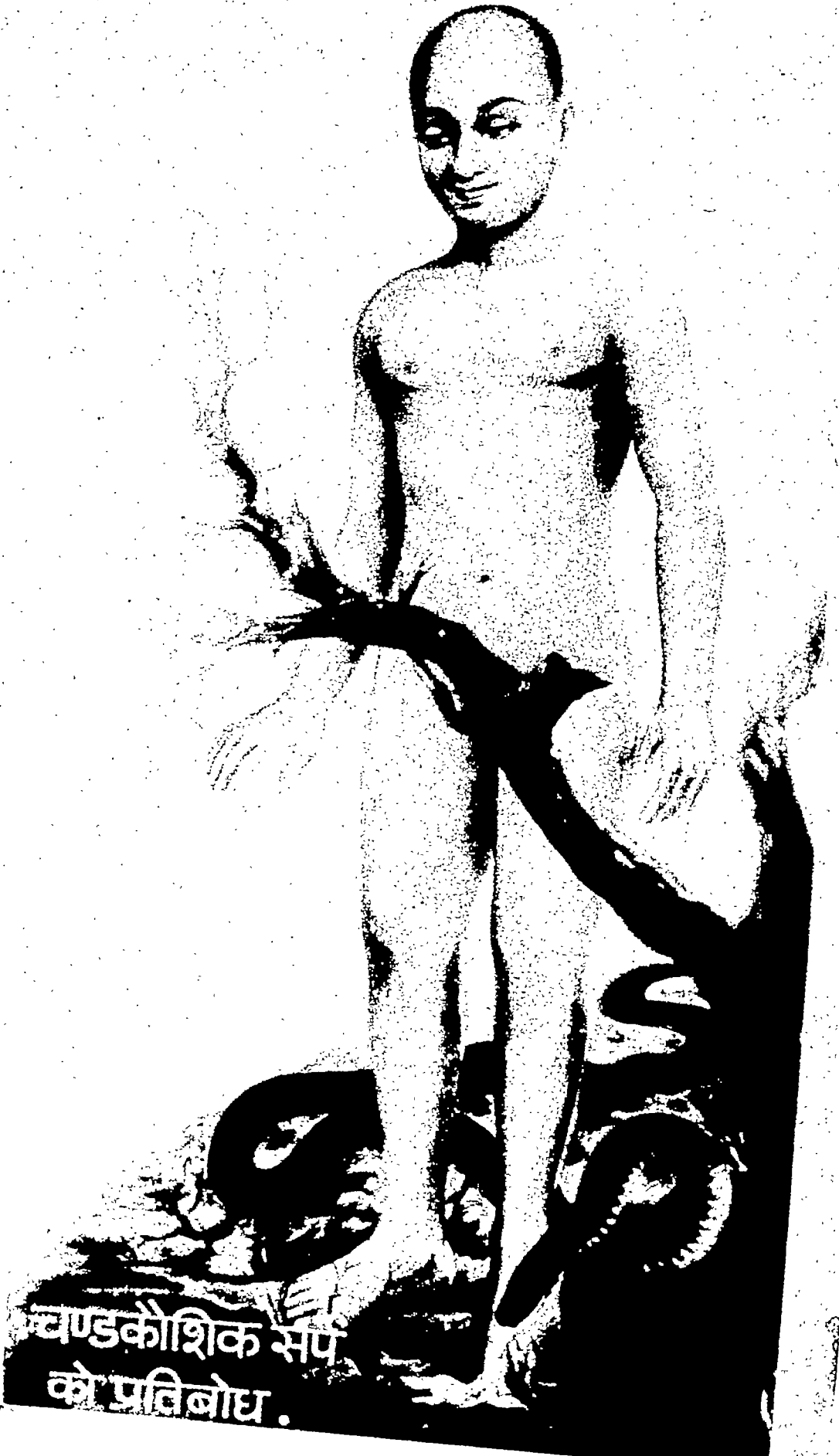
चण्डकौशिक सर्प
को प्रतिबोध .

सर्दी हो या गर्मी, वर्षा हो या आंधी, महावीर जगह-जगह बिहार करते हुए शालिशीर्ष गाँव में पहुँचे। भयंकर सर्दी के कारण लोग आग जला कर आराम पा रहे थे। इस स्थिति में महावीर खुले मैदान में जंगल में नदी के किनारे कायोत्सर्गमुद्रा में अपने कर्मबन्धनों को काट रहे थे कि पूर्वभव में वासुदेव द्वारा अपमानित रानी कठपूतना राक्षसी ने अपना बदला लेने के लिये उपसर्ग करना आरम्भ किया। नदी के अत्यन्त ही ठंडे जल को राक्षसी अपने बालों में भर कर महावीर के शरीर पर जोरों की बौछारों से बरसाने लगी। लेकिन महावीर ने बदले की कोई कार्यवाही नहीं की और अटल चट्टान की भाँति इसे सहन करते रहे।

एक से एक भीषण उपसर्गों से पीड़ित होने पर भी महावीर ने अपनी निर्वाण-साधना का मार्ग नहीं छोड़ा और वे श्वेताम्बी नगरी के मार्ग में आये कनखल तापसों के आश्रम की ओर बढ़े। इस आश्रम में चंडकौशिक नामक दृष्टिविष सर्प का भीषण प्रकोप था। कोई इस रास्ते से गुजरता नहीं था। सर्प के देखने मात्र से ही जन-मानस कालग्रस्त हो जाते थे। महावीर को इस मार्ग से जाने के लिये रोका गया, लेकिन जगदुद्धारक महावीर इस ओर निर्भीकता से बढ़े। सर्प ने उन्हें देखा और दृष्टिविष फेंका, लेकिन महावीर पर कोई असर नहीं हुआ। सर्प ने महावीर के पैर में काटा, लेकिन रक्त की बूंद के स्थान पर सफेद दूध-सी बूंदें देखी। गुस्से से ग्रस्त सर्प ने पूरे जोर के साथ पुनः महावीर के पैरों को काटा और अपने शरीर में रहा सम्पूर्ण विष छोड़ दिया। काटने वाले स्थान से दो धाराएँ बही। एक में रक्त के स्थान पर दूध-सा सफेद पदार्थ था और दूसरी धारा नीली थी, जो सर्प का जहर था। चंडकौशिक को महावीर ने उपदेश दिया और उसे जातिस्मरणज्ञान होने पर वह अपने आत्मकल्याण में लीन हो गया।

सुरभिपुर जाने के लिए महावीर गंगा पार करने हेतु सिद्धदंत की नौका पर बैठे। सुदंष्ट्र नागकुमार ने बदले की भावना से नाव डुबाने का प्रयास किया, लेकिन कंबल संबल नामक देवों ने रक्षा की। जगह-जगह बिहार करते-करते महावीर चौराक एवं कूपिक गाँवों में गये ; जहाँ इन्हें चोर समझ कर सिपाहियों ने पकड़ कर कुओं में डुबाने और बाहर निकालने का प्रयत्न किया। इन यातनाओं में श्री पार्श्वनाथ-स्वामी के शासन की साध्वियों ने इन्हें मुक्त करवाया। इसी प्रकार हरिद गाँव के हरिद्रवृक्ष के नीचे तपस्यामुद्रा में महावीर खड़े थे कि सर्दी जोरों की थी। कुछ लोग रात्रि में अग्नि से तप रहे थे और प्रातः होने पर चले गये लेकिन आग बुझाना भूल गये। आग महावीर के चरणों तक फैल गई, जिससे उनके पैर झुलसने लगे, मगर प्रभु अपने स्थान से विचलित नहीं हुए। बहुशाल गाँव के शालवन में व्यंतरी ने अनेकों उपसर्ग महावीर पर किये; लेकिन महावीर अपने कर्मों को काटने हेतु इन उपसर्गों को बड़ी ही सहनशीलता से सहते रहे।

म्लेच्छों की उद्दण्डता, अज्ञानता एवं अधर्मों को मिटाने हेतु महावीर ने अनार्य-देश में निर्भय हो कर विहार किया। यहाँ महावीर को मलेच्छों ने कई प्रकार की यातनाएँ दीं। शिकारी कुत्ते महावीर के शरीर को काटने हेतु छोड़े, लाठियों से बुरी मार दी और फांसी के तख्ते पर चढ़ाने तक नहीं हिचकिचाए। जब महावीर की घोर तपस्या की प्रशंसा इन्द्र ने की तो संगमदेव इसे सहन नहीं कर सका और प्रभु महावीर को यातनाएँ देने एवं तपस्या से विचलित करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। संगमदेव ने महावीर पर एक ही रात में १८ प्रकार के भीषण भयंकर विनाशकारी उपसर्ग किये। धूल की भीषण आँधी से डगमगाना, सुई की-सी तीक्ष्ण मुख वाली चींटियों, शरीर पर काट कर चिपकने वाली चींटियों-बिच्छुओं-न्योलों-सर्पों से कटवाना, चूहों से कटवाना एवं उस पर पेशाब करना, हाथी और हथिनी की भीषण गर्जना एवं प्रहार, भयंकर पिशाच, बाघ आदि जंगली पशुओं की गर्जना से डरवाना, चंडास खाने वाले पशु इन पर छोड़ना, पैरों पर खीर पकाना, महावीर के माता-पिता को लाना, कालचक्र से दबाना आदि कई प्रकार के उपसर्ग किये; लेकिन महावीर इन उपसर्गों से नाममात्र को भी विचलित नहीं हुए और बड़ी गम्भीरता से इन्हें सहन किया। संगम असफल रहा तो भी उसने छह मास तक प्रभु पर हर प्रकार से भीषण से भीषण उपसर्ग किये। इन उपसर्गों के कारण महावीर को छह मास तक बिना आहार के रहना पड़ा। अंत में जब संगमदेव हार कर जाने लगा तो प्रभु की आँखें डबडबा आईं; क्योंकि संगमदेव ने अपने कर्म-बन्धन कर लिए थे। प्रभु ने उन्हें हर प्रकार से क्षमा किया।

संगमदेव के उपसर्गों का सिलसिला समाप्त ही नहीं हुआ था कि महावीर स्वामी विहार कर षणमानिक गाँव पधारे। यहाँ आप कायोत्सर्गमुद्रा में खड़े थे कि एक ग्वाला अपने बैलों को आपके पास निगरानी हेतु छोड़ गया। ग्वाले के वापस आने पर बैल नहीं मिले। पूछताछ पर महावीर का जवाब नहीं मिलने पर गुस्से में आकर उनके कानों में कीले ठोक दिये। भीषण पीड़ा पाते हुए भी प्रभु के मुख से उफ तक नहीं निकला।

कर्मों को काटने वाले महावीर स्वामी परोक्षा में सफल रहे। केवल ज्ञान प्राप्त होने पर आपने जगत् को सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य; अचौर्य का मार्ग बताया। जिससे वे महान् बन गये। महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे भगवान् महावीर स्वामी के नाम से जैन जगत् के २४ वें तीर्थंकर कहलाए। आपकी सहन-शीलता, गम्भीरता के कारण आज भी सारा विश्व आपको क्षमामूर्ति भगवान् महावीर स्वामी के रूप में पूजता और मानता है।
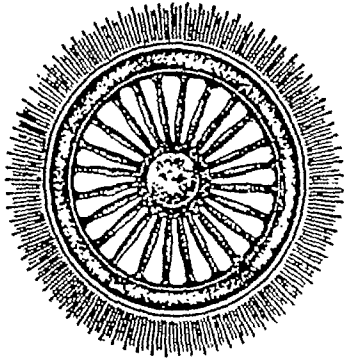
तीर्थंकर महावीर : धर्मचक्र-प्रवर्तन से परिनिर्वाण तक

—डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर

तीर्थंकर महावीर के अप्रतिम व्यक्तित्व ने अपनी सम्यक् साधना के बल पर स्वपरप्रकाशकरूप केवल ज्ञान को प्राप्त किया। केवल ज्ञानी हो जाने पर सर्वज्ञ महावीर अर्हन्त बन गये। उन्होंने स्वयं के अनुभूतिमय जीवन-दर्शन को संसरण से संतप्त जनसाधारण तक पहुँचाने का लक्ष्य बनाया, ताकि वह भी यथाशक्ति आध्यात्मिक साधना कर संसार के इस जन्म-मरण के दुश्चक्र से दूर हो सके। इस दृष्टि से उन्होंने अपना धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। प्रथम देशनाकाल में जनसमूह उनके गम्भीर उपदेश को ग्रहण नहीं कर सका। इसलिए भ. महावीर ने सर्वप्रथम अपनी बात कुछ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय किया। बुद्ध ने भी अपना प्रथम धर्मोपदेश पंचवर्गीय भिक्षुओं को दिया था।

विद्वान शिष्यों की खोज में महावीर जृम्भिकाग्राम से मध्यमपावा पहुँचे। वहाँ आर्य सोमिल ने विराट्यज्ञ का समायोजन किया था; जिसमें अनेक स्थानों से प्रकाण्ड पण्डित उपस्थित हुए थे। इस समय महावीर भी बहुजन-परिचित हो चुके थे। पावा पहुँचते ही उनके भक्तशिष्यों ने एक सुन्दर और सुव्यवस्थित विशाल-मण्डप बनाया, जिसे शास्त्रीय परिभाषा में 'समवसरण' कहा गया है। वहाँ बिना किसी भेदभाव के सभी को समानरूप से बैठने का अवसर दिया गया। तात्कालिक सामाजिक विषम परिस्थिति में यह एक विशेष आकर्षक घटना थी। महावीर भगवान् ने वहाँ बैठ कर अपना दिव्य उपदेश दिया।

प्राकृत—अभिव्यक्ति का माध्यम

भगवान् महावीर के उपदेश की भाषा जनसाधारण की भाषा थी, जिसे अर्धमागधी अथवा प्राकृत कहा गया है। संस्कृत तो आभिजात्यवर्ग की भाषा थी, जो विशेष शिक्षित अथवा उच्चवर्गों और उच्चवर्णों तक सीमित थी। यह वर्ग संख्या में न्यूनतर था। इसलिए लोकभाषा संस्कृत न होकर प्राकृत थी। प्राकृत ही सर्वसाधारण व्यक्ति की अभिव्यक्ति का साधन था।

गणधर

भगवान् महावीर का व्यक्तित्व बहुत अधिक लोकप्रिय हो चुका था। वे विद्वानों और मनीषियों में अप्रतिम थे। उनके उपदेश सर्वसाधारण के भी अन्तःस्तल तक पहुँचने लगे थे। इसलिए वे जनसमुदाय के आकर्षण के केन्द्रबिन्दु बन गये थे। इस स्थिति में यह आवश्यक था कि भगवान् महावीर अपने धर्मप्रचार के लिए कतिपय विशिष्ट विद्वानों को शिष्य बनायें, जो उनके सिद्धान्तों को समुचितरूप से समझ कर जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। इन्हीं को शास्त्रीय परिभाषा में गणधर कहा गया है।

श्वेताम्बर-जैनागमों में महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर बताये गये हैं—इंद्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डिक, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल-भ्राता, मेतार्य और प्रभास। ये सभी विद्वान् महावीर के व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर उनके पास आये और अपने प्रश्नों का समाधान पाकर उनके परमशिष्य बन गये। दिगम्बरपरम्परा[1] में निम्नलिखित ग्यारह गणधरों के नाम मिलते हैं—इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्मा, मौर्य, मौन्द्र, पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन, अन्धवेल या अन्वचेल और प्रभास। इन गणधरों में से वहाँ मात्र इन्द्रभूति के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। श्वेताम्बर-साहित्य में अवश्य उनके विषय में कहीं अधिक सूचनाएँ उपलब्ध हैं।

१. इन्द्रभूति

मगधवर्ती गोर्वर ग्राम में वसुभूति नामक एक ब्राह्मण विद्वान् रहता था। उसके तीन पुत्र थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति। ये तीनों पुत्र भी वैदिक साहित्य और क्रियाकाण्ड के कुशल और प्रतिभाशाली; पर अहंमन्य पण्डित थे। वे अपने समक्ष और किसी दूसरे की विद्वत्ता को स्वीकार नहीं करते थे। उस समय यज्ञ-क्रियाकर्म अधिक लोकप्रिय था। मध्यम पावा में इन्द्रभूति अपने शिष्यों सहित आर्य सोमिल के विराट् यज्ञ का आयोजन करा रहे थे। भगवान् महावीर भी जृम्भिकाराम से वहाँ पहुँचे और बाह्य उद्यान में ध्यानस्थ हो गये।

आश्चर्य की बात थी कि जनसमुदाय याज्ञिक उत्सव की अपेक्षा महावीर के दर्शन करने में अधिक उत्साह दिखा रहा था। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक क्रियाकाण्ड की जड़ें हिल चुकी थीं, समाज सही मार्गदर्शन पाने के लिए आतुर था।

इन्द्रभूति को भगवान् महावीर की लोकप्रियता ईर्ष्या का कारण बन गई। इतने में ही एक वृद्ध विद्वान व्यक्ति उससे निम्नलिखित श्लोक का अर्थ पूछने आया—

---

१. उत्तरपुराण, २४, ३७३-३७४।

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच ।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य ॥[1]

इन्द्रभूति के लिए अत्थिकाय छज्जीवणिकाय, महव्वय, अट्ठपवयणमादा आदि पारिभाषिक शब्द बिलकुल नये थे। इसलिए विवश होकर उन्हें उससे यह कहना पड़ा कि मैं इस गाथा का अर्थ तुम्हारे गुरु के समक्ष ही बताऊँगा।

यह वृद्ध विद्वान आगमानुसार तो इन्द्र था, पर अपने आपको तीर्थंकर या विद्वान् मानने वालों की परीक्षा करने वाला कोई विशिष्ट व्यक्तित्व रहा होगा। अथवा यह भी सम्भव है कि महावीर की देशना कहाँ तक तथ्यसंगत है; यह ज्ञात करने के लिए वह पण्डितमन्य इन्द्रभूति के पास पहुँचा हो।

महावीर के पास पहुँचते ही इन्द्रभूति गौतम स्वतः हतप्रभ-सा होने लगा। महावीर ने स्वयं उसके हृदयांकित प्रश्नों को उसके समक्ष रखा। इन्द्रभूति को आत्मा के अस्तित्व के सन्दर्भ में विशेष शंका थी। उसका पक्ष था कि आत्मा घटादि पदार्थों के समान प्रत्यक्ष नहीं है। वह अनुमानगम्य भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनुमान भी प्रत्यक्षपूर्वक होता है। आत्मा आगमगम्य भी नहीं है, क्योंकि अनुमान के बिना आगम की सिद्धि नहीं होती। अदृष्टार्थ-विषयक नरक, स्वर्ग आदि की सिद्धि का भी अनुमान ही मूल कारण है तथा तीर्थिकों के सभी आगम परस्पर विरोधी हैं; अतएव आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय ही उत्पन्न होता है।

भगवान् महावीर ने गौतम इन्द्रभूति के उक्त संदेह को दूर करते हुए कहा कि आत्मा प्रत्यक्ष है; क्योंकि स्वसंवेदनसिद्ध जो संशयादिविज्ञान तुम्हारे हृदय में प्रस्फुटित हो रहा है, वही आत्मा है। और जो प्रत्यक्ष है, वह प्रमाणान्तर द्वारा साध्य नहीं। जैसे स्वशरीर में ही सुखदुःखादिक आत्मसंवेदन सिद्ध है। तथा जानता हूँ, करता हूँ, बोलता हूँ, इत्यादि प्रकार से जो यह त्रैकालिक कार्य-व्यपदेश है, उसमें रहने वाले अहंप्रत्यय से भी आत्मा सिद्ध होती है। जिसे आत्मा निश्चय का संशय होगा, वह कर्मबन्ध, मोक्षादिक के विषय में भी संशयालु रहेगा। स्मृति, जिज्ञासा, चिकीर्षा आदि गुणों का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होने से घट की तरह आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। यदि गुणों से गुणी को अनर्थान्तरभूत माना जाय तो उसके ग्रहण होने पर आत्मा का ग्रहण हो ही जायगा। यदि गुणों से गुणी को अर्थान्तरभूत माना जाय तो घटादिक गुणी प्रत्यक्ष नहीं होंगे। अतः द्रव्य से विरहित कोई गुण नहीं होता।[2]

इन्द्रभूति गौतम महावीर भगवान् से अपने प्रश्न का समुचित समाधान पा कर प्रसन्न हुआ और उनका शिष्यत्व भी स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि इन्द्रभूति

---

१. षट्खण्डागम, ६, पृ० १२६।
२. विशेषावश्यक भाष्य, १५४०-६०।

का निमित्त पा कर भगवान् महावीर ने केवलज्ञानप्राप्ति के छ्यासठ दिन बाद श्रावणकृष्णा प्रतिपदा के दिन राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर धर्मोपदेश दिया।[१] जैन साहित्य में इन्द्रभूति को प्रथम गणधर कहा गया है। भगवान् महावीर के उपदेशों का विश्लेषण, प्रचारण, और प्रसारण का समूचा उत्तरदायित्व और श्रेय इन्द्रभूति गौतम को ही है। महावीर के उपदेश की भाषा तत्कालीन लोकभाषा थी, जिसे प्राकृत अथवा अर्धमागधी कहा गया है। गौतम भी इसी भाषा में जनसमुदाय के लिए भगवान् महावीर के उपदेशों का विश्लेषण करते थे।

२. अग्निभूति

इन्द्रभूति के बाद शेष दश प्रमुख विद्वान् भी क्रमश: महावीर के शिष्य बन गये। द्वितीय विद्वान् अग्निभूति का सन्देह था कि कर्म है या नहीं ? महावीर ने कहा कि कर्म का अस्तित्व निश्चितरूप से है। वह प्रत्यक्षत: नहीं पर अनुमानत: अवश्य दिखाई देता है। सुखदु:खादि की अनुभूति का कारण कर्म ही है। तुल्य साधन होने पर सुखदु:खादि के अनुभवन में जो तारतम्य देखा जाता है, उसका मूल कारण कर्म है। बाल शरीर का पूर्ववर्ती जो शरीरान्तर है वह कर्म है। वही कर्म कार्माणशरीर है।[२] अपने प्रश्न का उत्तर पा कर अग्निभूति भी महावीर का शिष्य बन गया।

३. वायुभूति

वायुभूति का मन्तव्य था कि चैतन्य भूतों का धर्म है तथा शरीर और आत्मा अभिन्न हैं। महावीर ने कहा कि भूत की प्रत्येक अवस्था में चेतना का अभाव होने पर सामुदायिक रूप में चेतना की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? रेणु-समुदाय में भी तेल कैसे उत्पन्न हो सकता है ? भूतों के प्रत्येक अंग में चेतन की न्यूनमात्रता मानी जाय और उसके सामुदायिक रूप से चेतना की उत्पत्ति मानी जाय तो भी ठीक नहीं। क्योंकि जिस प्रकार मद्यांगों में न्यूनाधिक मात्रा में मदशक्ति रहती है, उसी प्रकार प्रत्येक भूत में चैतन्यशक्ति दिखाई नहीं देती। मद्य के प्रत्येक अंग में मदशक्ति मानना अनावश्यक नहीं कहा जा सकता; अन्यथा कोई भी वस्तु मद का कारण हो जायगा। अत: चैतन्य भूतों का धर्म नहीं माना जा सकता और न शरीर और आत्मा अभिन्न कहे जा सकते हैं।[३] वायुभूति भी अपने प्रश्न का समाधान पा कर महावीर का शिष्य हो गया।

---

१. तिलोय पण्णत्ति, १६८; हरिवंशपुराण, २, ६१-६६; धवला, भाग १।

२. विशेषावश्यक भाष्य, १६१०-१४।

३. वही, १६५०-१६५४।

४. व्यक्त

विद्वान् व्यक्ति अथवा शुचिदत्त का सन्देह था कि भूतों का कोई अस्तित्व नहीं। वे मात्र स्वप्नोपम हैं। महावीर ने कहा—यदि संसार में भूतों का अस्तित्व ही न हो तो उनके विषय में आकाशकुसुम के समान सन्देह ही उत्पन्न नहीं होगा। विद्यमान वस्तु में ही सन्देह उत्पन्न होता है। आगे चलकर यही सिद्धान्त शून्यवाद के रूप में साहित्य और दर्शन में प्रस्फुटित हुआ। विशेषावश्यकभाष्य में तो इसे शून्यवाददर्शन ही कहा गया है।[1]

५. सुधर्मा

सुधर्मा "इहभव के समान ही परभव में गति मिलती है;" यह मानते थे। महावीर ने कहा—यह सोचना भ्रममूलक है। कार्य कारण के समान होता है। यह नियम एकान्तिक नहीं। श्रृङ्ग से शर नामक वनस्पति होती है। उसमें सर्षप लगा देने पर भूतृण उत्पन्न होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मों का फल भिन्न-भिन्न होता है। उनके अनुसार ही परलोक में जन्म मिलता है।[2]

६. माण्डिक (मण्डित)

"जीव का कर्म के साथ संयोग होता है।" इसमें माण्डिक को सन्देह था। भगवान् महावीर ने कहा—बीजांकुर के समान देह और कर्म अनादि हैं हेतुहेतुमद्भाव होने से। घट का कर्ता कुम्भकार है। उसी के समान जीव कर्म का कर्ता है और उसी प्रकार कारण होने से कर्म देह का कारण है। अनादि होने पर भी जीव और कर्म का संयोग तप द्वारा नष्ट हो सकता है। इस प्रकार बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है।[3]

७. मौर्य

मौर्य को देवों के अस्तित्व में सन्देह था। महावीर ने कहा—देवों का अस्तित्व है। यह जातिस्मरण आदि से सिद्ध है। देवता के न होने पर स्वर्गीय फल निष्फल हो जायगा और वेदवाक्य निरर्थक हो जायेंगे।[4]

८. अकम्पित

अकम्पित का मत था कि प्रत्यक्ष और अनुमान से उपलब्ध न होने के कारण नारकियों का अस्तित्व नहीं है। महावीर ने कहा—नारकियों का अस्तित्व है, क्योंकि

---

१. वही, १६९०-१७६८।
२. वही, १७७०-१८०९।
३. वही, १८०३-१८६०।
४. वही, १८६७-१८८३।

उसे सर्वज्ञ ने देखा है। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष तो उपचारतः रहता है। इन्द्रियाँ अमूर्त होने से उपलब्धि करने में असमर्थ हैं, समर्थ तो है ज्ञान। पाँच खिड़कियों से देखने वाले एक व्यक्ति के समान जीव इन्द्रियों से भिन्न है। इन्द्रियरूप आच्छादनरहित जीव अधिक वस्तुओं को जानता है। अतः नरकसिद्धि में प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों कारण सिद्ध हो जाते हैं। प्रकृष्ट पुण्यभागी देव हैं तो प्रकृष्ट पापभागी नारकी भी होंगे।[1]

६. अचलभ्राता

अचलभ्राता के मन में पुण्य-पाप के सम्बन्ध में पाँच विकल्प थे—(i) केवल पुण्य है, (ii) केवल पाप है, (iii) दोनों अपृथक् हैं, (iv) दोनों पृथक् हैं, तथा (v) स्वभाव ही सब कुछ है। महावीर ने उत्तर दिया कि पथ्याहारी के समान पुण्य की उत्कर्षता और अपकर्षता देखी जाती है। इसी प्रकार अपथ्याहार से दुःख देखा जाता है। अतः पुण्य-पाप दोनों हैं और वे संयुक्त हैं। परस्पर उत्कर्ष-अपकर्ष में उन्हें तदनुसार नाम दे देते हैं। दोनों पृथक् हैं और सुख-दुखः से उनका अस्तित्व माना जाता है। स्वभाव ही सब कुछ नहीं है।[2]

१०. मेतार्य

मेतार्य को सन्देह था कि परलोक है या नहीं? महावीर ने इसका समाधान किया और कहा कि जातिस्मरण आदि के कारण यह सिद्ध है कि भूतों के व्यतिरिक्त आत्मा है। वायुभूति के प्रश्न के सन्दर्भ में इस प्रश्न का समाधान किया जा चुका है।

११. प्रभास

प्रभास का मत था—दीप के नाश की तरह जीव का निर्वाण जीव का नाश है। अथवा अनादि होने से आकाश की तरह जीव-कर्म का सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा। नारकादि पर्यायों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश हो जाता है। फिर मोक्ष कहाँ? महावीर ने इसका उत्तर दिया कि नारकादि पर्यायों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश नहीं होता। जीवत्व कर्मकृत नहीं। कर्मनाश होने पर संसार का नाश अवश्य होता है। विकारधर्म वाला न होने से जीव विनाशी सिद्ध नहीं होता। मुक्त हो जाने से जीव और कर्म का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।[2] यहाँ भगवान् महावीर ने पदार्थ के स्वरूप का भी विश्लेषण किया कि वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है। निश्चयनय ध्रौव्यात्मक तत्व का प्रतीक है और व्यवहारनय उत्पाद-व्यय-तत्वों का।

---

१. वही, १८८८-१८६०।

२. वही, १६०८-१६४७।

इस प्रकार इन्द्रभूति गौतम और उसके दशों प्रधान विद्वान् साथी शिष्य महावीर स्वामी की प्रकाण्ड विद्वत्ता और सर्वज्ञता के समक्ष सविनय नतमस्तक हुए और अपने चौदह हजार शिष्यपरिवार-सहित उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया। महावीर स्वामी के ये ही ग्यारह प्रधान शिष्य हुए; जिन्हें जैनशास्त्रों में गणधर कहा गया है। इन ग्यारह गणधरों में प्रधान गणधर थे—इन्द्रभूति गौतम।

दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनों परम्पराओं में गणधरों की संख्या में तो कोई मतभेद नहीं, पर उनके नामों में मतभेद अवश्य है। इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, सुधर्मा, मौर्यपुत्र, अकम्पित, और प्रभास तो दोनों परम्पराओं को मान्य है; पर व्यक्त मण्डित, अचलभ्राता और मेतार्य को दिगम्बरपरम्परा स्वीकार नहीं करती। उनके स्थान पर वह मौन्द्र, पुत्र, मैत्रेय और अन्धवेल का नाम प्रस्तावित करती है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि श्वेताम्बराम्नाय मौर्यपुत्र को एक ही गणधर मानती है; पर दिगम्बराम्नाय उसे मौर्य और पुत्र नाम के दो गणधर बताती है।

चतुर्विध संघ की स्थापना

ग्यारह गणधरों के शिष्य बन जाने पर महावीर भगवान् की लोकप्रियता और विश्रुति और अधिक बढ़ गई। साथ ही उनके अनुयायियों की संख्या में भी वृद्धि होना प्रारम्भ हो गया। यह देख कर भगवान् ने सात अथवा नव गणों की स्थापना की और उनका उत्तरदायित्व पूर्वोक्त गणधरों को सौंप दिया।

इसके उपरान्त उन्होंने अपने अनुयायियों को भी चार श्रेणियों में विभाजित कर दिया—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साध्वियों का नेतृत्व आर्या चन्दन-बाला को सौंपा गया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की और वे स्वयं तीर्थंकर की कोटि में पहुँच गये। बौद्ध साहित्य में संघी, गणी, गणाचरिय, तित्थकर, सब्बञ्ञु आदि सम्माननीय शब्दों से उनका अनेक वार स्मरण किया गया है।

धर्मप्रचार और वर्षावास

चतुर्विध संघ की स्थापना के उपरान्त भगवान् महावीर ने सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय धर्मप्रचार करना प्रारम्भ किया; ताकि सांसारिक प्राणी भौतिकता से दूर हट कर आत्म-कल्याण कर सकें। जनकल्याणकारिता के कारण ही उन्हें अर्हन्त जिन कहा गया है और पंचपरमेष्ठियों में प्रथमपरमेष्ठी के अन्तर्गत उनका नाम रखा गया है।

केवलज्ञान-प्राप्ति के वाद की भी जीवन-घटनाओं का विवरण दिगम्वर साहित्य में समुचित और सुसम्वद्ध नहीं मिलता; जवकि श्वेताम्वरसाहित्य में उसे

किसी सीमा तक क्रमबद्ध कर दिया गया है। दोनों परम्पराओं के आधार पर भगवान् महावीर के धर्मप्रचार और वर्षावास के प्रमुख स्थल निम्नप्रकार से निश्चित किये जा सकते हैं—

१. मध्यमपावा, राजगृह (वर्षावास)।
२. ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड, वैशाली (वर्षावास)।
३. कौशम्बी, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम, (वर्षावास)।
४. राजगृह (वर्षावास)।
५. चम्पा, वीतभय, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
६. वाराणसी, आलंभिया, राजगृह (वर्षावास)।
७. राजगृह (वर्षावास)।
८. कौशाम्बी, आलंभिया, वैशाली (वर्षावास)।
९. मिथिला, काकन्दी, पोलासपुर, वाणिज्यग्राम, वैशाली (वर्षावास)।
१०. राजगृह (वर्षावास)।
११. कयंगला, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१२. ब्राह्मणकुण्ड, कौशाम्बी, राजगृह (वर्षावास)।
१३. चम्पा (वर्षावास)।
१४. काकन्दी, मिथिला, (वर्षावास)।
१५. श्रावस्ती, मिथिला (वर्षावास)।
१६. हस्तिनापुर, मोकानगरी, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१७. राजगृह (वर्षावास)।
१८. चम्पा; दशार्णपुर, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१९. काम्पिल्यपुर, वैशाली (वर्षावास)।
२०. वैशाली (वर्षावास)।
२१. राजगृह, चम्पा, राजगृह (वर्षावास)।
२२. राजगृह, नालन्दा (वर्षावास)।
२३. वाणिज्यग्राम, वैशाली (वर्षावास)।
२४. साकेत, वैशाली (वर्षावास)।
२५. राजगृह (वर्षावास)।
२६. नालन्दा (वर्षावास)।

२७. मिथिला (वर्षावास)।
२८. मिथिला (वर्षावास)।
२९. राजगृह (वर्षावास)।
३०. अपापुरी मध्यमपावा (वर्षावास)—परिनिर्वाणस्थल ।

भगवान महावीर ने अपने तीसवर्षीय धर्मप्रचारकाल में जैनधर्म को भारत वर्ष के कोने-कोने में फैला दिया। उनका भ्रमण विशेषतः उत्तर, पूर्व, पश्चिम और मध्यभारत में अधिक हुआ। बड़े-बड़े राजे-महाराजे भी उनके अनुयायी भक्त थे। श्रावस्ती का नरेश प्रसेनजित्, अंगदेश का नरेश कुणिक, चम्पा का नरेश दधिवाहन, कौशाम्बी का नरेश शतानीक, कलिंग का नरेश जितशत्रु आदि जैसे प्रतापी महाराजा भगवान के भक्त और उपासक थे।

दक्षिणापथ में भी भगवान् का विहार हुआ। उस समय यह भाग हेमांगद के नाम से विश्रुत था। महाराजा सत्यन्धर के सुपुत्र जीवंधर उस समय वहाँ के राजा थे। राजपुर उसकी राजधानी थी। जैनधर्म का प्रचार यद्यपि उस प्रदेश में पहले से ही था, पर महावीर के भ्रमण से उसमें एक नया उत्साह और नयी प्रेरणा जागृत हुई। आज भी दक्षिण में जैनधर्म, साहित्य और कला के प्रमाण प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होते हैं। श्रीलंका आदि दक्षिणवर्ती देशों में उस समय जैनधर्म पहुँच गया था। पालि-साहित्य, विशेषतः महावंश, इसका विश्वसनीय प्रमाण है।

इसी प्रकार महावीर का परिभ्रमण मगध (राजगृह), अंग (चम्पा), बंग (ताम्रलिप्ति), कलिंग (कांचनपुर), काशी (वाराणसी), कौशल (साकेत), कुरु (हस्तिनापुर), पांचाल (काम्पिल्य), जांगल (अहिच्छत्र), सौराष्ट्र (द्वारावती), विदेह (मिथिला), वत्स (कौशाम्बी), शाण्डिल्य (नन्दिपुर), मलय (भद्दिलपुर), मत्स्य (वैराट), अत्स्य (वरुणा), दशार्ण (मृत्तिकावती), चेदि (शुक्तिमती), सिन्धु-सौवीर (वीतभय), शूरसेन (मथुरा), भंगी (पावा), वर्त्त (मासपुरी), कुणाल (श्रावस्ती), लाढ (कोटिवर्ष), केकय (श्वेताम्बिका), अवन्ति (उज्जैन) आदि देशों में हुआ और वहाँ उन्होंने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

हरिवंशपुराण[1] के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर ने वाल्हीक (वैक्ट्रिया), यवन (यूनान), गांधार (अफगानिस्तान), कम्बोज, वज्रभूमि, (वीरभूमि) स्वर्णभूमि, (सुमात्रा), दृढ़भूमि आदि देशों में भी भ्रमण किया था। उस समय ये देश भारत की सीमा में आते होंगे।

---

१. हरिवंशपुराण, ३, ५।

संघ प्रमाण

तीर्थंकर महावीर का व्रती संघ इस प्रकार था[1]—

१.	गणधर	११
२.	गण	७ अथवा ९
३.	केवली	७००
४.	मनःपर्यायज्ञानी	५००
५.	अवधिज्ञानी	१३००
६.	चौदह पूर्वधारी	३००
७.	वादी	४००
८.	वैक्रियकलब्धिधारी	७००
९.	अनुत्तरोपपातिक मुनि	८००
१०.	साधु	१४०००
११.	साध्वियाँ	३६०००
१२.	श्रावक	१५९०००
१३.	श्रविकाएँ	३१८०००
		५३१७१८

इसमें साधारण श्रावक-श्राविकाओं की गणना सम्मिलित नहीं है। मात्र व्रतधारियों की ही यहाँ गणना की गई है। सम्भव है, यहाँ व्रती संघ के अन्तर्गत उन्हीं को रखा गया हो, जो ग्याहरवीं प्रतिमा तक पहुँच चुके हों। यदि ऐसा माना जाय तो यह संख्या अनगाररूप से प्रवजित साधुओं की ही होगी। उद्दिष्टत्यागी को भी श्रावक कहा गया है। साधारण श्रावक-श्राविकाओं की गणना यहाँ नहीं होगी।

परिनिर्वाण

राजगृह में ४१वाँ वर्षावास कर तीर्थंकर महावीर धर्मप्रचार करते हुए मल्लों की राजधानी अपापुरी (पावापुरी) पहुँचे। वहाँ के राजा हस्तिपाल ने उनका आवभीना स्वागत किया। धर्मोपदेश देते हुए पावापुरी में वर्षाकाल के तीन माह व्यतीत हो चुके थे। चौथे माह की कार्तिक कृष्णा अमावस्या का प्रातःकाल भगवान् महावीर का अन्तिम समय था। वे अनवरत धर्मदेशना दे रहे थे। उनकी सभा में काशी, कौशल के नौ मल्ल और नौ लिच्छवी, ये अठारह गणराजा भी उपस्थित थे। अन्त में उन्होंने ४अघातिया कर्मों का भी क्षय कर परम निर्वाणपद प्राप्त किया।[2]

---

१. कल्पसूत्र, १२६; उत्तरपुराण।

२. कल्पसूत्र, १३३-१४४; ७४, ३७३-३७९.

भगवान् महावीर ने तीस वर्ष की आयु में महाभिनिष्क्रमण किया, एवं छद्मस्थकाल के बारह और केवलीचर्या के तीस, कुल बयालीस चातुर्मास किये। इस प्रकार कुल मिला कर महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की मानी गई है।

इस निर्वाणप्राप्ति के उपलक्ष्य में लिच्छवि, मल्ल राजा, महाराजाओं ने दीप जला कर निर्वाण महोत्सव मनाया। आज भी दीपावली के रूप में उसे धूम-धाम से मनाया जाता है।

परिनिर्वाण-काल

यद्यपि भगवान् महावीर का परिनिर्वाणकाल विवादग्रस्त है, तथापि परम्परानुसार महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० कहा जा सकता है।

कुछ विद्वानों ने ४६८ और ४८२ तथा ५२७ और ५४६ ई० पूर्व के बीच निर्वाणकाल माना है।

हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टी-शलाका-चरित्र में लिखा है कि महावीरनिर्वाण से १६६९ वर्ष बाद कुमारपाल का जन्म हुआ है। यानी ई० सन् ११४२ में हुआ। अतः महावीर का निर्वाणकाल १६६९-१११८=५२७ ई० पूर्व है।

निर्वाण-स्थल

भगवान् महावीर का निर्वाणस्थल भी एक विवाद का विषय बना हुआ है। वह गंगा के दक्षिणवर्ती प्रदेश में स्थित पावा है अथवा उत्तरवर्ती प्रदेश में स्थित पावा है ? गंगा का उत्तरवर्ती पावा प्राचीनकाल में पपहुर और अपापुरी के नाम से प्रचलित था। वहाँ राजा हस्तिपाल की राजधानी भी थी। वर्तमान में वह गोरखपुर जिले के अन्तर्गत आता है। गंगा का दक्षिणवर्ती पावा राजगृह के समीप स्थित है, जिसे परम्परा से भगवान् महावीर का निर्वाणस्थल स्वीकारा गया है।

प्रश्न यह है कि वह कौन-सी पावा है, जिसे महावीर के निर्वाण-स्थल बनने का सौभाग्य मिला है ? निर्वाण के प्रसंग में हम पालि-साहित्य में प्राप्त उद्धरणों का उल्लेख कर आये हैं। उनसे यह स्पष्ट है कि महावीर का निर्वाण मल्लों की राजधानी नगरी पावा में हुआ।[1]

इतिहास में मल्ल राजा दो भागों में विभाजित थे। एक पावा के मल्ल और दूसरे कुसीनारा के मल्ल। पावा के मल्लों की राजधानी में ही महावीर का निर्वाण हुआ। उत्तर में वज्जियों और मल्लों का राज्य था, तथा दक्षिण में मगध में लिच्छवियों

---

१. पावा नाम मल्लानं नगरं तदवसरि...............। तेन खोपनसमयेन निगण्ठो नातपुत्तो पावायं अधुना कालङ्कतो होति।—दीघनिकाय पथिकवग्ग, संगीति-सुत्त।

और ज्ञातृकुलों का राज्य था। उत्तर में बुद्ध का प्रभाव अधिक था और दक्षिण में महावीर का। परन्तु दोनों प्रदेशों में बुद्ध और महावीर समानरूप से बिहार करते रहे और समानरूप से समादर पाते हुए धर्मदेशना देते रहे। मल्लों और लिच्छवियों के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, फिर भी वे इन दोनों महापुरुषों के भक्त थे।

भगवान् महावीर के निर्वाण के समय नौ मल्लकी तथा नौ लिच्छवी अठारह गणराजा उपस्थित थे।[1] महावीर का जिस समय पावा में निर्वाण हुआ, उस समय बुद्ध कुसीनारा में थे और उसका परम शिष्य चुन्द पावा में ही वर्षावास कर रहा था। महावीर का परिनिर्वाण होते ही वह बुद्ध के पास सूचना देने स्वयं पहुँच गया। यह सम्भव तभी हो सकता है, जब पावा और कुसीनारा समीप हों। दीघनिकाय अट्ठकथा में कहा है कि पावा से कुसीनारा की दूरी तीन गव्यूति (कोस) है—**पावा नगरतो तीणि गावुतानि कुसीनारा नगरं**। महावीर यहीं अन्तिम वर्षावास करने राजगृह से आये थे। सम्भव है, उनका यह कार्य मल्लों और लिच्छवियों के बीच एकता स्थापित करने के लिए रहा हो।

इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत दक्षिण पावा को महावीर भगवान् का निर्वाणस्थल नहीं कहा जा सकता। यह पुनीत स्थल गंगा के उत्तरवर्ती प्रदेश में स्थित पावा ही होना चाहिए। यहीं उनका अन्तिम वर्षावास हुआ होगा।
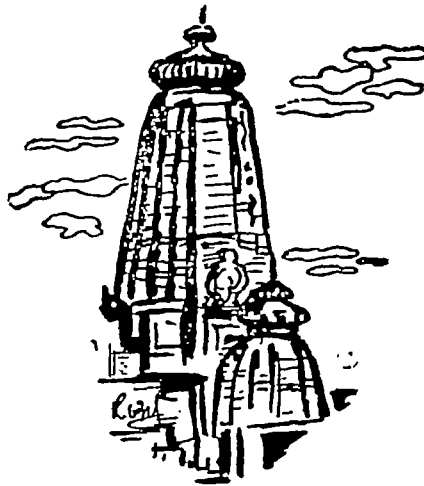
१. कल्पसूत्र, १२८।

श्री दिगम्बरदासजी एडवोकेट इतिहास के अच्छे विद्वान हैं। दीपावली पर्व का श्रीगणेश कब से हुआ ? इस सम्बन्ध में आपने शोधपूर्ण युक्तिसंगत एवं प्रमाणपुरःसर लेख प्रस्तुत किया है। दीपावली महावीरनिर्वाण से अधिक सम्बन्धित क्यों हैं ? इसके कारणों की भी सुन्दर मीमांसा की है।—सम्पादक

महावीर-निर्वाण एवं दीपावली का प्रारम्भ

श्री दिगम्बरदास जैन एडवोकेट, सहारनपुर

□

इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है कि दीपावली एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पर्व है, परन्तु यह कब और क्यों प्रारम्भ हुआ ? इसका कारण कुछ विद्वान, महर्षि स्वामी दयानन्द का स्वर्गवास, कुछ स्वामी रामतीर्थ का गंगा में समाधि लगा कर शरीर त्यागना, कुछ छठे गुरु हरगोविन्दसिंह का मुगल सम्राट् जहाँगीर के वन्दीखाने ग्वालियर किले से मुक्त होना और कुछ श्री रामचन्द्रजी का लंकाधीश रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या लौटना बताते हैं।

महर्षि दयानन्द का स्वर्गवास, स्वामी रामतीर्थ का शरीर त्यागना तथा सिक्ख-गुरु श्री हरगोविन्दसिंह का वन्दीखाने से मुक्त होना तो अधिक से अधिक तीन सौ-चार सौ वर्षों की घटना है और दीपावली उसके बहुत पहले से प्रचलित है। यह सत्य है कि यह घटनाएँ दीपावली-पर्व पर हुईं, परन्तु दीपावली पर्व के श्रीगणेश से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

कहा जाता है कि आषाढ़ सुदी दशमी को राम ने रावण पर विजय प्राप्त की, इसीलिए दशहरा पर्व प्रचलित हुआ और कार्तिक वदी चतुर्दशी को वे अयोध्या लौटे; इस उपलक्ष में दीपावली मनाई जाती है। यदि ऐसा होता तो महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास अपनी बनाई हुई रामकथा में इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अवश्य करते। किन्तु इसके विपरीत गोस्वामीजी अपने 'रामचरितमानस के 'लंकाकाण्ड' में लिखते हैं :—

लड़े वहत्तर दिन संग्रामा,
वानर-राक्षस विन विश्रामा।

वसु दस दिन लड़ि सो महि धारा
भूता मधुसित रावण मारा
चैत सुदी चौदह जब आई।
मरो दशानन जग-दुखदाई ।

—गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का लंकाकाण्ड अर्थात् वानरों और राक्षसों का युद्ध बिना विश्राम किये निरन्तर ७२ दिन तक होता रहा और राम ने १८ दिन लड़कर चैत्र सुदी १४ को रावण को मारा।

इस प्रकार तुलसीदास के अनुसार रावण चैत्र मास के शुक्लपक्ष में चतुर्दशी के दिन मारा गया था, आश्विन मास के शुक्लपक्ष की दशमी को नहीं।

वास्तव में प्राचीन समय में आजकल के समान न पक्की सड़कें थीं और न विमानों द्वारा युद्ध होता था। वर्षाऋतु के कारण घोड़ों, खच्चरों एवं रथों का चलना दुर्लभ होता था। आषाढ़ सुदी नवमीं तक वर्षाऋतु समाप्त हो कर आने-जाने का मार्ग साफ हो जाता था। इसीलिए प्राचीन समय के योद्धा अपनी विजययात्रा आसोज सुदी दशमी को प्रारम्भ करते थे। इसके कारण यह दिन विजय-दशमी कहलाता था। कालान्तर में लोगों ने इस विजय-दशमी का अर्थ यह लगा लिया कि इस दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की। सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रेमचन्द शास्त्री ने हिन्दी दैनिक "नवभारत टाइम्स' १७ अक्टूबर १९७१ में बताया कि जब रावण आसोज सुदी दशमी को मारा गया तो विमान द्वारा अयोध्या लौटने में २० दिन क्यों कर लगते? यह सत्य है कि विभीषण ने राम से उस समय लंका में ठहरने के लिए आग्रह किया था, परन्तु ऋषि बाल्मीकि के शब्दों में राम नहीं माने और कहा—

उपस्थापय मे शीघ्रं
विमानं राक्षसेश्वर !
कृतकार्यस्य मे वासः
कथंस्विद्धि सम्मतः ?

अर्थात्-हे राक्षसराज विभीषण ! मेरे जाने के लिये शीघ्र ही विमान मँगाओ। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। अब मेरा यहाँ रहना कैसे सम्मत हो सकता है?

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में यह भी स्पष्ट कर दिया—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य प्राहिणोदवधं हनुम् ॥

अर्थात् वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण हो जाने पर राम लंका से लौटते हुए वैसाख मास की कृष्णा पंचमी को भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। और वहाँ से अपने भ्राता भरत को अपने आने की सूचना देने के लिए श्रीराम ने हनुमानजी को अयोध्या भेजा। ऋषि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में यह भी कहा है—

सहसीतः ससौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ।
पंचमीमथ रजनीमुषिता वचनान्मुनेः ।।

अर्थात्-श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित ने अपनी कुशलता का समाचार आपको दिया है कि आज पंचमी की रात्रि में भारद्वाज मुनि की आज्ञा से वही ठहरेंगे ।

इससे सिद्ध होता है कि रामचन्द्रजी चैत्र चतुर्दशी को रावण पर विजय प्राप्त करके उसकी अन्त्येष्टि करवा कर और विभीषण को राज्य दे कर एक सप्ताह में ही अयोध्या के अतिनिकट-स्थित भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँच गये । अगले दिन अयोध्या में श्रीराम का स्वागत और राजतिलक हुआ । राम का कार्तिक वदी अमावस्या को अयोध्या लौटना किसी प्राचीन प्रामाणिक पुराण, रामायण या इतिहास से सिद्ध नहीं होता । इसीलिए यह कहना उचित है कि दीपावली का आरम्भ भगवान् राम के अयोध्या लौटने के कारण प्रचलित नहीं हुआ । पंजाब के प्रसिद्ध साहित्यकार "हरबंसलाल चोपड़ा" उर्दू दैनिक "प्रताप' दिनांक १४-११-१९५८ में पृष्ठ ५ पर इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि दशहरा और दीपावली में २० दिन का अन्तर है। रावण के मारे जाने पर विभीषण ने राम से दो-चार दिन ठहरने के लिये कहा, परन्तु राम ने स्वीकार नहीं किया और कहा 'यदि मैं शीघ्र अयोध्या नहीं लौटा तो भरतजी अपने प्राण खो देंगे ।' दीपावली के दिन रामचन्द्रजी का अयोध्या लौटना उनकी भी दृष्टि से सत्य नहीं है । यदि ऐसा होता तो दीपावली के अवसर पर उनके अयोध्या-प्रवेश से सम्बन्धित कुछ न कुछ क्रिया अवश्य होती । पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के अनुसार इतिहास रामायण तथा हिन्दू पुराण में इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है ।

श्वेताम्बरग्रन्थ कल्पसूत्र, जिसको मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त ([illegible] ई० पू०) के गुरु जैन-आचार्य अन्तिम श्रुतकेवली 'भद्रबाहु' की रचना कहा जाता है, में SBE भाग २२ पृष्ठ २६६ पर दीपावली का मनाया जाना भगवान महावीर के निर्वाण के उपलक्ष में लिच्छिवि आदि राजाओं द्वारा प्रचलित होने का उल्लेख है। मार्गरेट-स्टीवेन्सन ने भी इस सत्य की पुष्टि "इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स" भाग ५ पृष्ठ ८७५ से—८७८ में दीपावली का आरम्भ वीरनिर्वाण से बताया है। प्रोफेसर परशुराम कृष्ण गोडे, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में महावीरस्मृति-ग्रन्थ भाग II (अंग्रेजी) में भी दीपावली को भगवान महावीर का निर्वाण-उत्सव १८ लिच्छवि—मल्लकि एवं अन्य राजाओं द्वारा दीपावली के रूप में प्रचलित होना स्वीकार करते हैं ।

दीपावली के अवसर पर होने वाले कार्यक्रम स्वयं इन ऐतिहासिक [illegible] सिद्ध करते हैं—

१. कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या के बीच की रात में भगवान् महावीर ने समस्त कर्ममल नष्ट करके सिद्धपद पाया। कर्म-मल के स्थान पर उस रात में घर का कूड़ा-करकट (मल) बाहर फेंका जाता है।

२. दीपावली पाप-दोषों को साफ करके हृदय की शुद्धता का पवित्र उत्सव है। जिसके स्थान पर आज उस अवसर पर लिपाई-पुताई रंग-रोगन करके घरों की शुद्धता, स्वच्छता सफाई की जाती है। अर्थात् अन्तरंग-शुद्धि की जगह वहिरंग शुद्धि ने ले ली।

३. अमावस्या के अन्धकार को दूर करने के लिए उस समय के लिच्छवि मल्लि आदि १८ राजाओं ने वीर-निर्वाण के उपलक्ष में दीपक जला कर प्रकाश किया। उसकी ही स्मृति में उस समय से आज तक इस शुभ रात्रि में दीपक जलाये जाने की प्रथा प्रचलित हुई।

४. भगवान् महावीर के समवशरण में १२ प्रकार की परिषद् होती थीं। मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षी तक उनकी अमृतवाणी सुनने के लिए वहाँ आते थे। आज भूमि और दीवार को लीप-पोत कर शुद्ध करके लकीर बनाना और उनमें मनुष्य, पशु, तिर्यंच आदि के चित्र और खिलौने रखना वीर-समवशरण तथा उसकी १२ परिषदों का द्योतक है।

५. समवशरण में भ० महावीर गन्ध-कुटी में विराजमान होते थे; जो चारों ओर से खुली होती थी और जहाँ भगवान् का मुख चारों ओर दिखाई देता प्रतीत होता था आज उसके स्थान पर खिलौने के साथ हांडी अवश्य रखी जाती है; जो चारों ओर से खुली होती है। उसमें मनुष्य के आकार का चारों ओर चित्र या मूर्ति गन्धकुटी की स्मृति में स्थापित की जाती है।

६. उसी रात में भ० महावीर के मुख्य गन्धर्व (गणेशजी) इन्द्रभूति गौतम ने केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त की थी। जिसकी पूजा उस समय के लोगों ने की थी। जिसकी स्मृति में इस शुभ अवसर पर गणेशजी तथा चंचल लक्ष्मी की पूजा की जाती है।[1]

७. इस रात्रि में भ० महावीर का सदैव के लिए शरीर त्याग हुआ था; इसीलिए उस रात्रि को काल (मृत्यु) रात्रि कहा जाता है।

---

1. As regards worship of Lakshmi and Ghaneshji', the Jain's have a convincing tradition that Inder Bhuti attained omniscience a few hours later than the liberation of Mahavira. The people in honour to his befiting memory, omniscience the greatest wealth and Ghanesha was Gotma Indra Bhuti himself as he was head of eleven Gandharas of Mahavira.

८. भ० महावीर की निर्वाण-स्मृति में उस समय के राजाओं, सेठों और व्यापारियों ने सर्वप्रथम नया संवत् प्रचलित किया था, जो आज तक वीर-निर्वाण संवत् के नाम से प्रचलित है।

९. उस समय दीपावली पर पुण्य-पाप का चिट्ठा बाँध कर शुभकार्य किये जाते थे, उसके स्थान पर आज पिछले वर्ष की आमदनी-खर्च का चिट्ठा बाँध कर नये वीर संवत् से नई रोकड़बही व हिसाब-किताब रखा जाने लगा।

१०. वीरनिर्वाण के उपलक्ष में स्वर्ग के देवों ने रंग-बिरंगे बहुमूल्य रत्न बरसाये। राजाओं ने मिष्ठान्न बाँटा, आज खील, बताशे, रंग-बिरंगी बरफियाँ और मिठाइयाँ उस अवसर पर मित्रों एवं सम्बन्धियों में बाँटा जाना उसका द्योतक है।

११. वीर-निर्वाण की उस समय के राजाओं और जनता ने भक्तिपूर्वक पूजा की। उसकी स्मृति में दीपावली के दिन वीर-निर्वाण-पूजा होती हैं और वीर-निर्वाण का लड्डू चढ़ाया जाता है।

इन समस्त कार्यों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से निःसन्देहरूप से स्पष्ट हो जाता है कि दीपावली वीर-निर्वाण की स्मृति का पर्व है। जैसा कि दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन ने अपनी ७८३ ई० की रचना हरिवंश-पुराण सर्ग ६६ श्लोक १५-१६-१७-१८-१९-२० में, दिगम्बर जैन-आचार्य गुणभद्र ने, जो राष्ट्रकूटवंशी सम्राट् अमोघवर्ष के पुत्र तथा उत्तराधिकारी कृष्णराज II के गुरु थे, उनके राज्य काल में उत्तरपुराण की रचना की; जिसमें सर्ग १६ में तथा आचार्य सोमदेवसूरि ने राष्ट्रकूट-सम्राट् कृष्णराज III के शासनकाल ९५९ ई० की रचित यशस्तिलक चम्पू में, मुस्लिम लेखक मुलतानवासी अब्दुल रहमान ने अपने अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ "सदेशरासक" (११०० ई०) में, अकबर के नौवें रत्न अब्दुल फजल ने आईने-अकबरी (१५९० ई०) में, परिपूर्णानन्द वर्मा ने वीर १-९-७२ के पृष्ठ २ पर तथा डा० एल. एन. L. L. D. ने Voice of Ahnisa १९५६ पृष्ठ ३२८ पर दीपावली का उल्लेख किया है। मासिक 'जैन प्रचारक, अक्टूबर १९४० ने पृष्ठ १३ के अनुसार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक व संसार के सुप्रसिद्ध कवि "डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर" भी दीपावली को वीर-निर्वाण के उपलक्ष में मनाना स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रोफेसर पृथ्वीराज का कहना सत्य है कि दीपावली वीरनिर्वाण-उपलक्ष में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी ५२७ ई० पू० से मनाया जाना सर्व-प्रथम प्रचलित हुआ है।[2]

---

2. The night in which Lord Mahavira attained nirvan was lighted by descending and accending Gods and 18 confederate kings institute an illumination to celeberate Moksha of the Lord, since then the people make illumination and this in fact is Origin OF DEPAWALI—Prof. Pirthvi Raj' Voa. VOL.. I, Part VI, p 9.

लघु शब्द-बोध

निर्वाण के समय भ० महावीर की मनःस्थिति

—सुरेश 'सरल', जबलपुर

□

सोचता हूँ मनःस्थिति क्या रही होगी भगवान की, निर्वाण के समय? निर्वाण के क्षण उपस्थित गणधर या तब से अब तक के आचार्यगण, विचारक-चिंतक भ० महावीर की मनःस्थिति का चित्रण स्वप्रणीत ही करते रहे हैं, मैं भी बात स्वक्षेत्र से कहना चाहता हूँ।

तपस्या-काल व्यतीत कर देने के बाद निर्वाण के समय तक का तपस्वी-महावीर मोक्ष नहीं चाहता था। उस समय तो उसका मन ही नहीं था, उसके पास। मन—जो इच्छाओं का सृजक तो भावनाओं का संचालक है। बिना मन के महावीर की मनःस्थिति तब क्या हो सकती थी ?

मन का राजा महावीर तब तक मन को दासत्व की ओर ढकेल चुका था, फिर कैसी मनःस्थिति ? वह तो मनःस्थिति के आगे की परिधि में प्रवेश कर चुका। यह परिधि "उसकी अपनी स्थिति" की परिधि थी। निर्वाण के समय के क्षणांश पूर्व तक महावीर की भावना का सतत संचालन जिस क्रांति की ओर था, वह थी प्राणिमात्र के कल्याण की क्रान्ति या विश्व-शान्ति की बीजक-क्रान्ति। यही महावीर की प्रथम और अन्तिम भावना, मनोकामना या प्रेरणा कही जा सकती है। क्योंकि निर्वाण के समय की चेतना सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-प्रणीत चेतना थी।

उसी क्षण महावीर की मनःस्थिति प्रकृत्याकार हो गई थी और प्रकृति उनकी मनःस्थिति में समाहित हो ली थी।

—(०)—

भ० महावीर के निर्वाण से पूर्व के २७ भवों के
विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से

कर्मविजेता महावीर

—सुभाष मुनि "सुमन"

☐

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कई देशों में आध्यात्मिक व्यग्रता और बौद्धिक विक्षोभ दिखायी दिया। इस दृष्टि से यह शताब्दी उल्लेखनीय है। चीन में लाओत्जे और कनफ्युशियस हुए, यूनान में परमेंडीज और ऐम्पेडोक्लीज, फारस में जरथुस्त, इजरायल में पैगम्बरों और भारत में भगवान् महावीर तथा बुद्ध का आविर्भाव हुआ।

उस काल में बहुत से चिन्तकों और द्रष्टाओं ने अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान की विरासत को आगे बढ़ाया और अपनी ओर से नयी विचारधाराएँ प्रदान की।

परामनोविज्ञान के दिशादर्शन के लिये कितनी सामग्री भगवान महावीर के जन्म के अथ से आगे तक प्राप्त हो सकती है ? यह विषय जगमगाता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है।

उनका जन्म जबकि जालन्धर-गोत्रीया ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से होना था; तब कुछ समय बाद स्वयं देवराज इन्द्र को यह ध्यान आता है कि यह कुल तीर्थंकर के पदार्पण के लिये माध्यम बनने योग्य नहीं है। उन्हें तो ऐसे दरिद्र ब्राह्मण आदि कुलों में जन्म लेने की अपेक्षा विशुद्ध क्षत्रिय हरिवंश जैसे जाति-कुल-वंशों में ही उत्पन्न होने की अपनी परम्परा का निर्वाह करना चाहिए था।

विज्ञजन इस घटना को साश्चर्य देखते हैं, किन्तु उनके पास एक उत्तर है, इसके समाधान का कि उत्सर्पिणी काल व्यतीत हो जाने पर तीर्थंकर के लिये भी ऐसी अनहोनी बात सम्भव है, परन्तु क्या इस सम्पूर्ण रहस्य के पीछे कर्म एवं इसी प्रकार की विभिन्न परिस्थितियां उत्तरदायी नहीं कही जा सकती ?

साथ ही नीच एवं उच्च कुलों की परिभाषा समय तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। ऊँचे या नीचे कुल इस विश्व में हैं ही कहाँ और यदि हैं तो वे सम्पूर्ण समाज के स्तर में तुलनात्मक स्थिति में ही कहे जा सकते हैं और इसी

दृष्टिकोण से भगवान् महावीर ने उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी की सन्धि में पदार्पण करने का समय लिया।

तीर्थंकर नामकर्म का सम्मान करते हुए भी कर्मों से ऊपर होते हैं। वे विश्वहितार्थ कुछ परम्पराओं का भले ही निर्वाह करें, किन्तु परम्पराएँ उनके चरणों से प्रारम्भ होती हैं।

और इसी दृष्टि से भगवान महावीर ने इस कुल या उस कुल में जन्म लेने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान की होगी ? फिर भगवान् महावीर तो महावीर ही हैं। प्रशंसा सबकी की जा सकती है, किन्तु तुलना-रहित प्रशंसा ही अपने आप में महान् आत्माओं के प्रति यथार्थस्थिति का दर्शन कराने में श्रद्धा का परिमार्जन कर सकती है। अतः जो स्थितियाँ पिछले २३ तीर्थंकरों के समय में दृष्टिगोचर नहीं हो सकीं, वे इन जिन प्रभु के समय देखी जा सकती हैं।

इसीलिए कतिपय विद्वान उन्हें २३ तीर्थंकरों की तुलना में विशेष वतलाते हैं। एक विचार यह भी है कि पूर्ववद्ध नीचगोत्रकर्म के उदय से तीर्थंकर भी नहीं वच सकते और इसी कारण भगवान् वर्द्धमान को देवानन्दा की कोख में पदार्पण करना पड़ा। ठीक इसी के वाद महारानी त्रिशला के पूर्ववद्ध उच्चगोत्रकर्म के उदय का समय आ जाता है, जिससे उसकी कोख के लिये भगवान् के संहरण की स्थिति सम्भव हो सकी।

कितने सरल से क्रम में यह कर्मसिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि लघु से महत् तक किसी भी व्यक्ति को कर्म नहीं छोड़ता। उसका संचित, प्रारव्ध एवं क्रियमाण अपने आप में उस व्यक्ति की दिशा का वोध कराता रहता है।

तीर्थंकर ऋषभदेवजी के समय से ही भगवान् महावीर तीर्थंकरत्व की स्थिति को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे।

यह वात भगवान् ऋषभदेवजी, जिनके सामने भूत, वर्तमान, भविष्य सहज रूप में खुला हुआ था, से कैसे छिपी रह सकती थी ?

उन्होंने विनीता नगरी के वाहर समवसरण के समय भविष्यवाणी करते हुए प्रकट किया था कि यहीं एक ऐसी भव्य आत्मा है, जो चरम तीर्थंकर महावीर है और वह है—चक्रवर्ती भरत ! तुम्हारा पुत्र 'मरीचि'।

कर्म के थपेड़ों को सहते हुए एवं स्थिति के अनुसार आदर्श क्रियमाण कर्मों का अंकन करते हुए यही मरीचि आगे २७ भव पश्चात् भगवान् महावीर वन कर तीर्थंकरत्व को प्राप्त करने में सफल हुआ।

इसलिए जागतिक दृष्टि में समय काफी लगा, किन्तु स्पष्ट है कि—

Time and space limit has no value in the way of evolution and the evolution itself loses its importance so far as the universe is concerned Mahaveer surpassed the optimum point of an ordinarily expected evolution.

भगवान महावीर ने दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ ही क्यों; अपितु २७ भवों के इन असीमित वर्षों तक ऐसी स्थितियों का सामना किया, उनसे पार पाया और कर्मविपाक के पश्चात् वैशाली में पधार कर विश्व को महान् दिशादर्शन का पाठ नये शब्दों में तव की स्थिति में ग्रहण करने की पात्रता अर्जित किये हुए जगत् को प्रदान करने की कृपा की।

भगवान् महावीर ने विश्वभर को अपनी वाणी से जिन उच्च भावों एवं विचारों का पाठ पढ़ाया, वह असाधारण है।

उन्होंने एक ऐसा मार्ग सुलभ कराया है, जिस पर चल कर सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी विकसित होकर महान् वन सकता है। वे ऐसी स्थिति में उस चक्रवर्ती सम्राट् के समान सुशोभित होते है, जो कि वड़ी से बड़ी नदी को पार करने के लिए एक ऐसा पुल वांध देता है, जिस पर से हो कर छोटी से छोटी चींटी भी अनायास ही दूसरे पार पहुँच सकती है। तुलसी के शब्दों में—

अति अपार जे सरितवर, जौ नृप सेतु कराहीं।
चढ़ि पिपलिकउ परम लघु विनु श्रम पार हि जाहीं॥

उनके चरणचिह्नों एवं मार्गदर्शन पर अग्रसर हो कर हम सब पिपीलिकउ-तुल्य मानव आगे वढ़ सकें, यही भावना है।

'समिक्ख पंडिए तम्हा पासजाइपहे वहु।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेत्तिं भूएसु कप्पए॥

विद्वान् पुरुष संसार-परिभ्रमण के कारणों को भलीभांति समझ कर अपने आप सत्य की खोज करे और सब जीवों पर मैत्रीभाव रखे।

परिनिर्वाण और पारिपार्श्विक वातावरण

अणुव्रत परामर्शक मुनिश्री नगराजजी. डी. लिट्

□

अन्तिम वर्षावास :

राजगृह से विहार कर महावीर अपापा (पावापुरी[1]) आये। समवशरण लगा। भगवान् ने अपनी देशना में बताया—

"तीर्थंकरों की विद्यमानता में यह भारतवर्ष धन-धान्य से परिपूर्ण, गाँवों और नगरों से व्याप्त स्वर्ग-सदृश होता है। उस समय गाँव नगर जैसे, नगर देवलोक जैसे, कौटुम्बिक राजा जैसे और राजा कुबेर जैसे समृद्ध होते हैं। उस समय आचार्य इन्द्र समान, माता-पिता देवसमान, सास माता के समान और श्वसुर पिता के समान होते हैं। जनता धर्माधर्म के विवेक से युक्त, विनीत, सत्य-सम्पन्न, देव और गुरु के प्रति समर्पित और सदाचार-युक्त होती है। विज्ञजनों का आदर होता है। कुल, शील तथा विद्या का अंकन होता है। ईति, उपद्रव आदि नहीं होते। राजा जिनधर्मी होते हैं।"

"अब जब तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि अतीत हो जायेंगे, केवल्य और मन:पर्यवज्ञान का भी विलोप हो जायेगा, तब भारतवर्ष की स्थिति क्रमशः प्रतिकूल ही होती जायेगी। मनुष्य में क्रोध आदि बढ़ेंगे; विवेक घटेगा; मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न होंगी; स्वैराचार बढ़ेगा; धर्म घटेगा; अधर्म बढ़ेंगे। गाँव श्मशान जैसे, नगर प्रेत-लोक जैसे, सज्जन दास जैसे व दुर्जन राजा जैसे होने लगेंगे। मत्स्य-न्याय से सबल दुर्बल को सताता रहेगा। भारतवर्ष बिना पतवार की नाव के समान डांवाडोल स्थिति में होगा। चोर अधिक चोरी करेंगे, राजा अधिक कर लेगा व न्यायाधीश[1] अधिक रिश्वत लेंगे। मनुष्य धन-धान्य में अधिक आसक्त होगा।"

---

१. यह कौन सी पावा थी, कहाँ थी, आदि वर्णन के लिए देखिये—"आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन" पृ० ५४।

"गुरुकुलवास की मर्यादा मिट जायेगी। गुरु शिष्य को शास्त्र-ज्ञान नहीं देंगे। शिष्य गुरुजनों की सेवा नहीं करेंगे। पृथ्वी पर क्षुद्र जीव-जन्तुओं का विस्तार होगा। देवता पृथ्वी से अगोचर होते जायेंगे। पुत्र माता-पिता की सेवा नहीं करेंगे; कुल-वधुएँ आचार-हीन होंगी। दान, शील, तप और भावना की हानि होगी। भिक्षु-भिक्षुणियों में पारस्परिक कलह होंगे। झूठे तोल-माप का प्रचलन होगा। मंत्र, तंत्र, औषधि, मणि, पुष्प, फल, रस, रूप, आयुष्य, ऋद्धि, आकृति, ऊँचाई, इन सब उत्तम बातों में ह्रास होगा।"

"आगे चल कर दुःषम-दुषमा नामक छठे आरे में तो इन सबकी अत्यन्त हानि होगी। पंचम दुःषमा आरे के अन्त में दुःप्रसह नामक आचार्य होंगे, फल्गुश्री साध्वी होगी, नागिल श्रावक होगा, सत्यश्री श्राविका होगी। इन चार मनुष्यों का हीं चतुर्विध संघ होगा। विमलवाहन और सुमक नामक क्रमशः राजा और मंत्री होंगे। उस समय मनुष्य का शरीर दो हाथ परिमाण और आयुष्य बीस वर्ष का होगा। उस पंचम आरे के अन्तिम दिन प्रातःकाल चारित्र-धर्म, मध्याह्न में राज-धर्म और अपराह्ण में अग्नि का विच्छेद होगा।"

"२१००० वर्ष के पंचम दुःषम आरे के व्यतीत होने पर इतने ही वर्षों का छठा दुःषमा-दुःषमा आरा आयेगा। उसमें धर्म, समाज, राज-व्यवस्था आदि समाप्त हो जायेंगे। पिता-पुत्र के व्यवहार भी लुप्तप्रायः होंगे। इस काल के आरम्भ में प्रचण्ड वायु चलेगी तथा प्रलयकारी मेघ[2] वरसेंगे। इससे मानव और पशु बीज-मात्र ही शेष रह जायेंगे। वे गंगा और सिन्धु[3] के तट-विवरों में निवास करेंगे। मांस और मछलियों के आधार पर वे अपना जीवन-निर्वाह करेंगे।"

"इस छठे आरे के पश्चात् उत्सर्पिणी काल-चक्रार्ध का प्रथम आरा आयेगा। यह ठीक वैसा ही होगा, जैसा अवसर्पिणी काल-चक्रार्ध का छठा आरा था। इसका दूसरा आरा उसके पंचम आरे के समान होगा। इसमें शुभ का प्रारम्भ होगा। इसके आरम्भ में पुष्कर-संवर्तक-मेघ बरसेगा, जिससे भूमि की ऊष्मा दूर होगी। फिर क्षीर-मेघ बरसेगा, जिससे धान्य का उद्भव होगा। तीसरा घृत-मेघ बरसेगा, जो पदार्थों में स्निग्धता पैदा करेगा। चौथा अमृत-मेघ बरसेगा, इससे नानागुणोपेत औषधियाँ उत्पन्न होंगी। पाँचवां रस-मेघ बरसेगा, जिससे पृथ्वी में सरसता बढ़ेगी। वे पाँचों ही मेघ सात-सात दिन तक निरन्तर बरसते रहेंगे।[4]

---

२. भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्देशक ६ में इन मेघों को अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खट्टमेघ, अग्निमेघ, अशनिमेघ आदि नामों से बताया है।

३. उस समय गंगा और सिन्धु का प्रवाह रथ-मार्ग जितना ही विस्तृत रह जायेगा। —भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्देश० ६।

४. क्रमशः दो मेघों के बाद सात दिनों का 'उघाड़' होगा। इस प्रकार तीसरे और चौथे मेघ के पश्चात् फिर सात दिनों का 'उघाड़' होगा। कुल मिला कर पांचों मेघों का यह ४९ दिनों का क्रम होगा।
—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, वक्ष २, काल-अधिकार।

"वातावरण फिर अनुकूल बनेगा। मनुष्यजाति उन तट-विवरों से निकल कर मैदानों में बसने लगेगी। उनमें क्रमशः रूप, बुद्धि, आयुष्य आदि की वृद्धि होगी। दु:षम-सुषमा नामक तृतीय आरे में ग्राम, नगर आदि की रचना होगी। एक-एक कर के तीर्थंकर होने लगेंगे। इस उत्सर्पिणी-काल के चौथे आरे में यौगलिक-धर्म का उदय हो जायेगा। मनुष्य युगलरूप में पैदा होंगे, युगलरूप में मरेंगे। उनके बड़े-बड़े शरीर और बड़े-बड़े आयुष्य होंगे। कल्पवृक्ष उनकी आशापूर्ति करेंगे। आयुष्य और अवगाहना से बढ़ता हुआ पाँचवाँ और छठा आरा आयेगा। इस प्रकार यह उत्सर्पिणी काल समाप्त होगा। एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल का एक काल-चक्र होगा। ऐसे काल-चक्र अतीत में होते रहे हैं और अनागत में होते रहेंगे। जो मनुष्य धर्म की वास्तविक आराधना करते हैं, वे इस काल-चक्र को तोड़ कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, आत्म-स्वरूप में लीन होते हैं।"[५]

भगवान् महावीर ने अपना यह अन्तिम वर्षावास भी पावापुरी में ही किया। वहाँ हस्तिपाल नामक राजा था। उसकी रज्जुक सभा[६] (लेखशाला) में वे स्थिरवास से रहे। कार्तिक अमावस्या का दिन निकट आया। अन्तिम देशना के लिए अन्तिम समवशरण की रचना हुई। शक्र ने खड़े हो कर भगवान् की स्तुति की। तदनन्तर राजा हस्तिपाल ने खड़े होकर स्तुति की।

अन्तिम देशना व निर्माण :

भगवान् ने अपनी अन्तिम देशना प्रारम्भ की। उस देशना में ५५ अध्ययन पुण्य-फलविपाक के और ५५ अध्ययन पाप-फलविपाक के कहे;[७] वर्तमान में जो सुख-विपाक और दु:ख-विपाक नाम से आगमरूप हैं। ३६ अध्ययन अपृष्टव्याकरण में कहे,[८] जो वर्तमान में 'उत्तराध्ययन' आगम कहा जाता है। प्रधान नामक मरुदेवी माता का अध्ययन कहते-कहते भगवान् पर्यंकासन (पद्मासन) में स्थिर हुए।[९] तब भगवान् ने क्रमशः बादर काय-योग में स्थित रह, बादर मनो-योग और वचन-योग को रोका। सूक्ष्म काय-योग में स्थित रह बादर काय-योग को रोका; वाणी और

---

५. नेमिचन्द्र सूरि कृत **महावीर चरियं** के आधार से।
६. इसका अर्थ शुल्क-शाला भी किया जाता है।
७. **समवायांगसूत्र**, सम० ५५; कल्पसूत्र, सू० १४७/४८।
८. **कल्पसूत्र** सू० १४७; उत्तराध्ययन चूर्णि, पत्र २८३। उत्तराध्ययन के अन्तिम अध्ययन की अन्तिम गाथा भी इस बात को स्पष्ट करती है—

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसम्मए॥

यह विशेप उल्लेखनीय है कि यहाँ महावीर को 'बुद्ध' भी कहा गया है।
९. संपलियंकनिसण्णे—सम्यक् पद्मासनेनोपविष्टः।
—कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र १२३।

मन के सूक्ष्म योग को रोका। इस प्रकार शुक्ल-ध्यान का 'सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति' नामक तृतीय चरण प्राप्त किया। तदनन्तर सूक्ष्म काय-योग को रोक कर 'समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति' नामक शुक्ल-ध्यान का चतुर्थ चरण प्राप्त किया। फिर अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण-काल जितनी शैलेशी-अवस्था को पार कर और चतुर्विध अघाती कर्म-दल का क्षय कर भगवान् महावीर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए।[10]

वह वर्षाऋतु का चतुर्थ मास था, कृष्ण पक्ष था, पन्द्रहवाँ दिवस था, पक्ष की चरम रात्रि अमावस्या थी। एक युग के पाँच संवत्सर होते हैं, 'चन्द्र' नामक वह दूसरा संवत्सर था। एक वर्ष के बारह मास होते हैं, उनमें वह 'प्रीतिवर्द्धन' नाम का चौथा मास था। एक मास में दो पक्ष होते हैं, वह 'नन्दीवर्धन' नाम का पक्ष था। एक पक्ष में पन्द्रह दिन होते हैं, उनमें 'अग्निवेश्म' नामक वह पन्द्रहवाँ दिन था, जो 'उपशम' नाम से भी कहा जाता है। पक्ष में पन्द्रह रातें होती हैं, वह 'देवानन्दा' नामक पन्द्रहवीं रात थी, जो 'निरति' नाम से भी कही जाती है। उस समय अर्च नाम का लव था, मुहूर्त नाम का प्राण था, सिद्ध नाम का स्तोक था,[11] नाग नाम का करण था।[12] एक अहोरात्र में तीस मुहूर्त होते हैं, वह सर्वार्थसिद्ध नामक उनतीसवाँ मुहूर्त था।[13] उस समय स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था।

---

१०. तेणं कालेणं तेणं समएणं····बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहु वीइक्कंताए, तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसएहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुगसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं, साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि, संपलियंकनिसन्ने, पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं वागरित्ता पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पधाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए वितिक्कंते समुज्जाए छिन्न-जाइ-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे। —कल्पसूत्र, सू० १४७।

११. ७ प्राण=१ स्तोक
७ स्तोक=१ लव
३७ लव=१ मुहूर्त —भगवतीसूत्र, शतक ६, उद्दे० ७।

१२. शकुन्यादिकरणचतुष्के तृतीयमिदम् अमावस्योत्तरार्द्धेऽवश्यं भवत्येतद्। —कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११२।

१३. संवत्सर, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त इनके समग्र नामों के लिए देखिए— कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११३। टीकाकार ने इन समग्र नामों को जैन-शैली कह कर अभिहित किया है।

प्रश्न चर्चाएँ :

भगवान् महावीर की यह अन्तिम देशना सोलह प्रकार की थी।[१४] भगवान् छट्ठ-भक्त से उपोसित थे।[१५] देशना के अन्तर्गत अनेक प्रश्न-चर्चाएँ हुईं। राजा पुण्यपाल ने अपने ८ स्वप्नों का फल पूछा। उत्तर सुन कर संसार से विरक्त हुआ और दीक्षित हुआ।[१६] हस्तिपाल राजा भी प्रतिवोध पा कर दीक्षित हुआ।

इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—भगवन् ! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् पांचवां आरा कव लगेगा ? भगवान् ने उत्तर दिया—"तीन वर्ष साढ़े आठ मास वीतने पर।" गौतम के प्रश्न पर आगामी उत्सर्पिणी-काल में होने वाले तीर्थंकर, वासुदेव, वलदेव, कुलकर आदि का भी नाम-ग्राह परिचय भगवान् ने दिया।

गणधर सुवर्मा ने पूछा—"भगवन् ! कैवल्य-रूप सूर्य कव तक अस्तंगत होगा ?" भगवान् ने कहा—"मेरे से वारह वर्ष पश्चात् गौतम सिद्ध-गति को प्राप्त होगा, मेरे से वीस वर्ष पश्चात् तुम सिद्ध-गति प्राप्त करोगे, मेरे से चौसठ वर्ष पश्चात् तुम्हारा शिष्य जम्वू अनगार सिद्धगति को प्राप्त करेगा। वही अन्तिम केवली होगा। जम्वू के पश्चात् क्रमशः प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रवाहु, स्थूलभद्र, चतुर्दश पूर्वधर होंगे। इनमें शय्यम्भव पूर्व-ज्ञान के आधार पर **दशवैकालिक** आगम की रचना करेगा।[१७]

शक्र द्वारा आयु-वृद्धि की प्रार्थना :

जब महावीर के परिनिर्वाण का अन्तिम समय निकट आया, इन्द्र का आसन प्रकम्पित हुआ। देवों के परिवार सहित वह वहाँ आया। उसने अश्रुपूरित नेत्रों से महावीर से निवेदन किया—"भगवन् ! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान में हस्तोत्तरा नक्षत्र था। इस समय उसके भस्म-ग्रह संक्रान्त होने वाला है। आपके जन्म-नक्षत्र में आ कर वह ग्रह दो सहस्र वर्षों तक आपके संघीय प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास में वहुत वाधक होगा। दो सहस्र वर्षों के पश्चात् जव वह आपके जन्म-नक्षत्र से पृथक् होगा, तव श्रमणों का, निग्रन्थों का उत्तरोत्तर पूजा-सत्कार वढ़ेगा। अतः जव तक वह आपके जन्म-नक्षत्र में संक्रमण कर रहा है, तव तक आप अपने आयुष्य-

---

१४. (क) षोडश प्रहरान् यावद् देशनां दत्तवान्।
सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह, पत्र १००।
(ख) सोलह पहराइं देसणं करेइ। **विविधतीर्थकल्प**, पृ० ३६।

१५. कल्पसूत्र, सू १४७; नेमिचन्द्र कृत **महावीरचरित्र**, पत्र ९९।

१६. **सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह**, पत्र १००-१०२।

१७. **सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह**, पत्र १०६। इस ग्रन्थ के रचयिता ने महावीर की इस भविष्यवाणी को क्रमशः हेमचन्द्राचार्य तक पहुँचा दिया है।

बल को स्थित रखें। आपके साक्षात् प्रभाव से वह सर्वथा निष्फल हो जायेगा।" इस अनुरोध पर भगवान् ने कहा—"शक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। दुःषमा-काल के प्रभाव से मेरे शासन में बाधा तो होगी ही।"[१८]

गौतम का कैवल्य :

उसी दिन भगवान् महावीर ने अपने गणधर इन्द्रभूति गौतम को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र भेज दिया। अपने चिर अन्तेवासी शिष्य को दूर भेजने का कारण यह था कि मृत्यु के समय वह अधिक स्नेह-विह्वल न हो। इन्द्रभूति ने देवशर्मा को प्रतिबोध दिया। उन्हें भगवान् के परिनिर्वाण का संवाद मिला। इन्द्रभूति के श्रद्धा-विभोर हृदय पर वज्राघात-सा लगा। अपने आप बोलने लगे—"भगवन् ! यह क्या किया ? इस अवसर पर मुझे दूर किया ! क्या मैं बालक की तरह आपका अंचल पकड़ कर आपको मोक्ष जाने से रोकता ? क्या मेरे स्नेह को आपने कृत्रिम माना ? मैं साथ हो जाता, तो क्या सिद्ध-शिला पर संकीर्णता हो जाती ? क्या मैं आपके लिए भार हो जाता ? मैं अब किसके चरण-कमलों में प्रणाम करूंगा ? किससे अपने जगत् और मोक्षविषयक प्रश्न करूंगा ? किसे मैं 'भदन्त' कहूंगा ? मुझे अब कौन 'गौतम ! गौतम !' कहेगा ?"

इस भाव-विह्वलता में बहते-बहते इन्द्रभूति ने अपने आपको सम्भाला। सोचने लगे—"अरे ! यह मेरा कैसा मोह ? वीतरागों से स्नेह कैसा ? यह सब मेरा एक-पाक्षिक मोहमात्र है। बस ! अब मैं इसे छोड़ता हूं। मैं तो स्वयं एक हूं। न मैं किसी का हूं। न मेरा यहाँ कुछ भी है। राग और द्वेष विकार-मात्र हैं। समता ही आत्मा का आलम्बन है।" इस प्रकार आत्म-रमण करते हुए इन्द्रभूति ने तत्काल कैवल्य प्राप्त किया।[१९]

जिस रात को भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ, उस रात को नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी; अठारह काशी-कौशल के गणराजा पौषध-व्रत में थे।[२०]

---

१८. जिनेश ! तव जन्मर्क्षं गन्ता भस्मकदुर्ग्रहः।
वाधिष्यते स वर्षाणां, सहस्रौ द्वौ तु शासनम् ॥
तस्य संक्रामणं यावद्विलम्बस्व ततः प्रभो।
भवत्प्रभाप्रभावेण स यथा विफलो भवेत् ॥
स्वाम्यूचे शक्र ! केनाऽपि नायुः सन्धीयते क्वचित्।
दुःषमाभावतो बाधा, भाविनी मम शासने ॥
—कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी पत्र, १२१

१९. कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११४।

२०. जं रयणिं च णं समणे भगवं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं नव मल्लई नव लिच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावासाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु। —कल्पसूत्र, सू० १२७

प्रश्न चर्चाएँ :

भगवान् महावीर की यह अन्तिम देशना सोलह प्रकार की थी।[१४] भगवान् छट्ठ-भक्त से उपोसित थे।[१५] देशना के अन्तर्गत अनेक प्रश्न-चर्चाएँ हुईं। राजा पुण्यपाल ने अपने ८ स्वप्नों का फल पूछा। उत्तर सुन कर संसार से विरक्त हुआ और दीक्षित हुआ।[१६] हस्तिपाल राजा भी प्रतिवोध पा कर दीक्षित हुआ।

इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—भगवन्! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् पांचवां आरा कब लगेगा? भगवान् ने उत्तर दिया—"तीन वर्ष साढ़े आठ मास वीतने पर।" गौतम के प्रश्न पर आगामी उत्सर्पिणी-काल में होने वाले तीर्थंकर, वासुदेव, वलदेव, कुलकर आदि का भी नाम-ग्राह परिचय भगवान् ने दिया।

गणधर सुधर्मा ने पूछा—"भगवन्! कैवल्य-रूप सूर्य कव तक अस्तंगत होगा?" भगवान् ने कहा—"मेरे से बारह वर्ष पश्चात् गौतम सिद्ध-गति को प्राप्त होगा, मेरे से बीस वर्ष पश्चात् तुम सिद्ध-गति प्राप्त करोगे, मेरे से चौसठ वर्ष पश्चात् तुम्हारा शिष्य जम्वू अनगार सिद्धगति को प्राप्त करेगा। वही अन्तिम केवली होगा। जम्बू के पश्चात् क्रमशः प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रबाहु, स्थूलभद्र, चतुर्दश पूर्वधर होंगे। इनमें शय्यम्भव पूर्व-ज्ञान के आधार पर **दशवैकालिक** आगम की रचना करेगा।[१७]

शक्र द्वारा आयु-वृद्धि की प्रार्थना :

जब महावीर के परिनिर्वाण का अन्तिम समय निकट आया, इन्द्र का आसन प्रकम्पित हुआ। देवों के परिवार सहित वह वहाँ आया। उसने अश्रु पूरित नेत्रों से महावीर से निवेदन किया—"भगवन्! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान में हस्तोत्तरा नक्षत्र था। इस समय उसके भस्म-ग्रह संक्रान्त होने वाला है। आपके जन्म-नक्षत्र में आ कर वह ग्रह दो सहस्र वर्षों तक आपके संघीय प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास में बहुत बाधक होगा। दो सहस्र वर्षों के पश्चात् जव वह आपके जन्म-नक्षत्र से पृथक् होगा, तब श्रमणों का, निग्रन्थों का उत्तरोत्तर पूजा-सत्कार बढ़ेगा। अतः जब तक वह आपके जन्म-नक्षत्र में संक्रमण कर रहा है, तव तक आप अपने आयुष्य-

---

१४. (क) षोडश प्रहरान् यावद् देशनां दत्तवान्।

सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह, पत्र १००।

(ख) सोलह पहराइं देसणं करेइ। **विविधतीर्थकल्प**, पृ० ३६।

१५. कल्पसूत्र, सू १४७; नेमिचन्द्र कृत **महावीरचरित्र**, पत्र ९९।

१६. **सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह**, पत्र १००-१०२।

१७. **सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह**, पत्र १०६। इस ग्रन्थ के रचयिता ने महावीर की इस भविष्यवाणी को क्रमशः हेमचन्द्राचार्य तक पहुँचा दिया है।

बल को स्थित रखें। आपके साक्षात् प्रभाव से वह सर्वथा निष्फल हो जायेगा।" इस अनुरोध पर भगवान् ने कहा—"शक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। दुःषमा-काल के प्रभाव से मेरे शासन में बाधा तो होगी ही।"[१८]

गौतम का कैवल्य :

उसी दिन भगवान् महावीर ने अपने गणधर इन्द्रभूति गौतम को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र भेज दिया। अपने चिर अन्तेवासी शिष्य को दूर भेजने का कारण यह था कि मृत्यु के समय वह अधिक स्नेह-विह्वल न हो। इन्द्रभूति ने देवशर्मा को प्रतिबोध दिया। उन्हें भगवान् के परिनिर्वाण का संवाद मिला। इन्द्रभूति के श्रद्धा-विभोर हृदय पर वज्राघात-सा लगा। अपने आप बोलने लगे—"भगवन् ! यह क्या किया ? इस अवसर पर मुझे दूर किया ! क्या मैं बालक की तरह आपका अंचल पकड़ कर आपको मोक्ष जाने से रोकता ? क्या मेरे स्नेह को आपने कृत्रिम माना ? मैं साथ हो जाता, तो क्या सिद्ध-शिला पर संकीर्णता हो जाती ? क्या मैं आपके लिए भार हो जाता ? मैं अब किसके चरण-कमलों में प्रणाम करूंगा ? किससे अपने जगत् और मोक्षविषयक प्रश्न करूंगा ? किसे मैं 'भदन्त' कहूंगा ? मुझे अब कौन 'गौतम ! गौतम !' कहेगा ?"

इस भाव-विह्वलता में बहते-बहते इन्द्रभूति ने अपने आपको सम्भाला। सोचने लगे—"अरे ! यह मेरा कैसा मोह ? वीतरागों से स्नेह कैसा ? यह सब मेरा एक-पाक्षिक मोहमात्र है। बस ! अब मैं इसे छोड़ता हूं। मैं तो स्वयं एक हूं। न मैं किसी का हूं। न मेरा यहाँ कुछ भी है। राग और द्वेष विकार-मात्र हैं। समता ही आत्मा का आलम्बन है।" इस प्रकार आत्म-रमण करते हुए इन्द्रभूति ने तत्काल कैवल्य प्राप्त किया।[१९]

जिस रात को भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ, उस रात को नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी; अठारह काशी-कौशल के गणराजा पौषध-व्रत में थे।[२०]

---

१८. जिनेश ! तव जन्मर्क्षं गन्ता भस्मकदुर्ग्रहः।
बाधिष्यते स वर्षाणां, सहस्रौ द्वौ तु शासनम् ॥
तस्य संक्रामणं यावद्विलम्बस्व ततः प्रभो।
भवत्प्रभाप्रभावेण स यथा विफलो भवेत् ॥
स्वाम्यूचे शक्र ! केनाऽपि नायुः सन्धीयते क्वचित्।
दुःषमाभावतो बाधा, भाविनी मम शासने ॥
—कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी पत्र, १२१

१९. कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११४।

२०. जं रयणिं च णं समणे भगवं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं नव मल्लई नव लिच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावासाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु। —कल्पसूत्र, सू० १२७

निर्वाण-कल्याणक :

भगवान् की अन्त्येष्टि के लिए सुरों और असुरों के सभी इन्द्र अपने-अपने परिवार से वहाँ पहुँचे। सबकी आँखों में आँसू थे। उनको लगता था—हम अनाथ हो गये हैं। शक्र के आदेश से देवता नन्दन-वन आदि से गोशीर्ष चन्दन लाये। क्षीर-सागर से जल लाये। इन्द्र ने भगवान् के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया, विलेपन आदि किये, दिव्य वस्त्र ओढाये। तदन्तर भगवान् के शरीर को दिव्य शिविका में रखा।

इन्द्रों ने वह शिविका उठाई। देवों ने जय-जय ध्वनि के साथ पुष्प-वृष्टि की। मार्ग में कुछ देवांगनाएं और देव नृत्य करते चलते थे, कुछ देव मणिरत्न आदि से भगवान् की अर्चना कर रहे थे। श्रावक-श्राविकाएं भी शोक-विह्वल हो कर साथ-साथ चल रहे थे। यथास्थान पहुँच कर शिविका नीचे रखी गई। भगवान् के शरीर को गोशीर्ष चन्दन की चिता पर रखा गया। अग्निकुमार देवों ने अग्नि प्रकट की। वायुकुमार देवों ने वायु प्रचालित की। अन्य देवों ने घृत और मधु के घट चिता पर उंड़ेले। जब प्रभु का शरीर भस्मसात् हो गया, तो मेघकुमार देवों ने क्षीरसागर के जल से चिता शान्त की। शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र ने ऊपर की दाईं और बाईं दाढ़ों का संग्रह किया। चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने नीचे की दाढ़ों का संग्रह किया। अन्य देवों ने अन्य दांत और अस्थिखण्डों का संग्रह किया। मनुष्यों ने भस्म लेकर सन्तोष माना। अन्त में चिता-स्थान पर देवताओं ने रत्नमय स्तूप की संघटना की।[२१]

दीपमालोत्सव :

जिस दिन भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, देव और देवियों के गमनागमन से भू-मण्डल आलोकित हुआ।[२२] मनुष्यों ने भी दीप संजोये। इस प्रकार दीपमाला पर्व का प्रचलन हुआ।[२३]

जिस रात को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात को सूक्ष्म कुंथु जाति का उद्भव हुआ। यह इस बात का संकेत था कि भविष्य में सूक्ष्म जीव-जन्तु बढ़ते जायेंगे और संयम दुराराध्य होता जायेगा। अनेक भिक्षु-भिक्षुणियों ने इस स्थिति को समझ कर उस समय आमरण अनशन किया।[२४]

---

२१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १३ के आधार से।

२२. कल्पसूत्र, सू० १२७।

२३. सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह, पत्र १००-११०।

२४. कल्पसूत्र सू० १३१-३२।

वर्धमान में सीखने की पात्रता

—भवानीप्रसाद मिश्र

□

जो सन्तुष्ट नहीं होता
वर्तमान से
वही कुछ सीख सकता है
वर्धमान से
क्योंकि वर्धमान
वर्तमान से अलग थे
तीनों कालों में सजग थे
वे ढूँढ़ रहे थे उन्निद्र चक्षु
वह प्रकाश
जो चिर नवीन हो कर भी
पुरातन से पुरातन होता है
सूर्य की पहली
और बीच की
और अन्तिम
और एक-एक किरण की तरह
वे विशुद्ध चित्त थे
मन नहीं थे
उनके विचारों में
गुंजायश नहीं थी
क्षेपक
सुधार
या घटाव-बढ़ाव की !
उन्हें सहजगम्य थी चोटियाँ
उस चढ़ाव की
जो भगवान्
और उसके विश्व को
सत्य या मिथ्या कहे बिना
अहं से ऊपर ले जाती हैं
जो हर रहस्य की प्रक्रिया को
पूर्णिमा की शोभा
दे जाती है
और जिसके जानने से
सब ज्ञात हो जाता है
जिसके ओट होते ही
सारा-सब
घनी रात हो जाता है ।

—o—

वैशाली के विभु : वर्द्धमान

डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, अलीगढ़
(एम. ए., पी.-एच. डी.,) साहित्यालंकार

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व देश की दशा दयनीय थी। चारों ओर हिंसा, मृषा, शोषण तथा अनाचार का बोलबाला था। मनुष्यता कराह उठी। इस प्रकार के दयनीय वातावरण में विश्रुत वैशाली में राजकीय व्यवस्था थी—गणतंत्रात्मक और इसके राजा थे चेटक। आपकी कन्या का नाम था त्रिशला। कुंडपुर के ज्ञातृवंशीय शासक महाराज सिद्धार्थ के साथ त्रिशला का विवाह हुआ। बोल, व्यवहार में प्रियता होने से त्रिशला रानी का नाम प्रिय कारिणी प्रसिद्ध हो गया।

प्रत्यूष काल में स्वप्न देखना प्राय: सत्य का सूचक होता है। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्नों का अभिदर्शन किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सन् ५९९ ई०पू० को महारानी प्रियकारिणी ने वर्द्धमान को जन्म दिया। गौरवर्ण निर्मल देहदीप्ति से वैशाली थिरक उठी। माता त्रिशला निहाल हुई और राजा सिद्धार्थ धन्य हो गये। तीर्थङ्कर महावीर का अभिषेक हुआ और उन्हें राजकीय वस्त्राभरण पहिनाये गये। तीर्थङ्कर महावीर के दायें पग में सिंह का चिह्न देख उनकी सिंहवृत्ति का बोध हुआ। कालान्तर में सिंह ही उनका चिह्न वन गया।

महावीर की महिमा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गयी। आठ वर्षीय बालक का चित्त व्याप्त सामाजिक शोषण के प्रति विद्रोह कर उठा। वे ऐसे समाज की परिकल्पना करने लगे, जहाँ सभी सामाजिक समान हों, प्राणीमात्र को जीने की समान स्वतन्त्रता हो। बालक महावीर में मुखरित नाना गुणों के आधार पर वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर तथा अतिवीर नामक श्रीसंज्ञाओं से उन्हें सम्बोधित किया जाने लगा। शनैःशनैः राजकुमार के जीवन का लक्ष्य आत्म-बोध की ओर उन्मुख हो उठा। वे अनुभव करने लगे कि पारिवारिक सम्बन्ध परिग्रह है और परिग्रह लक्ष्य की पूर्ति में बाधक होते हैं। राजकुमार वर्द्धमान की राजसी भोगों से विरक्ति और आध्यात्मिक अनुरक्ति को देखकर महाराज सिद्धार्थ को विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह बालक ज्ञातृवंश के लिए ही नहीं, अपितु अखिल विश्व के कल्याणार्थ अवतरित हुआ है।

तीसवर्षीय वर्द्धमान साधनापथ पर अग्रसर हुए और मगसिर कृष्णा दशमी सन् ५६९ ई० को वर्द्धमान ने कठोर तप:साधना में प्रवृत्त हो बारह वर्ष पाँच माह और पन्द्रह दिन सत्यान्वेषण में सहर्ष लगा दिये। दीक्षाकाल में नगर-नगर में पदयात्रा कर उन्होंने सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे धर्मों के मार्मिक रहस्यों का उद्घाटन किया। उनके तपश्चरण से समूचा वन-प्रदेश तपोवन में बदल गया जहाँ सारे विरोध अनुरोध में बदलने लगे।

इस प्रकार तीर्थङ्कर महावीर ने अपनी साधना पूर्ण कर वैशाखी शुक्ला दशमी सन् ५५७ ई० पूर्व को कैवल्यज्ञान प्राप्त किया। इतिहास के पृष्ठ कहते हैं कि पावा नामक पवित्र भूमि पर वर्द्धमान महावीर ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन निर्वाणपद को प्राप्त किया। इस समय आपकी आयु केवल इकहत्तर वर्ष चार माह और पच्चीस दिन की थी।

●

के, निर्धारित चार खंडों में से प्रथम खण्ड के नौवें विषयविन्दु—**निर्वाण के समय महावीर का पारिपार्श्विक वातावरण**' पर मैंने कुछ मौलिक वातें लिखने का सोचा है। चूँकि जैनधर्म का निचोड़ —स्वयं तरना और दूसरों के तरने के लिए मार्ग प्रशस्त करना है। इसी कारण जैनधर्म के इस क्षेत्र के चरम यानी अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए; उस समय के उनके निर्वाण के पीछे पारिपार्श्विक वातावरण कैसा था, उसे संक्षेप में समझ लेने से आज २५०० वर्ष वाद जो वातावरण है, उसमें कौन-सी दिशा लेनी चाहिये ? इसे भली-भाँति हृदयंगम किया जा सकेगा। इस कारण यह स्वाभाविक है कि वह विषय अत्यन्त रोचक और अनिवार्य वने।

महावीर निर्वाण का पारिपार्श्विक वातावरण

महात्मा गांधीजी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि मानव प्राणिमात्र का संरक्षक है। अगर वह सही मार्ग पर स्थिर रहे या चले तो उसके कारण प्राणिमात्र को सर्वत्र सुख ही सुख प्राप्त हो जाय। इसी कारण भगवान् महावीर ने अनेक उपसर्ग और परिषह सह कर पहले तो सारे ही मानव-समाज को (जो कि असंगठित था) संगठित किया और मानवजीवन के जो मूलभूत सामाजिक और नैतिक मूल्य थे, उन्हें व्यवस्थित ढंग से स्थापित किये। उदाहरण के तौर पर, उस युग का मानव, संतों, साधुओं या साधकों आदि को प्रायः घृणा की दृष्टि से देखता था। संतों की साधना में विघ्न डाल कर उन्हें कष्ट देता था. उसके वदले सुसाधना की ओर मानव को आदरदृष्टिसम्पन्न वनाया। नारी मानो गाजर-मूली की तरह या इससे भी वढ़कर भेड़-वकरी की तरह वाजार में वेची जाने वाली चीज थी। इसके वदले चन्दनवाला के निमित्त से भगीरथ अभिग्रह (संकल्प) करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि नारी धर्म की धुरा पकड़ कर स्वयं तर कर जगत् के तरने का मार्ग प्रशस्त करने वाली महाशक्ति है। मैतार्य और हरिकेशी जैसे चांडाल-जाति में पैदा हुए व्यक्तियों को भी महातपस्वी और मोक्ष के मुक्ताफल सरीखे महामुनि वना कर जगत् को वता दिया कि मानवजाति (जन्मगत वर्ण आदि) से न तो ऊँचा है और न नीचा ही है। वह सत्कर्मों या सद्गुणों से ही उच्च और असत्कर्मों या दुर्गुणों से ही नीच वन सकता है। तथाकथित नीच-जाति में पैदा होने पर भी पूर्वोक्ति मुनि स्वयं भी तर गये और अनेक भव्यजीवों के तारक महापुरुष भी वन गये। इन्होंने यह भी वता दिया कि प्राणिमात्र में तरने की योग्यता पड़ी है। और मानव तो स्वयं भी तर सकता है और अन्य प्राणियों के तारने में महानिमित्त भी वन सकता है। इस तरीके से मेंढक के रूप में वने हुए नन्दनमणिहार का भी उद्धार हुआ और चंडकौशिक विषधर का भी उद्धार हुआ। अर्जुनमाली सरीखे महापापी का भी उद्धार हुआ और अनार्यभूमि में भी आर्यत्व के वीज वोये गये। इस प्रकार भगवान् महावीर जैसे समर्थ पुरुष को हुए केवलज्ञान और उसके निमित्त से चारों ओर फैला हुआ हृदय-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन का त्रिविध महकता हुआ वाता-

वरण सारी मानवजाति को जगाने में उपयुक्त हुआ और प्राणिमात्र को आनन्द के सरोवर में डुबकी लगाने का कारण बना। कहाँ तो भगवान् महावीर के जन्म के समय की जगत् की भूमिका और कहाँ वर्धमान के रूप में महावीर के आने के बाद स्थूलजगत् और सूक्ष्मजगत्, दोनों प्रकार के जगत् में सुख, शुद्धि, और शान्ति की त्रिवेणी प्रवाहित हो चली। तत्पश्चात् भगवान महावीर की दीक्षा, तपस्या, कष्ट-सहिष्णुता, तितिक्षा, और समता ने समष्टि के परिवर्तनों में जिस प्रकार क्रमशः प्रगति की ओर कराई, उसे देखते हुए तुरन्त ख्याल आ जाता है। यों देखा जाय तो स्वनिर्माण का मार्ग स्वाश्रयी होता है, इसीलिये तो देवेन्द्र खुद सहायता देने आए तो भी महावीर ने किसी का भी आश्रय लिये बिना अपनी सिद्धि प्राप्त की, केवल-ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु सारी समष्टि में अमुक वातावरण पैदा न हो जाय, वहाँ तक व्यक्तिगत मोक्ष या व्यक्तिगत निर्वाण भी सम्भव नहीं है ; यह बात भी साथ ही साथ फलित होती प्रतीत होती है।

देखो न, जम्बूस्वामी के बाद !

देखो न ! जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद इस क्षेत्र में निर्वाण के द्वार बन्द हो गए। इतना ही नहीं, क्षायिक सम्यक्त्व जैसी उत्कृष्ट शक्तियों का भी लोप (विच्छेद) हो गया ! हमारे अहोभाग्य से भ० महावीर के निर्वाण के २००० वर्ष के बाद धर्म-प्राण लोकाशाह जैसे महान् धर्मक्रान्तिकारी हुए, जिन्होंने फिर देश में और दुनिया में चारों ओर अभिनव धर्मक्रान्ति जगा दी। उसके बाद तो देश और विश्व में भी धर्म-क्रान्ति की एक लहर फैल गई।

धर्मप्राण लोकाशाह के बाद

फिर इस युग में श्रीमद राजचन्द्र सरीखे आध्यात्मनिष्ठ महापुरुष की प्रेरणा से महात्मा गांधीजी तैयार हुए। इन्होंने राजनीति को भी धर्म का स्पर्श करा कर भारत द्वारा जगत् में राजनैतिक क्षेत्र में शाश्वत मूल्य स्थापित किये। जिससे पं० जवाहरलालजी, शास्त्रीजी और अब श्री इन्दिरा बहन उन शाश्वत मूल्यों के कारण भारत द्वारा जगत् के राजनैतिक क्षेत्र में शान्ति एवं पंचशील का सन्देश देते आ रहे हैं।

जैन साधु-साध्वी एवं संन्यासी

भ० महावीर से ले कर महात्मा गांधीजी के इन्हीं प्रयोगों के सिलसिले में भालनलकांठा-प्रदेश में जो धर्ममय (अहिंसक) समाजरचना का प्रयोग गुजरात से शुरू हुआ है; उसी सन्दर्भ में यदि पैदल विचरण करने वाले एवं निसर्ग-निर्भर भिक्षा-चरी पर जीने वाले जैन साधुसाध्वी गांवों में नीतिलक्षी जनसंगठन एवं ग्रामलक्षी व्रतबद्ध जनसेवकों के संगठन बनाने में जुट जांय और इसमें संन्यासीजन तथा सर्वो-

गौण दृष्टि वाले गांधी-विनोबा के रचनात्मक कार्यकर्ता भाई-बहन हाथ-पैर के रूप में काम करने लग जांय तो भारत के जरिये विश्वभर में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं नैतिक क्रान्ति की अहिंसक भूमिका तैयार हो जाय। अर्थात् आज जैनसंघ की जो ये दो मुख्य बुनियादें—मानवता और मार्गानुसारिता डगमगा गई हैं, वे भी पुनः प्रतिष्ठित की जा सकती हैं। यही कारण है कि आज धर्म के बदले धन का बोलबाला चारों ओर हो गया है। नीतिन्यायमय आजीविका दूरातिदूर होती जा रही है, वह पुनः ताजी हो जाय और जैनसंघ, जोकि सम्यक्त्व की बुनियाद पर खड़ा है, वह संघ की इमारत अच्छी तरह मजबूत हो जाय।

सौभाग्य से !

सद्‌भाग्य से संत विनोबाजी के कार्यकर्ता मानवमुनि मुनिश्री जनकविजयजी को इंदौर चातुर्मासकाल में मिले हैं! और उन्होंने यह कार्य भलीभांति उठा लिया है। अब जरूरत है, जैन साधुसाध्वियों का मुख गाँवों की ओर मोड़ने की। मुझे आशा है, नेमिमुनि और जनकमुनि सरीखे तेजस्वी मुनियों के निमित्त से हृदय-परिवर्तन विचार-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन का भ० महावीर की परम्परा से प्राप्त यह त्रिविध कार्यक्रम भलीभाँति खिल उठेगा और भ० महावीर निर्वाण की पच्चीसवीं निर्वाणशताब्दी के उत्सव का जय-जयकार होने लगेगा।

निर्वाणवादी महावीर के प्रति

—कन्हैयालाल सेठिया

□

तुम विराट् हो बांध न पाते
मेर वामन छन्द।
जो अगीत है उसको कैसे
कोई गीत बनाये ?
स्वयं पुण्य जो उसे परस कर
कौन पुनीत बनाये ?
अकथ रही अनुभूति, निरर्थक—
नाटक कथा निबन्ध।
समझ नहीं पाया क्यों अब तक
भव भव हुये व्यतीत,

ध्वनित नहीं कर सकती वीणा
अनहद का संगीत,
लिखित नहीं अलिखित भी रहते
कितने ही अनुबन्ध !
बूंद नहीं है करुणा जिसका
कूल कहीं दिख जाये,
नयन नहीं हैं व्योम कि जिसमें
ध्रुवतारा आ आये,
प्रतिविम्वित होता पुतली में
बस इतना सम्बन्ध !

—:०:—

एक विहंगावलोकन

निर्वाण के बाद २५०० वर्ष में

पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री

□

भगवान् महावीर के निर्वाण को २५०० वर्ष हुए। इस लम्बे समय में हमने खोया क्या और पाया क्या ? इस पर एक दृष्टि डालना अनुचित न होगा।

भगवान् महावीर के समय में छह शास्ता अन्य भी थे। उनमें से महावीर, और बुद्ध को छोड़ कर आज किसी का न कोई नामलेवा है और न कोई पानीदेवा। सम्राट् अशोक के बौद्धधर्म अंगीकार करने के पश्चात् बौद्धधर्म का देश और विदेशों में बहुत विस्तार हुआ। किन्तु धीरे-धीरे हांडी में आये उफान की तरह वह शान्त होता होता इतना शान्त हुआ कि इस देश से बौद्धधर्म लुप्त जैसा हो गया, यद्यपि विदेशों में वह बना रहा।

भगवान् महावीर का धर्म, जो आज एकमात्र जैनधर्म के नाम से ख्यात है, न तो हांडी के उफान की तरह उबला ही और न एकदम शान्त ही हुआ। गंगा की पवित्र धारा की तरह वह अपने उतार-चढ़ाव को लिये एकमात्र मन्थरगति से प्रवाहित होता आता है। जिस आंधी ने बौद्धधर्म को इस देश से भगाया, उस आंधी ने जैनधर्म को भी भगाना चाहा, किन्तु वह उसे नहीं भगा सकी। फिर भी इतना तो हुआ ही कि मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ श्रुतकेवली भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा के पश्चात् भगवान महावीर की जन्मभूमि से उनका धर्म निष्कासित जैसा हो गया, और उसमें फूट पड़ गई। वह दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। कालक्रम से एक सम्प्रदाय ने अपने पैर दक्षिणभारत में जमाये तो दूसरे ने सौराष्ट्र को अपनी क्रियाभूमि बनाया। दोनों सम्प्रदायों में बड़े बड़े आचार्यों और ग्रन्थकार हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं से भारतीय वाङ्मय के भण्डार को समृद्ध बनाया। यद्यपि जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी थी। उसी में भगवान् महावीर ने अपनी धर्मदेशना की थी। इसलिये जहाँ भद्रबाहु, कुन्दकुन्द आदि ने प्राकृत में ग्रन्थरचना की। वहाँ उमास्वाति ने संस्कृत की सूत्रशैली में जैन वाङ्मय को निबद्ध करके संस्कृत-भाषा में साहित्यरचना का श्रीगणेश किया। फिर तो समन्तभद्र,

सिद्धसेन, अकलंक, हरिभद्र जैसे प्रखर दार्शनिकों ने भगवान् महावीर के अनेकान्त-दर्शन को ले कर संस्कृत की वह सरिता बहाई कि उसका प्रवाह वेगपूर्णगति से प्रवाहित होता रहा।

महावीर के संघ में भेद अवश्य हुआ; किन्तु वह भेद साधुओं के बाह्य आचार, मुख्यरूप से वस्त्र, पात्र तक या स्त्रीमुक्ति तक ही सीमित रहा। बौद्धदर्शन के ज्ञानाद्वैतवाद और शून्यवाद की तरह जैन दार्शनिकों ने कोई नया वाद खड़ा नहीं किया। सब ने मिल कर अपनी अपनी शैली से अनेकान्तवाद के ही पोषण में अपनी शक्ति लगाई। हाँ, उत्तरकाल में दर्शनशास्त्र के व्याख्याग्रन्थों में कुछ टीकाकारों ने वस्त्रपात्रवाद, स्त्रीमुक्ति और केवलिमुक्ति का विरोध या समर्थन अवश्य किया। किन्तु चर्चा में अतिरेक नहीं हुआ और अहिंसा की मर्यादा का उल्लंघन प्रायः नहीं हुआ। जो हुआ, वह नगण्य था। एक संप्रदाय ने द्वादशांग के नाम पर अपना साहित्य संकलित किया तो दूसरे सम्प्रदाय ने न उसे मान्य किया और न उसका विरोध ही किया। इसे हम कम सहिष्णुता नहीं कह सकते। पच्चीस सौ वर्षों में दोनों सम्प्रदायों में द्वन्द्व होने के कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलते। प्रत्युत कंकाली टीले से प्राप्त मूर्तियाँ बतलाती हैं कि नग्न होते हुए भी उन मूर्तियों पर जो लेख है, वह कल्पसूत्र की स्थविरावली के अनुसार हैं। इसे हम अनेकान्तदृष्टि और अहिंसा की भावना का ही चमत्कार कह सकते हैं कि हम अलग हो कर भी दूसरों की तरह नहीं लड़े; और हमने भगवान् महावीर के अनेकान्त और अहिंसा-दर्शन को भ्रष्ट करने की चेष्टा नहीं की।

किन्तु कालक्रम से हमारे में ज्ञान की कमी होती गई, पुराने आचार्यों जैसे ज्ञानी होना कम होते गये। फलतः उन जैसी सहनशीलता भी नहीं रही। दक्षिण के गंग राजवंश और होप्सल-वंशों को जैनाचार्यों का आर्शीवाद प्राप्त था; तो गुजरात के सोलंकी राजवंश भी जैनाचार्यों से प्रभावित थे। आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् जैन परम्परा में कोई ऐसा प्रभावशाली साधु नहीं हुआ।

धार्मिक द्वेष तो भारतवर्ष में भी चलता रहा है। किन्तु यहाँ के राजन्यवर्ग प्रायः मध्यमवृत्ति के रहे और जैनों का अपना प्रभाव भी रहा। इससे जैनों को प्रायः धर्मद्वेष का शिकार कम होना पड़ा।

भगवान् महावीर के उदार सिद्धान्तों के प्रभाव ने भी उनकी रक्षा की है। जैनगुरुओं की निरीह वृत्ति, उदात्त जीवन तथा जैन श्रावकों की उदारता, नैतिकता और सदाचारता ने उन्हें सामान्य लोगों का विश्वासभाजन और स्नेहभाजन बनाया है। मेवाड़ के स्वातन्त्र्य युद्ध में राणा प्रताप के चरणों में अपना सर्वस्व होम देने वाले भामाशाह के त्याग का क्या जनजीवन पर कम प्रभाव पड़ा होगा? देशप्रेम का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

जैनधर्म की जन्मभूमि सदा भारत-देश रहा है। अतः जैनों की देशभक्ति का एकमात्र आधार भारत-देश है। न वे कहीं बाहर से आये हैं और न बाहर के प्रति उनका कोई आकर्षण है। भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध में जैनों ने अपने अनुपात से अधिक ही कुर्बानी की है।

यह सब कुछ है, किन्तु समय के प्रवाह ने आज श्रावकों को भी उसी पलड़े में ला रखा है, जिसमें दूसरे हैं। आज का जैन श्रावक पुराने श्रावकों जैसा निष्ठावान और सदाचारी नहीं रहा है। माया-मोह ने उसे भी कालाबाजारी, मुनाफाखोर, और कर चोर बना दिया है। जैनसमाज की कल्याण-भावना भी उनमें पहले जैसी नहीं रही है। वह अणुव्रतों के प्रचार के लिये धन दे सकता है, किन्तु स्वयं अणुव्रत धारण नहीं कर सकता। वह चाहता है कि विश्व में जैनधर्म का प्रचार हो, किन्तु स्वयं अपने परिवार में जैनधर्म का प्रचार नहीं करना चाहता।

साधु-समुदाय में भी अपने रूढ़िग्रस्त आचार के प्रति तो निष्ठा है, किन्तु ज्ञानाचार के प्रति निष्ठा नहीं है। और यदि कहा जाये कि श्रावक से आज का साधु अधिक साम्प्रदायिक है, तो इस कथन में अत्युक्ति नहीं है। आज भी समाज पर साधुओं के प्रभाव में कोई कमी नहीं है। उनकी बात समाज सुनती है। यदि भगवान् महावीर को अपना धर्मगुरु मानने वाले सब गुरुजन अपनी अपनी वासनाएं त्याग कर परस्पर में मिलें और संघबद्ध हो कर, समाज का संचालन साम्प्रदायिकता की दृष्टि से नहीं किन्तु लोकोपकार और भगवान् महावीर के उदात्त सिद्धान्तों के विस्तार के लिये करें तो जैन-समाज में आज भी ऐसी शक्ति है कि वह लोक का अनुवर्तन कर सकता है।

पच्चीस सौ वर्षों में यद्यपि जैनसमाज में प्रत्येक दृष्टि से कमी आई हैं; किन्तु आज भी वह एक जीवित समाज है और वह एकदम गया बीता नहीं है।

उसके जैसा उदार व दानी समाज कम है, किन्तु दान का उपयोग ठीक दिशा में नहीं है। नई पौद का भविष्य अनिश्चित है। उसकी ओर किसी का लक्ष्य भी नहीं है और बागडोर उसी के हाथ में आने वाली है। वह कहां तक अहिंसक रहेगी, यह भी अभी अनिश्चित है।

यह अढाई हजार वर्ष तो हमने निकाल दिये। उन पर गर्व भले ही न कर सकें; किन्तु अफसोस करने लायक जैसा भी कुछ नहीं है। हम जीवित हैं, एक असंगठित संगठन के रूप में, यह क्या कोई कम सन्तोष की बात है।

भगवान् महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण दिवस के अवसर पर हम प्रतिज्ञा करें कि जहां हम हैं, वहां से नीचे नहीं जायेंगे और एक दिन महावीर के पदचिह्नों पर चल कर उन्हीं की तरह निर्वाण प्राप्त करेंगे।

महावीर ने किया

महामानवता का आह्वान

—कल्याण कुमार जैन 'शशि'

□

बिछा हुआ पग-पग पर, शापों षड़यन्त्रों का जाल,
पड़ी पाण्डुलिपि मानवता की, कटी फटी बेहाल।
हिंसा हत्या छल प्रपञ्च का बिछा हुआ है जाल,
मानवता को निगल गई है, दानवता विकराल॥

रामराज्य में पनप रहा, रावणता का व्यवधान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान॥

धर्मोपार्जन की आस्थाएँ दिखती डाँवाडोल,
लज्जा निर्वसना है, उच्छृंखलता की जय बोल।
भटक गया आत्मिकता से, मानव-जीवन अनमोल,
कोई अमृत-घट न बचा है, जहाँ न विष का घोल॥

मानवता की अमराई, होती जाती वीरान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान॥

बगुले तथा हंस का दिखता, जब समानान्तर वेश,
विश्व-शिखरसम्मेलन में, गर्भित है युद्ध-प्रवेश।
रिक्त नहीं इन अभिशापों से, कोई देश-विदेश,
करुणा, समता, आध्यात्मिकता का, कही नहीं लवलेश॥

दया अहिंसा को झिझोड़ता चेत रहा विज्ञान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान॥

क्रूर अपहरण, छीनाझपटी, पनपी चारों ओर।
कंसवाद अंगड़ाई लेता, हो आनन्द-विभोर।
सब के मन में शंकाओं का, घुस बैठा है चोर,
दृश्यमान है हृदयहीनता, निर्मम ऐंठ मरोर॥

दुराचरण को सिद्धान्तों का, पहिनाया परिधान।
महावीर ने दिया महामानवता का वरदान॥

पुकार

—हेमन्तकुमार श्रीमाल मधु, उज्जैन

□

महावीर स्वामी तुम्हीं हो तुम्हारें
तुम्हारे सिवा अब किसे हम पुकारें

लहर के थपेड़े चले आरहे हैं
भंवर की दिशा में लिये जारहे हैं
बड़ी दूर लगते नजर से किनारे।

सबेरा सुखों का नजर फेर बैठा
अन्धेरा दुखों का हमें घेर बैठा
यहाँ निर्बलों के तुम्हीं हो सहारे।

पवन औ फिजाँ में जहर आज फैला
चमन को खिजाँ ने किया है विषैला
कहों जिन्दगी 'मधु' कहाँ पर गुजारे।

—०—

निर्वाणदृष्टि के सन्दर्भ में

भ० महावीर का जीवन-दर्शन

डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

☐

आज से लगभग २५७२ वर्षों के पूर्व भारतवर्ष के पूर्वीय अंचल में मगधप्रदेश में वैशाली के कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला से चैत सुदी तेरस के दिन महावीर का जन्म हुआ था। महावीर का जन्म का नाम वर्द्धमान था। ये कश्यपगोत्रीय ज्ञातृक क्षत्रियकुल के थे। ज्ञातृक वज्जिसंघ के अष्टकुलों में प्रमुख गिना जाता था। वैशाली उन दिनों गणतन्त्रात्मक प्रजा-सत्ता से सम्पन्न थी। वैशाली गणतन्त्र के नायक राजा चेटक अपनी शासन-व्यवस्था के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। तत्कालीन भारतवर्ष के कई विशिष्ट राजाओं से केवल राजकीय ही नहीं, इनके कौटुम्विक सम्वन्ध भी थे। सिन्धुसौवीर के राजा उदायन, अवन्ती के राजा प्रद्योत, कौशाम्वी के राजा शतानीक, चम्पा के राजा दधिवाहन और मगध के राजा विम्बसार इनके दामाद थे। महावीर की माता त्रिशला चेटकराजा की वहन थी। वैशाली के राजा चेटक हैहय वंश के थे। वैशाली विदेह की राजधानी थी, जो गंडक नदी के तट पर अवस्थित थी। वैशाली एक विशाल नगरी थी, जो कई मार्गों में तथा मुहल्लों में विभक्त थी। उनमें कुण्डग्राम और वाणिज्यग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध मुहल्ले थे। इसके उत्तर के भाग में क्षत्रिय रहते थे और दक्षिण के भाग में ब्राह्मण। वैशाली नगरी में उन दिनों एक लाख साठ हजार क्षत्रिय निवास करते थे। नगरी सभी प्रकार से शोभा-सम्पन्न थी। इसके नगर-प्राकार को तीन बार विशाल वनाने के कारण इसका नाम वैशाली प्रचलित हुआ। वर्तमान में यह विहार-प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले में वसाढ़ गाँव मानी जाती है। यह गंडक नदी के पूर्व में अवस्थित है। वैशाली प्रजातन्त्र की न्याय-व्यवस्था कितनी सुन्दर थी, इसकी कुछ झलक हमें दीर्घनिकाय की अट्ठकथा में मिलती है। ब्राह्मणकुण्डपुर का दक्षिण विभाग 'ब्रह्मपुरी' के नाम से प्रसिद्ध था। क्षत्रियकुण्डपुर के उत्तर विभाग में लगभग ५०० घर ज्ञातृक्षत्रियों के थे। ब्राह्मण-कुण्डपुर और क्षत्रियकुण्डपुर क्रमशः एक दूसरे के पूर्व और पश्चिम में थे। इन दोनों के वीच में एक उद्यान था जो 'वहुसाल चैत्य' के नाम से प्रख्यात था। उत्तर-क्षत्रियकुण्डपुर के नायक का नाम सिद्धार्थ था। इन्हीं सिद्धार्थ के लाड़ले महावीर का जन्म ई० पू० ५९९ में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ था।

महावीर का शैशव सभी प्रकार से राजकुमारोचित बाल-क्रीड़ाओं से युक्त था। किन्तु समय-समय पर उन्होंने जिस बुद्धि-वैभव और निर्भयता का परिचय दिया, उससे उनका नाम ही 'महावीर' प्रसिद्ध हो गया। वे न तो विकराल सर्प की फुंकार से ही रंचमात्र भयभीत हुए और न सांप को उठा कर फेंकने में ही किसी प्रकार की हिचकिचाहट प्रदर्शित की। उस समय महावीर की अवस्था आठ वर्ष से भी कुछ कम थी। वे अपने इस प्रकार के साहस और सामर्थ्य का परिचय कई बार कई तरह से दे चुके थे। लगभग तीस वर्षों तक वे सामाजिक जीवन में रहे। इस बीच कई प्रकार महत्वपूर्ण कार्यों में सामाजिक जीवन में रहे। इस बीच कई प्रकार के महत्वपूर्ण कार्णों में वे संलग्न रहे। जिस प्रकार के ऐश्वर्य-भोगों से सम्पन्न परिवार में उनका जन्म हुआ था, उससे उनका मन उदासीन होने लगा था। इस उदासीनता के कई कारण थे। संसार के दुःख-द्वन्द्वों को देख कर उनका कोमल मन संवेदनशीलता और करुणा से भर गया। प्रथम बार महावीर को समाज में अनुभूति हुई कि निरीह, दीन-दरिद्र, निःसहाय और सामर्थ्यहीन प्राणियों की यह दशा पशु-पक्षियों से भी बदतर है। वे उनके उस जीवन की दशा को देख कर रो पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि जिस समाज में धन और धनिकों की पूजा होती है, उसे बदल डालना चाहिए। क्योंकि यह प्रत्यक्ष में ही मानवता का अपमान है। एक ओर सम्पत्ति का घोर संग्रह कर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में रहने वाले धनी-मानी लोग अपनी व्यवस्था और कानूनों से निरीह प्राणियों पर शासन कर रहे हैं और दूसरी ओर वे दीन-हीन मानव बड़े लोगों की अनुज्ञा में चलते हुए भी दिनोंदिन अन्याय और अत्याचारों में पिसते जा रहे हैं। महावीर के सामने जीवन एक बहुत बड़े प्रश्नवाचक चिह्न के रूप में समुपस्थित था—क्या बड़े लोगों को शासन करने के लिए ही बनाया गया है? प्रजातन्त्र है तो क्या सारी सत्ता आज भी राजाओं के हाथों में केन्द्रित है, वे जिस प्रकार से चाहते हैं राजा के रूप में चुन लिए जाते हैं? गणतन्त्र के रूप में अधिनायकवाद की सत्ता के ही दर्शन महावीर ने किये और सच्चे प्रजातन्त्र के लिए एक सहानुभूति की भावना सदा-सदा के लिए उनके मन में घर कर गई। महावीर ने अपने जीवन के चारों ओर जो कुछ व्याप्त देखा; वह उनके लिए नया नहीं था। शत-शताब्दियों से चले आ रहे धर्म और अहिंसा के नाम पर भयंकर रक्तपात और निरीह मूक प्राणियों का बलिदान तथा हिंसा की विकराल लीला से समाज में घोर आडम्बर और कर्मकाण्ड बढ़ चुका था। मानव-मानव के बीच विरोध की ऊँची दीवारें खड़ी हो चुकी थीं। सामन्तवर्ग के आधिपत्य में एक सम्पूर्ण वर्ग ही समाज का नेतृत्व कर रहा था, जिसके अनुसार जातिप्रथा अपने उस चरम उत्कर्ष को पहुँच चुकी थी, जिसमें धर्म और पवित्र सामाजिक कार्य करने का अधिकार केवल पुरोहितवर्ग को ही था। समाज की इस विशृंखल और आततायी दशा को देख कर महावीर का अन्तरात्मा रुदन करने लगा। रूढ़ियाँ और ऐसी रूढ़ियाँ, जो अन्धे की भाँति केवल चलने को कहें, देखने के लिए नहीं। वह भी इतिहास का एक पृष्ठ था,

निर्वाणदृष्टि के सन्दर्भ में

भ० महावीर का जीवन-दर्शन

डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

□

आज से लगभग २५७२ वर्षों के पूर्व भारतवर्ष के पूर्वीय अंचल में मगधप्रदेश में वैशाली के कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला से चैत सुदी तेरस के दिन महावीर का जन्म हुआ था। महावीर का जन्म का नाम वर्द्धमान था। ये कश्यपगोत्रीय ज्ञातृक क्षत्रियकुल के थे। ज्ञातृक वज्जिसंघ के अष्टकुलों में प्रमुख गिना जाता था वैशाली उन दिनों गणतन्त्रात्मक प्रजा-सत्ता से सम्पन्न थी। वैशाली गणतन्त्र के नायक राजा चेटक अपनी शासन-व्यवस्था के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। तत्कालीन भारतव के कई विशिष्ट राजाओं से केवल राजकीय ही नहीं, इनके कौटुम्बिक सम्वन्ध भी थे सिन्धुसौवीर के राजा उदायन, अवन्ती के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा शतानीक चम्पा के राजा दधिवाहन और मगध के राजा बिम्बसार इनके दामाद थे। महावी की माता त्रिशला चेटकराजा की वहन थी। वैशाली के राजा चेटक हैहय वंश थे। वैशाली विदेह की राजधानी थी, जो गंडक नदी के तट पर अवस्थित थी वैशाली एक विशाल नगरी थी, जो कई मार्गों में तथा मुहल्लों में विभक्त थी। उन कुण्डग्राम और वाणिज्यग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध मुहल्ले थे। इसके उत्तर के भाग क्षत्रिय रहते थे और दक्षिण के भाग में ब्राह्मण। वैशाली नगरी में उन दिनों [illegible] लाख साठ हजार क्षत्रिय निवास करते थे। नगरी सभी प्रकार से शोभा-सम्पन्न थी इसके नगर-प्राकार को तीन बार विशाल बनाने के कारण [illegible] शा प्रचलित हुआ। वर्तमान में यह बिहार-प्रान्त के मुजफ्फरपुर [illegible] मानी जाती है। यह गंडक नदी के पूर्व में अवस्थित है। वैशा[illegible] व्यवस्था कितनी सुन्दर थी, इसकी कुछ झलक हमें [illegible] मिलती है। ब्राह्मणकुण्डपुर का दक्षिण विभाग 'ब्रह्मपुरी' के [illegible] क्षत्रियकुण्डपुर के उत्तर विभाग में लगभग ५०० घर ज्ञातृक [illegible] कुण्डपुर और क्षत्रियकुण्डपुर क्रमशः एक दूसरे के पूर्व और [illegible] दोनों के वीच में एक उद्यान था जो 'बहुसाल चैत्य' के नाम [illegible] क्षत्रियकुण्डपुर के नायक का नाम सिद्धार्थ था। इन्हीं [illegible] का जन्म ई० पू० ५९९ में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ था।

महावीर की याद

—फूलचन्द 'मानव'

□

सत्ता का अभिशाप
स्वयं शैतानी आगे

झुक जाता है
मर्दन करने गर्व चण्डकौशिक का—
जब जब नर

कृत-हृत सा, अकुलाता है
सकुचाता है
बल-पौरुष भी थर्राता है

सृष्टि के सपनों से तब, साकार
वर्धमान का बोध संत बन कर आता है
एक निशस्त्रीकरण
शस्त्र तलवार ही नहीं
हर मन का प्रहार
वार अस्तित्व मात्र पर

कहाँ अहिंसा ?

आलोक : अभय का दान
मनुज आत्मविजयी हो
या फिर जीत हृदयपरिवर्तन से

वेहतर है, सत्ता सूनी....

महावीर की याद
धर्म की फौलादी वुनियाद।

—o—

जिसके अक्षर-अक्षर को महावीर ने पढ़ लिया था और अपनी क्रान्तिदर्शी प्रतिभा से सम्पूर्ण भारतीय समाज को परिवर्तित करने के लिए अपनी आध्यात्मिक साधना के कुछ नये मन्त्र प्रदान किये।

महावीर ने केवल पुरुषों के सामाजिक जीवन पर ध्यान दे कर उन्हें सभी प्रकार के जन्मसिद्ध अधिकार पाने के लिए सबल और सचेष्ट ही नहीं किया, वरन् उनके साथ ही नारी को धार्मिक क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकार प्रदान कर चतुर्विध संघ की स्थापना की। सामाजिक जीवन में उन्होंने धर्म और समता पर अधिक वल दिया। उनका स्पष्ट कथन है—

'लोक में कर्म के अधीन जीवों को मेधा हो चाहे न हो, ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्यम कभी नहीं छोड़ना चाहिए। कस कर काम करने का नाम ही तप है। तप से रहित ज्ञान और ज्ञान से रहित तप व्यर्थ हैं। इसलिए आत्मा को तपाओ, सुकुमारता छोड़ो, कामना को दूर करो, निश्चित रूप से दुःख दूर होगा। द्वेष का नाश करो, रागभाव को दूर करो, इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से संसार में सुखी बन जाओगे।'

जब महावीर का युवक मन सामाजिक अत्याचार और उत्पीड़न से भर उठा तो उन्होंने सबसे पहले राजमहल छोड़ कर एक सामान्य से सामान्य व्यक्ति का जीवन वस्त्राभूषणों से रहित हो कर संयम, तप और समता के सिद्धान्तों पर विताना आरम्भ किया। पशु से भी वदतर जीवन विताने वाले क्रीत दास, दासियों और समाज से बहिष्कृत नीच समझे जाने वाले शूद्रों और मनुष्योचित अधिकारों से वंचित अपना सर्वस्व समर्पण करने वाली नारियों को वाणी प्रदान करने वाले महावीर इतिहास के ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने समाज में विभिन्न क्रान्तिकारी परिवर्तन कर जाति-भेद के सिद्धान्तों को गुण और कर्मानुसार विवेचित किया। उनके अनुसार—

'देह वंदनीय नहीं होता, कुल और जाति भी वंदनीय नहीं होते ; न गुणहीन श्रमण ही वंदनीय होता है और न श्रावक। फिर मैं किस गुणहीन की वन्दना करूँ ? केवल सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। ओम् का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता। केवल अरण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता और कुश का चीवर पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता। समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना करने से मुनि होता है और तप का आचरण करने से तापस होता है। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।'

इस प्रकार महावीर ने सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में उत्क्रान्ति कर वास्तविक जीवन-दर्शन का उद्घोष किया। आज की जिन्दगी में उनके जीवन-दर्शन का वही महत्व है, जो ढाई हजार वर्षों के पहले था। आज की सामाजिक विषमता, धन, सम्पत्ति और वैभव का घोर संग्रह तथा प्रदर्शन, निर्वल और दीन-हीनों का शोषण, शक्ति की विस्तारवादी नीतियाँ और शक्ति-सन्तुलन के आधार पर एक-दूसरे देशों के बीच हस्तक्षेप करना आदि ऐसी विषमताएँ हैं, जिनका वर्णन 'हिंसा' और 'परिग्रह' पाप के अन्तर्गत किया गया है।

—०—

महावीर की याद

—फूलचन्द 'मानव'

□

सत्ता का अभिशाप
स्वयं शैतानी आगे

भुक जाता है
मर्दन करने गर्व चण्डकौशिक का—
जब जब नर

कृत-हृत सा, अकुलाता है
सकुचाता है
बल-पौरुष भी थर्राता है

सृष्टि के सपनों से तब, साकार
वर्धमान का बोध संत बन कर आता है
एक निशस्त्रीकरण
शस्त्र तलवार ही नहीं
हर मन का प्रहार
वार अस्तित्व मात्र पर

कहाँ अहिंसा ?

आलोक : अभय का दान
मनुज आत्मविजयी हो
या फिर जीत हृदयपरिवर्तन से

वेहतर है, सत्ता सूनी....

महावीर की याद
धर्म की फौलादी बुनियाद।

—०—

ओ विद्रोही ! ओ तीर्थंकर !! तेरा वह धर्मचक्र-वर्तन !!!

—वीरेन्द्रकुमार जैन

ले कर अनंग-मोहन यौवन, अधरों पर बंकिम धनु तानें।
मनसिज की पुष्प-धनुष-डोरी, तुम तोड़ चले ओ मस्ताने !!
नन्दन-कानन में अप्सरियाँ वन कमल बिछीं तेरे पथ में।
पद-रज की उनको दे पराग, तू लौट चढ़ा पावक-रथ में !

वह तीस वर्ष का अरुण तरुण, रति की शैया भी थी प्यासी।
त्रैलोक्य-काम्य रमणीय के परिणय को निकले तुम संन्यासी !!
बाला-जोबन, भोली सूरत, भौंहों में सत्-सन्धान लिये।
चितवन में देश-काल पर शासन करने का अभिमान लिये।।

अधरों पर वीतराग-समता की अनासक्त मुस्कान लिये।
उन अवहेलित-सी अलकों में शाश्वत यौवन का मान लिये।।
चिर मोह-रात्रि भव की अभेद्य, भेदन करने चल पड़े वीर।
भीषण जड़-चेतन युद्धों में, तुम जूझ चले जेता सुधीर।।

हिंसक पशु-संकुल बीहड़ वन, दुर्गम-गभीर गिरि-पाटी में।
तुम निर्भय बिचरे हिंसा, भय, साक्षात् मृत्यु की घाटी में !!
निर्वसन, दिगम्बर, प्रकृत, नग्न, प्रकृति-जेता ओ क्षात्र-जात !
पृथ्वी ससागरा लिपटी थी, तव चरणों पर होने सनाथ !!

झाड़ी-भंखाड़, वनस्पतियाँ, वल्लरियाँ भरतीं परिरम्भण।
विषधर विभोर हो लिपट रहे, नग्ना जाँघों पर दे चुम्बन !!
नाना विधि जीव-जन्तु कीड़े, चींटी दीमक सब निर्भयतम।
पृथ्वी, जल, अम्बर, तेज, वायु सब त्रस-थावर जड़ औ' जंगम !!

तेरी समाधि की समता के उस वीतराग आलिङ्गन में—!
सब मिल कर एकाकार हुए, निर्बन्धन, तेरे बन्धन में !!
कैवल्य-ज्योति! आदित्य पुरुष ! ओ तपो-हिमाचल शुभ्र धवल !
तेरे चरणों से बह निकली, समता की गंगा ऋजु निश्छल !!

इस निखिल सृष्टि के अणु-अणु के संघर्ष, विषमता औ' विरोध !
कल्याण-सरित में डूब चले, हो गया वैर आमूल शोध !!
तेरे पद-नख के निर्झर-तट, सब सिंह, मेमने, मृगशावक !
पीते थे पानी एक साथ, तेरी छाया में ओ रक्षक !!

जिन-चक्रवर्ति ! सातों तत्त्वों पर हुआ तुम्हारा तब शासन !
तीनों कालों, तीनों लोकों पर बिछा तुम्हारा सिंहासन !!
वह विषम रात्रि इतिहासों की, संघर्ष-त्रस्त भटके भव-जन !
था जीवन, जीवन का शोषक, था जीव-जीव में संघर्षण !!

जीवन जीवन का भक्षण कर, जीने का था प्रचलित विधान !
हिंसा से क्रन्दन-कातर था, इस निखिल लोक का आसमान !!
सत्ता के लोहे के नीचे, वे प्राणि-हवन के आयोजन !
निर्दोष, मूक, पशु-बलियों से था त्रस्त मनुज का अन्तरतम !!

उन क्रूर विषमता-शूलों में जन्मे समता के पैगम्बर !
ब्रह्माण्डों में भूचाल हुआ, जब तू उतरा इस धरती पर !!
ओ सिंह दिगम्बर ! सत्ता की तलवारों की नोकों पर चल !
वह चिरसुख का कल्याण-मार्ग, तू बना चला उन पर अविचल !!

दुर्वृत्त भंग कर हिंसा का, तू प्रकृति का क्रम उलट चला !
थी निखिल लोक में हुई क्रान्ति, अणु-अणु का अन्तर पलट चला !!
कर मर्यादा का उल्लंघन ! सब मूढ़ रूढ़ियां तोड़ चला !
ओ तू विप्लव के झंझानिल ! मिथ्यात्व-वज्र-गिरि फोड़ चला !!

वह जीव-जीव के शोषण का उत्पीड़न तब हो चला अन्त !
जागा विवेक, जागा चेतन, जागा कर्मावृत ज्ञान, हन्त !!
था हुआ 'अहिंसा परम धर्म' का निखिल लोक में दिव्य घोष !
तेरे चरणों पर पिघल बहा चक्राधीशों का भृकुटि-रोष !!

ओ विद्रोही ! ओ तीर्थंकर !! तेरा वह वह धर्म-चक्र-वर्तन !
जिससे तू भेद गया अर्हत् ! चिर जन्म-मरण के गठ-बन्धन !!
कृष्णा चौदस की निशा शेष, आकुल फटने को था प्रभात।
आठों जंजीरें तोड़ मुक्त, निर्वाण हो चले, सिद्ध-नाथ !!

पावापुर की वे सर लहरें गाती हैं अब भी मुक्ति-गान।
प्रकटा उषा में ज्योति-पुरुष ! वह झाँका तीर्थंकर महान ॥
अनवरत चल रहा काल-चक्र फिर आई कैवल-ज्योति रात।
हिंसाकुल मानव, भीत, त्रस्त, घायल, शोणित से भरे गात !!

दीन आँखों की अंजुलियों में, आँसू दीपक जले नाथ।
दीपोत्सव कैसे मने आज, निर्वाण-आरती ! कँपे हाथ ॥
ओ युग-धाता, ओ जग-त्राता, ओ तीर्थ-देव, ज्योति-दान।
इस जड़ीभूत, संघर्ष-क्षुब्ध, मानव को कर आत्मा प्रदान ॥

जागे विवेक, जागे चेतन, जागे जीवन-कल्याण-मंत्र।
सब राज-नीति औ' भेद-नीति से कर मानव को फिर स्वतन्त्र ॥
इस मुक्तिरात्रि में ! लो, बन्दी के अश्रु-सजल शत-शत प्रणाम।
ओ मुक्त ! लोक के सुख-दुख से क्या कभी ले सके तुम विराम !

त्रैलोक्य-काल के रमण-देव ! है लोक न तुम से परे नाथ।
तुम वीतराग ! तुम पूर्ण राग !! बन्धन-निर्बन्धन एक साथ !!!
जागो जागो कैवल्य-ज्योति ! हा करो त्राण, हम आर्त-प्राण।
कर भेद अहं-तम मानव का, सत-संज्ञा उसको करो दान ॥

बेबस आँसू में जन-जन के, प्रभु ज्योतित कर दो आत्म-ज्ञान।
अपना स्वामी, स्रष्टा बन कर, वह करे मांगलिक नवविधान ॥

□□

—वीर निर्वाण विचार-सेवा,
इन्दौर के सौजन्य से

गोविन्द निवास,
सरोजिनी रोड,
विले पारले (पश्चिम)
बम्बई-५६

श्री अमर भारती : भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक

निर्वाणवादी महावीर की दृष्टि में—

सत्य की प्रतीति के दो रूप

उपाध्याय अमरमुनि

□

सत्य की प्रतीति के दो रूप हैं। एक है श्रुत और दूसरा है दृष्ट। श्रुत का अर्थ है—सुना हुआ। किसी गुरु से शास्त्रवचनों के द्वारा जो सत्य की उपलब्धि होती है, वह श्रुत सत्य है। इसे परोक्ष सत्य भी कहा जाता है। इस प्रकार का सत्य सत्य का एक संकेत मात्र है। शब्दों के माध्यम से हम वस्तुस्थिति का एक धुंधला-सा अर्थबोध कर लेते हैं, उसका स्पष्टतया साक्षात्कार नहीं। और जब तक सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार, जिसे दर्शन की भाषा में दृष्ट एवं अनुभूत सत्य कहा जाता है—न हो, तब तक सत्य का यथार्थ बोध अपनी निश्चित मंजिल पर नहीं पहुँच सकता। सत्य के यथार्थ बोध की जिज्ञासा श्रुत सत्य से शान्त नहीं होती, वह होती है—स्वयं के द्वारा साक्षात् दृष्ट एवं अनुभूत सत्य से।

एक अनजान व्यक्ति मिश्री के रस के सम्बन्ध में पूछता है कि "मिश्री का रस कैसा होता है?" प्रश्नकर्ता ने मिश्री का केवल नाम सुना है, न उसे देखा है, न चखा है। उत्तरदाता कहता है—"मिश्री बहुत मीठी होती है।" प्रश्न का उत्तर तो मिल गया और प्रश्नकर्त्ता को मिश्री के रस के सम्बन्ध में परिबोध भी हो गया कि वह मधुर होती है। परन्तु मिश्री के उक्त मधुर रस का परिबोध कितना अधूरा है, अस्पष्ट है, परोक्ष है, यह हर कोई विदग्धजन जान सकता है। "मीठी तो है, पर कैसी मीठी है मिश्री?"—यह प्रश्न बराबर मन के सागर में उत्तरंगित होता रहता है। और जिसने कभी किसी भी रूप में 'मधुर रस' का कोई अनुभव ही न किया हो, उसके लिए तो 'मिश्री मीठी होती है'—यह शाब्दिक समाधान कुछ भी समाधान नहीं रखता।

सर्वथा अनुभवहीन व्यक्ति के लिए तो कभी-कभी शाब्दिक समाधान बिल्कुल ही उल्टी गंगा बहा देता है। प्रयत्न किया जाता है, उसे वस्तुतत्त्व के एक वास्तविक अर्थ बोध के प्रकाश में लाने का, और वह पहुँच जाता है वस्तुतत्त्व के सर्वथा विपरीत एवं विरुद्ध एक भ्रान्त परिकल्पना के सघन अन्धकार में। इस सम्बन्ध में एक लोककथा है। गाँव के लघुवयस्क भद्र बालक कहीं बैठे खीर खाने की चर्चा कर रहे थे। वहीं पास में एक जन्मदरिद्र, साथ ही जन्म का अन्धा भिखारी भी बैठा हुआ विश्रान्ति ले रहा था। उसने कभी खीर खाई नहीं थी। उस दरिद्र अंधे को यह भी पता नहीं था कि खीर कैसी होती है? उसकी खीर के प्रति जिज्ञासा हुई, फलतः उसने बड़ी विनम्रता से बच्चों से पूछा—"क्या होती है भैय्या खीर?"

एक उत्साही बालक ने बताया—"दूध की होती है।"

अन्धे भिखारी को दूध का भी कुछ पता नहीं था। जन्म का दरिद्र और जन्म का अन्धा। उसने न कभी दूध देखा, न पीया। पूछा—"दूध कैसा होता है?"

बालक ने कहा—"सफेद होता है दूध। तुझे पता नहीं।"

"सफेद कैसा होता है भाई?—अंधे ने जीवन में कुछ देखा तो था नहीं। उसे क्या पता, सफेद क्या होता है?

एक बालक ने समझाया—"बगुले को जानते हो? जैसा बगुला सफेद होता है, ऐसा ही दूध भी सफेद होता है।"

अन्धे भिखारी का बगुला से भी क्या समाधान। उस बेचारे ने बगुला भी तो कभी नहीं देखा था। पूछ बैठा—"भैया, बगुला कैसा होता है?"

अब तो बच्चे चक्कर में। अन्धे को कैसे कुछ बताएँ? खीर से चली चर्चा चलते-चलते बगुले पर पहुँच गयी। फिर भी प्रश्नोत्तर की समस्या ज्यों की त्यों। किनारा ही नहीं मिल रहा था जिज्ञासा को, जिज्ञासा के प्रश्न को और प्रश्न के उत्तर को।

बालमण्डली में एक बालक अपने को कुछ अधिक चतुर और समझदार समझता था। वह बोला बच्चों से—"बेवकूफो, कुछ आता भी है तुम्हें? इतनी देर हो गई, बेचारे अन्धे को कुछ भी नहीं समझा पाए। हटो जरा, मैं समझाता हूँ।"

चतुर बालक ने दावे के साथ अन्धे को समझाना शुरू किया। उसने अपने एक हाथ को टेढ़ा-मेढ़ासा कर बगुले की आकृति दी और अन्धे भिखारी का हाथ पकड़ कर अपने हाथ पर फिराते हुए बोला—"देखो, बगुला ऐसा होता है।"

अन्धा भिखारी बगुले के इस अर्थबोध से झट खीर के अर्थबोध पर पहुँचा और बोला—"भैय्या, ऐसी टेढ़ी खीर खाते कैसे हो?"

प्रश्न है, अन्धे भिखारी को शब्दों के माध्यम से खीर का क्या अर्थबोध हुआ ? बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है कभी-कभी। चलते हैं हिमालय की ओर, पहुँच जाते हैं सागर पर। **'हिमवद् गन्तुकामस्य, गमनं सागरं प्रति।'** बनाने लगे थे गणेशजी और बना बैठे हनुमानजी, अर्थात् बन्दर—**विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्'।**

मिश्री हो, खीर हो, दूध हो, कुछ भी हो, सब का सही-सही पता प्रयोग करने पर ही लग सकता है। मिश्री जीभ पर रखिएगा, तभी मिश्री के अपने विशिष्ट अन्य विलक्षण माधुर्य का पता लगेगा। यह मिश्री के रस का अनुभूत सत्य होगा, जो रस की जिज्ञासा को काफी हद तक किनारा दे सकेगा। अन्धे भिखारी को खीर का अर्थबोध भी खीर चखा कर या खीर दिखा कर भी कराया जा सकता है। दूसरी "कोई गति नहीं है।"

बाह्यजगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् के तत्त्वबोध तो शब्द के जाल में और अधिक उलझ जाते हैं। अन्दर का वह जगत् इतना अधिक सूक्ष्म है, रहस्यमय है कि वहाँ शब्द की स्थिति तो क्या, गति भी नहीं है। वैदिक महर्षि उस के सम्बन्ध में कहते हैं—**"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह।"** अर्थात् वहाँ से मन और वाणी, बिना कुछ पाए, बिना कुछ अता-पता लगाए, असफल ही लौट आते हैं। तीर्थंकर महावीर ने भी कहा था—**"सव्वे सरा नियट्टंति।"** वहाँ से सारे स्वर लौट आते हैं। **"तक्का तत्थ न विज्जइ।"**—तर्क की पहुँच भी वहाँ नहीं है। **"उवमाण विज्जए।"**—वहाँ के लिए उपमा भी तो कोई नहीं है। **"अरूवी सत्ता।"**—वह एक अरूप सत्ता है। **"अपयस्स पयं णत्थि।"**—अपद का कोई पद नहीं होता, दृश्य चिह्न नहीं होता। उक्त कथन से स्पष्ट है कि उस अनिर्वचनीय परमतत्त्वरूप परम चैतन्य का द्वार खोलने में शब्दों के धक्के कितने अधिक दुर्बल हैं, अर्थहीन हैं !

महाश्रमण महावीर के पास पूर्वजन्म से ही समागत 'श्रुतज्ञान' कितना विशिष्ट एवं निर्मल था। अत: श्रुत के लिए उन्हें किसी गुरु की अपेक्षा नहीं थी। इसीलिए उन्होंने अपना कोई दीक्षागुरु नहीं बनाया। दीक्षागुरु से जो श्रुत मिलता, वह या उससे भी कहीं अधिक विराट् श्रुत उनके पास पहले से ही था। इसलिए वह श्रुत से आगे का रहस्य खोजने के लिए अकेले ज्ञानयात्रा पर चले। उनकी दीक्षा-साधना का अर्थ है—'स्वयं सत्य की खोज करना।' किसी गुरु से, किसी शास्त्र से, किसी मत या पंथ की मान्यता से सत्य की खोज, एक अलग बात है। और स्वयं अपनी साक्षात्कृत अनुभूतियों के मूलाधार पर सत्य की यथार्थ खोज, अपने में एक अलग ही बात है। दोनों में आकाश-पाताल जितना अन्तर है, दिन-रात जैसा भेद है। सत्य दिया लिया नहीं जाता, खोजा जाता है। खोजना भी स्वयं खोजना है, किसी अन्य से खोज करवाना नहीं। स्वयं तलाश करना है, किसी दूसरे से तलाश करवाना नहीं। इसीलिये महावीर ने स्वयं सत्य की उपलब्धि करने के बाद कहा था—**"अप्पणा सच्चमेसेज्जा।"**—स्वयं अपने से अपने चिन्तन से अनुभूति से सत्य

की खोज करो। जीवन की राह में मिला मार्ग का ज्ञाता गुरु कुछ दूर तक ही साथ चल सकता है, आगे का पथ तो स्वयं जाँचना होता है, और जांच कर स्वयं उस पर चलना होता है। "**मार्गज्ञः सह याति किम् ?**"

महावीर का दर्शन है—जब तक श्रुतज्ञान है, और उस शाब्दिक श्रुतज्ञान के आधार पर चर्चा है, तब तक कैवल्यरूप पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता। अद्‌भुत है यह सिद्धान्त। सत्य की मिश्री के सम्बन्ध में सुना तो बहुत है, पर सुनने से माधुर्यानुभूति किसे हुई है? माधुर्यानुभूति अर्थात् आनन्दानुभूति। कैवल्य के लिए श्रुत से आगे दृष्ट की यात्रा करनी होगी। परोक्ष से प्रत्यक्ष में उतरना होगा। शब्द के जंगल को पार करना होगा, सत्य की नगरी तक पहुँचने के लिए। इसीलिए आचार्य शंकर ने कहा था—"**शब्दजालं महारण्यं, चित्त-भ्रमणकारणम्।**"—चित्त को भ्रान्त बना कर इधर उधर भटकाने वाला यह शब्दजाल बड़ा भयानक जंगल है। वस्तुतः आवश्यकता से अधिक गहराती जाती शास्त्रवासना सत्य का यथार्थ परिबोध नहीं होने देती। शास्त्रप्रतिबद्धता मत, पंथ या सम्प्रदाय आदि के द्वारा आरोपित सत्यों का बोध करा सकती है, परन्तु मत-पंथों से परे के मूल सत्य का परिबोध नहीं करा सकती। कैवल्यरूप प्रत्यक्षबोध श्रुतपरोक्षज्ञान से इतनी दूर है, जिस दूरी के बोध के लिए स्वयं शास्त्रों को अनन्त के सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं मिला। इस पर से समझ सकते हैं—परोक्ष और प्रत्यक्ष में कितना अन्तर है। महावीर के दर्शन में प्रत्यक्ष स्व-सापेक्ष है, और परोक्ष पर-सापेक्ष। स्वसापेक्ष का अर्थ है—'मन और इन्द्रिय आदि बाह्य साधनों से निरपेक्ष सर्वथा स्वतन्त्र स्वसंवेदन। महावीर का महाभिनिष्क्रमण इसी परनिरपेक्ष स्वसंवेदन के लिए था। साढ़े बारह वर्ष की सुदीर्घ साधना के फलस्वरूप वे परोक्षश्रुत की निम्नस्तरीय सीमा से आगे बढ़ कर सर्वात्मना प्रत्यक्ष स्वसंवेदन की, कैवल्य की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँच गए, जन से जिन बन गए। 'जिन' होने का यही एक पथ है, जिस पर महावीर चले थे।

आज धर्म के नाम पर चल रहे धर्म-संप्रदायों के जो द्वन्द्व हैं, संघर्ष हैं, उनका यही एक मात्र कारण है कि भद्र जनता को शास्त्रों के नाम पर मूर्ख बनाया जा रहा है। वेदों के नाम पर चिर अतीत से ब्राह्मण-परम्परा जन-मन को भ्रान्त करती आ रही है, और आगमों के नाम पर श्रमण-परम्परा। जिस गुरु के जो भी मन में आता है, उसे सिद्ध करने के लिए शास्त्रों की दुहाई देने लगता है। वे ही शास्त्र हैं, उनमें मूर्तिपूजा का विधान भी है, निषेध भी है। स्त्रीजाति का अपमान भी है, सम्मान भी है। दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण का पर्युषण पर्व भी है, भादवे का भी है। दो भाद्रपद होने पर प्रथम भादवे का पर्युषण भी है, दूसरे भादवे का भी है। उदयकाल की पंचमी आदि पर्वतिथि भी है, और अस्तकाल की भी हैं। किसी दीन हीन की दानादि से सेवा करने में पुण्य भी हैं, और इसी सेवा में पाप भी है। किसी मरते प्राणी की रक्षा में पुण्य है, धर्म है, और इसी रक्षा में पाप तथा अधर्म भी है।

एक संप्रदाय की दृष्टि में अपना अमुक क्रियाकाण्ड शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ है, विहित है, तो वही क्रियाकाण्ड दूसरी संप्रदाय की दृष्टि में उसी शास्त्र के अनुसार निकृष्ट है, निषिद्ध है। शास्त्र क्या हुए भानमती के पिटारे बना दिये गए। जो भी चाहिये, शास्त्रों में मिल सकता है। टीकाओं की आंख से तो एक ही वाक्य के कुछ के कुछ अर्थ लगाए जा सकते हैं। इसी का परिणाम है कि मूल में एक ही वैदिक परम्परा के अनुयायी अपने शास्त्रों के अनुसार परस्परविरुद्ध आस्तिक भी हैं, नास्तिक भी हैं। शैव, वैष्णव आदि में परस्पर इतना कलह एवं विग्रह है कि कुछ पूछो नहीं। जैन परम्परा का भी बुरा हाल कर रखा है शास्त्रमोह ने। भगवान् महावीर की वाणी की दुहाई देते हुए दिगम्बर श्वेताम्बरों को जैन नहीं मानते, और श्वेताम्बर दिगम्बरों को। स्थानकवासी तेरापंथी भी इसी धरातल पर खड़े हैं। ये अपने सिवा अन्य किसी को भी जैन मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अपने सिवा अन्य सब जैन नहीं, जैनाभास हैं, अपने मान्य शास्त्रों के अनुसार इन सबकी दृष्टि में। इस प्रकार आज जनगणना के आंकड़ों में एक भी तो कोई जैन नहीं है, स्वयं जैनों की दृष्टि में। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरापंथी के तो शास्त्र भी एक ही हैं। पर उन्हीं एक शास्त्रों के आधार पर परस्पर एक दूसरे को मिथ्यादृष्टि घोषित कर रहे हैं। आजकल युग दृष्टि से बाध्य हो कर जो एकत्व का नारा लग रहा है धर्मगुरुओं का, उसका अधिकांश केवल मंच पर के प्रदर्शन का नारा है। इन नारों के नीचे बहुत बड़ी मात्रा में असत्य एवं दंभ छिपा हुआ है। बात जरा कड़वी है, पर वह कितनी सत्य है, यह एकान्त में किसी साम्प्रदायिक कक्ष में उनके अपने हो कर मालूम कर सकते हैं। महावीर और महावीर के तत्त्वबोध को समझने के लिए इस दंभ को तोड़ना ही होगा। और यह टूटेगा तब, जब गुरु का शास्त्रज्ञता के नाम पर सर्वज्ञता का दावा टूटेगा। आज हर गुरु के पास, लगता है, महावीर की सीधी वाणी पहुँचती है। शास्त्र के माध्यम से महावीर का सत्य केवल उसे ही सुनाई देता है, अन्य किसी को नहीं। धर्मगुरुओं ने शास्त्रों के नाम पर सत्य के मूल रहस्य को जितना उलझाया है, उतना सुलझाया नहीं है। एक ही धर्म के परस्पर विरोधी संप्रदाय और उपसंप्रदाय इसी उलझाव के ही तो प्रत्यक्षसिद्ध प्रमाण हैं।

श्रमणपरम्परा के महान् अनुभवी संत कबीर के पास काशी के पण्डित विचारचर्चा के लिए गए तो अपने साथ शास्त्रों-ग्रन्थों से भरी अनेक गाड़ियाँ भी ले कर गए। कबीर ने देखा तो पूछा—"भई, यह क्या है ?" पण्डितों ने कहा—"ये शास्त्र हैं, चर्चा में प्रमाण बताने के लिए लाये हैं।" कबीर हंसे, बोले—'भई, मेरा अनुभव का मार्ग तो इतना सूक्ष्म है कि उसमें मान्यताओं की सरसों का एक दाना भी तो नहीं ठहर सकता है। भला वहाँ ये इतने लम्बे चौड़े भारीभरकम शास्त्र-शकट कैसे खड़े होंगे ? पण्डित तेरी-मेरी कैसे बनेगी ? **"तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।"** पण्डितों के पास उत्तर था इसका कोई ? उनको जाने दीजिए, आज के शास्त्र पण्डितों के पास उत्तर है इसका ? तीर्थंकर महावीर ने

उत्तर दिया था—"सत्य शब्दों में नहीं, अनुभव में है। परन्तु खेद है—महावीर के इस उत्तर को दूसरे तो क्या, आज के स्वयं जैन भी कहाँ और कितना समझ पाए हैं।

मेरा यह मतलब नहीं है कि शास्त्र का प्रयोजन नहीं है, उपयोग नहीं है। प्रारम्भिक भूमिका के लिए उसकी महत्त्वपूर्ण अपेक्षा है। परन्तु वहीं तक अटके रहना या अटकाये रखना उपयुक्त नहीं है। गुरु कुछ दूर तक भले ही अन्धे शिष्य को शास्त्रों की बात सुनाता चले, पथ बताता चले, परन्तु सदा के लिए तो वह ऐसा न करे। जीवनभर शिष्य को अन्धा बनाए रखना और उसका हाथ पकड़े घूमना, यह गुरु का कौन-सा गुरुत्व है? गुरु वह है, जो शब्द नहीं, अपितु आंख देता है। **नमोत्थुणं** सूत्र में इसीलिये तीर्थंकरों को '**चक्खुदयाणं**' कहा है, अर्थात् आँख के देने वाले। गुरु शिष्य को आँख देता है, उसकी अन्दर की आँख पर का जाला उतार देता है और फिर कहता है कि अब तू जो कुछ भी है, अपनी स्वयं की आँख से देख, अपने स्वयं के विवेक से निर्णय कर कि क्या सत्य है, क्या असत्य है, क्या हित है, क्या अहित है, क्या मार्ग है, क्या अपमार्ग है। जब तक तू स्वयं अपनी आँख से नहीं देखेगा, अपने स्वयं के विवेक से निर्णय नहीं करेगा, तब तक तेरी भ्रान्ति मिटेगी नहीं, समस्याओं का समाधान होगा नहीं। शास्त्र के नाम पर हजारों उल्टे-सीधे शास्त्र हैं। हर परम्परा के पास शास्त्रों के ढेर लगे हैं, जो परस्पर एक दूसरे से टकराते हैं, उनके शास्त्रत्व का यथोचित निर्णय भी तो तुझे अपने स्वयं के विवेक से ही करना होगा। ऐसा तो नहीं कि पशु को डंडे से जिधर हाँक दिया, उधर ही चल पड़ा। और फिर ये हांकने वाले भी तो दो चार नहीं, हजारों हैं, लाखों हैं। किस-किस के डंडों की मार खाए बेचारा साधक।

शास्त्रों का कुछ अंश ही त्रैकालिक सत्य होता है। अधिक अंश तो देश, काल और तत्कालीन व्यक्ति एवं समाज की परिस्थितियों के आधार पर उपदिष्ट होता है। वह एक प्रकार का व्यवहार-सत्य होता है; अतः देश कालानुसार परिवर्तित होता रहता है। आध्यात्मिक भाव वीतरागत्व है, समत्व है, यही शास्त्रों का नवनीत है। अतः भूगोल, खगोल तथा साम्प्रदायिक स्थूल क्रियाकाण्ड आदि पर शास्त्रीय सत्यता का आग्रह न रख कर वीतरागभाव, समभाव पर ही लक्ष्य रखना चाहिए। यह एक ऐसा लक्ष्य है, जिस पर किसी विवाद एवं विग्रह को कोई अवकाश नहीं है। इसी आधार पर विभिन्न रूपों में बिखरी हुई धर्मपरम्पराओं में एकत्व स्थापित हो सकता है। ध्यान रखिए, यह वीतरागत्व एवं समत्व भी शास्त्रीय शब्दों में ही न रह जाएँ, उन्हें अनुभूति में उतरना चाहिए। अनुभूति की गहराई में उतरे बिना वे केवल जिह्वा पर के तोता रटन्त होंगे, और कुछ नहीं, जिसके लिए कहा जाता है—
"लाख तोते को पढ़ाया, फिर भी हैवां ही रहा।"

———०———

भ० महावीर की दृष्टि में—
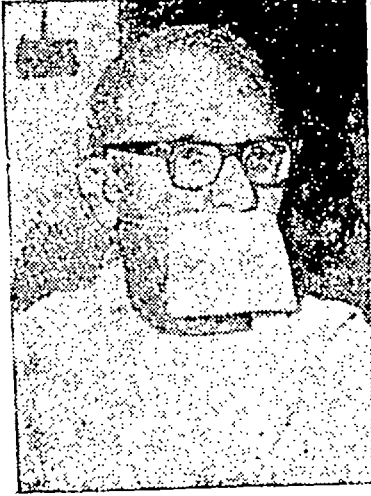
निर्वाण की व्याख्या

—मुनि नेमिचन्द्र

□

विविध दार्शनिक ग्रन्थों एवं शास्त्रों में निर्वाण का ही मुक्ति, मोक्ष, निर्याण, सिद्धि, सिद्धगतिप्राप्ति, परमात्मलीनता, अनन्त की प्राप्ति, अहंशून्यता आदि विविध नामों से निर्देश किया गया है।

इसलिए हम क्रमशः इनमें निहित अर्थों पर विचार करेंगे।

यद्यपि निर्वाण का शब्दशः अर्थ होता है—[1]'जिसमें से वात (हवा) निकल जाय। दीए का बुझ जाना, दीए का निर्वाण है। वैसे ही आत्मा के विकारों का बुझ जाना, आत्मा का निर्वाण है। दिए को कोई फूँक कर बुझा देता है, तो उसकी ज्योति कहाँ चली जाती है? वह मिट तो नहीं सकती है; ज्योति विराट् से आई थी, विराट् में ही खो जाती है। बौद्धदर्शन में कहा है—[2]दीपक के बुझ जाने पर उसकी लौ (ज्योति) न तो जमीन की ओर आती है और न आकाश की ओर उठती है, न किसी दिशा या विदिशा में फैलती है। तेल के समाप्त होते ही दीपक केवल शान्त हो जाता है, वैसे ही जीव जब निर्वृति (निर्वाण) प्राप्त करता है, तो वह भी पृथ्वी, आकाश या किसी दिशा या विदिशा की ओर नहीं जाता, अपितु क्लेशक्षय

---

१. निर्गतो वातः यस्मात् तन्निर्वाणिम् अथवा निर्वृतिमितं-प्राप्तम् निर्वाणम्।

२. दीपो यथा निर्वृतिमभ्युतेतो, नैवावर्नि गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्, स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
जीवस्तथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो, नैवावर्नि गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिश न कांचित् क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥

होने से बिलकुल शान्त हो जाता है। जैनदर्शन का कहना है—[1] दीपक का बुझ जाना उसकी ज्योति का मिट जाना नहीं है, रूपान्तर या परिणामान्तर हो जाना है, क्योंकि जो है, वह मिट नहीं सकता। इसी प्रकार जीव का निर्वाण भी, शान्त हो जाना भी उसका मिट जाना—अस्तित्वहीन हो जाना नहीं है, अपितु अव्याबाध परिणाम—स्वभावपरिणति को प्राप्त हो जाना है। वैदिक-परिभाषा में इसे यों कहा जा सकता है—आत्मा का अपने अहंत्व, ममत्व, देह, गेह आदि सबको खो कर महाविराट् में—परमात्मा में मिल जाना ही उसका निर्वाण है।

[2]जहाँ व्यक्ति विराट् में विलीन हो जाता है, वहाँ उसके जीवन में अहंत्व, ममत्त्व, मोह, स्वार्थ, कषाय, राग-द्वेष आदि कुछ भी नहीं रह जाता। ऐसे लय को नाश नहीं कहा जा सकता, वह तो आत्मा का अपने विराट्—शुद्ध स्वरूप में लीन हो जाना है। इन्द्रियाँ, मन, अहंकार, बुद्धि, चित्त आदि जो अनात्मभूत वस्तुएँ हैं, उनका लय (लिंगव्यय) हो कर आत्मभूत वस्तु (आत्मा और आत्मा के निखालिस गुणों में) लीन हो जाना ही निर्वाण है। आचारांगसूत्र की चूर्णि में निर्वाण का अर्थ—[3] 'अपने स्वरूप में स्थित होना' बताया है।

अपने स्वरूप में स्थित होने के लिए साधक को आत्मा पर लगे हुए विकारों, आवरणों एवं उपाधियों से रहित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से जैन-दर्शन में निर्वाण का अर्थ किया गया है—[4] समस्त कर्मकृत विकारों से रहित होना, [5]सकल सन्तापों से रहित हो कर आत्यन्तिक सुख पाना, समस्त द्वन्द्वों से[6] उपरत होना। क्योंकि जब तक आत्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, अहंकार, माया, राग-द्वेष आदि विकार रहेंगे, तब तक निर्वाण नहीं हो सकेगा। निर्वाण के लिए जैनदर्शन की पहली शर्त है—[7] 'समस्त कर्मों का क्षय होना।' और रागद्वेषादि उक्त विकारों से कर्मबन्ध होते हैं। दोनों में कार्य-कारणभाव सम्बन्ध है। रागद्वेषादि का नाश होते ही कर्मों का क्षय हो जाता है। समस्त कर्मों के क्षय होने पर[8] आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो कर[9] परमशान्ति को प्राप्त होती है।

---

१. जह दीवो निव्वाणो परिणामंतरमिओ तहा जीवो।
भणइ परिणिव्वाणो पत्तोऽणाबाहपरिणामं।

२. 'परमात्मनि जीवात्मलयः सेति त्रिदण्डिनः।
लयो लिंगव्ययो, जीवनाशश्च नेष्यते॥'

३. 'निर्वाणं आत्मस्वास्थ्ये'—आ० चूर्णि० अ० ४

४. 'निर्वाणं कर्मकृतविकाररहितत्वे' आ० चूर्णि ४ अ०

५. 'सकलसंतापरहितत्वे'।

६. 'सर्वद्वन्द्वोपरतिभावे, सूत्र० १ श्रु० १ अ० १३.

७. 'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः तत्वार्थसूत्र।

८. 'पुंसः स्वरूपावस्थानं सेति सांख्याः प्रचक्षते'

९. 'निर्वाणं शान्ति परमाम्'—गीता

सिद्ध शिला

होने से बिलकुल शान्त हो जाता है। जैनदर्शन का कहना है—[1] दीपक का बुझ जाना उसकी ज्योति का मिट जाना नहीं है, रूपान्तर या परिणामान्तर हो जाना है, क्योंकि जो है, वह मिट नहीं सकता। इसी प्रकार जीव का निर्वाण भी, शान्त हो जाना भी उसका मिट जाना—अस्तित्वहीन हो जाना नहीं है, अपितु अव्याबाध परिणाम—स्वभावपरिणति को प्राप्त हो जाना है। वैदिक-परिभाषा में इसे यों कहा जा सकता है—आत्मा का अपने अहंत्व, ममत्व, देह, गेह आदि सबको खो कर महाविराट् में—परमात्मा में मिल जाना ही उसका निर्वाण है।

[2]जहाँ व्यक्ति विराट् में विलीन हो जाता है, वहाँ उसके जीवन में अहंत्व, ममत्त्व, मोह, स्वार्थ, कषाय, राग-द्वेष आदि कुछ भी नहीं रह जाता। ऐसे लय को नाश नहीं कहा जा सकता, वह तो आत्मा का अपने विराट्—शुद्ध स्वरूप में लीन हो जाना है। इन्द्रियाँ, मन, अहंकार, बुद्धि, चित्त आदि जो अनात्मभूत वस्तुएँ हैं, उनका लय (लिंगव्यय) हो कर आत्मभूत वस्तु (आत्मा और आत्मा के निखालिस गुणों में) लीन हो जाना ही निर्वाण है। आचारांगसूत्र की चूर्णि में निर्वाण का अर्थ—[3] 'अपने स्वरूप में स्थित होना' बताया है।

अपने स्वरूप में स्थित होने के लिए साधक को आत्मा पर लगे हुए विकारों, आवरणों एवं उपाधियों से रहित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से जैन-दर्शन में निर्वाण का अर्थ किया गया है—[4] समस्त कर्मकृत विकारों से रहित होना, [5]सकल सन्तापों से रहित हो कर आत्यन्तिक सुख पाना, समस्त द्वन्द्वों से[6] उपरत होना। क्योंकि जब तक आत्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, अहंकार, माया, राग-द्वेष आदि विकार रहेंगे, तब तक निर्वाण नहीं हो सकेगा। निर्वाण के लिए जैनदर्शन की पहली शर्त है—[7] 'समस्त कर्मों का क्षय होना।' और रागद्वेषादि उक्त विकारों से कर्मबन्ध होते हैं। दोनों में कार्य-कारणभाव सम्बन्ध है। रागद्वेषादि का नाश होते ही कर्मों का क्षय हो जाता है। समस्त कर्मों के क्षय होने पर[8] आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो कर[9] परमशान्ति को प्राप्त होती है।

---

१. जह दीवो निव्वाणो परिणामंतरमिओ तहा जीवो।
भणइ परिणिव्वाणो पत्तोऽणाबाहपरिणामं।

२. 'परमात्मनि जीवात्मलयः सेति त्रिदण्डिनः।
लयो लिंगव्ययो, जीवनाशश्च नेष्यते॥'

३. 'निर्वाणं आत्मस्वास्थ्ये'—आ० चूर्णि० अ० ४

४. 'निर्वाणं कर्मकृतविकाररहितत्वे' आ० चूर्णि ४ अ०

५. 'सकलसंतापरहितत्वे'।

६. 'सर्वद्वन्द्वोपरतिभावे, सूत्र० १ श्रु० १ अ० १३.

७. 'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः तत्वार्थसूत्र।

८. 'पुंसः स्वरूपावस्थानं सेति सांख्याः प्रचक्षते'

९. 'निर्वाणं शान्ति परमाम्'—गीता

यही आत्यन्तिक सुख की स्थिति होगी।[10] फिर न तो कर्मों के कारण प्राप्त होने वाला शरीर होगा, न नाम, रूप, आकार तथा शरीरजनित सुख-दुःख, मोह, अहंकार, जन्म-मरण, जरा, व्याधि, इन्द्रियजनित विषय, क्षुधा, तृषा, निद्रा, उपसर्ग, सर्दी, गर्मी आदि होंगे। यही निर्वाण की वास्तविक स्थिति होगी।

[11]जब शरीर ही सदा के लिए मिट जाता है, तब शरीर के कारण होने वाले [12]मैं, मेरापन, राग, द्वेष आदि विकार तो स्वतः मिट ही जाते हैं। सभी उपाधियाँ शरीर के 'मैं' के आसपास इकट्ठी होती हैं। अतः जो सर्वथा मिट जाता है, वह सभी उपाधियों से मुक्त हो जाता है। [13]जब जन्ममरण नहीं होगा तो आवागमन समाप्त हो ही जायगा। इसलिए जो परमहंस वीतराग पुरुष अपने आपे को खो कर परमात्मतत्त्व की उपलब्धि कर लेते हैं, वे [14]निर्वाण होते ही सिद्धिगति नामक स्थान में अपने आत्म-स्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाते हैं, जहाँ से लौट कर वापिस नहीं आना होता, वहाँ की स्थिति [15]शिव (निरूपद्रव), अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, और अपुनरावृत्ति है। निरूपद्रव इसलिए है कि शरीर के कारण सारे उपद्रव खड़े होते हैं, शरीर वहाँ है ही नहीं तो उपद्रव कैसा ? अचल-अवस्था मौन और शान्ति की सूचक है। जहाँ शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि होते हैं, वहीं हलचल होती है, द्वन्द्व होता है, संघर्ष होता है, जहाँ ये सब मूर्त पदार्थ नहीं होते, वहाँ सर्वथा शून्य, मौनभाव और प्रगाढ़ शान्ति होगी, किसी भी प्रकार के विकल्प मन में नहीं उठेंगे। वह अपने आप में परिपूर्ण और स्थिर होगा। इसी निष्कम्प अवस्था को जैनदर्शन ने [16]शैलेशी अवस्था बताई है, इस अवस्था में भीतर सन्नाटा छा जाता है, जितनी भी हलचलें होती हैं, वे

---

१०. राग-द्वेष-मद-मोह-जन्म-जरा-रोगादिदुःखक्षयरूपा।
सतो विद्यमानस्य जीवस्य विशिष्टा; काचिदवस्था निर्वाणम् ॥'

११. णवि दुःक्खं, णवि सुक्खं, णवि पीड़ा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं, णवि जणणं, तत्थेव य होई णिव्वाणं॥
णिव इंदिय-उवसग्गा, णिव मोहो, विम्हिओ य णिद्दा य।
णय तिण्हा णेव छुद्दा, तत्थेव हवदि णिव्वाणं॥—नियमसार १७८।१७९

१२. निर्जितमदमदनानां वाक्कायमनोविकाररहितानाम्।
विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम् ॥

१३. यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।—गीता

१४. 'अमतं संति निव्वाणं पदमच्चुतं'—सुत्तनिपात पारायणवग्ग

१५. "सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगई-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं"—'नमोत्थुणं (शक्रस्तव)' पाठ

१६. जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥

तो बाहर होती हैं। यहाँ बिलकुल निर्वातता हो जाती है, दिये के बुझ जाने पर जैसे शान्ति हो जाती है, वैसी ही निर्वाण-अवस्था में शान्ति हो जाती है। वहाँ केवल (सिर्फ) ज्ञान मात्र ही शेष रहता है,[१७] निष्केवल ज्ञान। न वहाँ ज्ञाता बचता है, न ज्ञेय पदार्थ, सिर्फ ज्ञान (जानना) ही बच जाता है। वह अनन्तज्ञान ही दर्शन और चारित्र को अपने में समाविष्ट कर लेता है। निर्वाणप्राप्त व्यक्ति सर्वज्ञ और निःसंशय तो पहले से ही हो जाता है। [१८]फिर वहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसौख्य और केवल-वीर्य (शक्ति) ही विद्यमान रहते हैं, जिन्हें अनन्तचतुष्टय कहते हैं। बाकी के अस्तित्व, अमूर्तत्व, और सप्रदेशत्व आदि जो गुण हैं, वे तो आत्मा के निजी गुण हैं। इसी बात को [१९]धम्मपद में बताया गया है।

ऐसे निर्वाण में आत्मा की स्थिति कैसी होती है? इसका पूर्णतया विवरण तो अनन्तज्ञानी पुरुष ही प्रस्तुत कर सकते हैं। किन्तु साधारण साधक तो उन ज्ञानी पुरुषों के वचनों के आधार पर ही निर्वाणजन्य अपरिमित आनन्द, स्वरूपावस्थान की मस्ती का वर्णन कर सकता है। गूंगे के लिए गुड़ की मिठास का वर्णन करने जैसा ही प्रायः यह वर्णन है। इसी कारण जैनदर्शन में मोक्ष में आत्मा की स्थिति [२०]अव्याबाध बताई है। तात्पर्य यह है कि निर्वाण हो जाने पर समस्त बाधाओं के अभाव के कारण आत्मा के निजगुण वहाँ पूर्णरूप से प्रकट हो जाते हैं। निर्वाण आत्मा की परिपूर्ण विकासदशा है।

परन्तु उसका कथन[२१] शब्दों से पूर्णतया नहीं हो सकता,[२३] न किसी इन्द्रिय के द्वारा उसे ग्रहण किया जा सकता है। इसीलिए उसे विविध दर्शन अनिर्वचनीय,[२२] अव्या-कृत, अव्याख्य और अमूर्त होने के कारण अग्राह्य कहते हैं।

---

१७. 'निष्केवलं ज्ञानम्'—निर्वाणोपनिषद्

१८. विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं, च केवलवीरियं।
केवलबोहि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं ।। नियमसार १८१

१९. 'निव्वाणं परमं सुखं'—धम्मपद

२०. अव्वाबाहं अवट्ठाणं अव्याबाधं व्याबाधावर्जितमवस्थानं जीवस्यासौ मोक्षः।
—अभि० रा० खंड ६ १-४३१।

२१. 'सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया,........
उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं णत्थि।' आचा० १।५।६।१७१

२२. 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—तैत्तरीय २।९

२३. नचक्षुषा गृह्यते, नाऽपि वाचा।-मुंडकोपनिषद्

निर्वाण होने पर जो स्थान आत्मा के स्वाभाविकतया ऊर्ध्वगमन के कारण [२४]आत्मा को प्राप्त होता है, उसे जैनशास्त्रों में सिद्धशिला, गीता में परमधाम, मोक्ष मुक्तिस्थान आदि विविध नामों से पुकारा जाता है।

वास्तव में निर्वाण आत्मा के परिपूर्ण विकास का धाम है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसी कारण साधक के लिए जीवन का अन्तिम लक्ष्य अन्तिम ईष्ट और चरम प्राप्तव्य कोई हो सकता है तो निर्वाण ही। जहाँ उसे इतने अनन्त ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, वहाँ उसे [२५]सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशकारक पदार्थों की जरूरत नहीं रहती, [२६]न पृथ्वी, पानी, हवा आदि की ही जरूरत रहती है, क्योंकि वहाँ सिर्फ ज्योतिर्मय चैतन्य है, आत्मद्रव्य है, शरीर नहीं है।

---
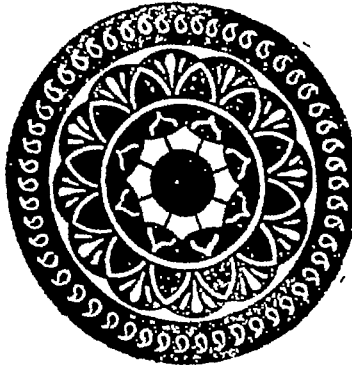
२४. तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवइ सासओ—दशवै० अ० ४

२५. न तद् भासयते सूर्यो न शंशाको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम ॥—गीता १५।६

२६. यत्थ आपो न पठवी, तेजो वायो न गाधति।
न तत्थ सुक्का जोवंति आदिच्चो न प्पकासति।
न तत्थ चंदिमा भाति, तमो तत्थ न विज्जति। उदान० १।१०
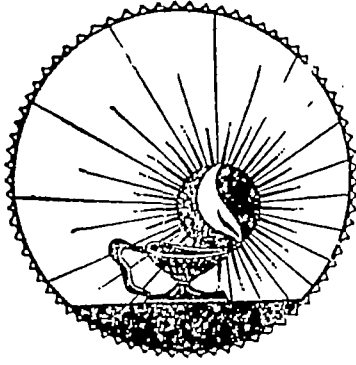
भारतीय दर्शनों में निर्वाण-मीमांसा

मुनि रमेश (सा. रत्न) जालना

□

'निर्वाण' आर्यसंस्कृति की अनूठी अनुपम खोज है। भारत के महामनस्वियों ने साधना-आराधना का चरमबिन्दु निर्वाण (मुक्ति) के रूप में अभिव्यक्त किया है।

जहाँ लोक के अग्रभाग पर एक ऐसा ध्रुवस्थान है। वह जरा, मृत्यु, आधि-व्याधि और वेदना से रहित है। उसे निर्वाण, अव्याबाध, सिद्ध, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध के नामों से पुकारा जाता है; जिसकी महर्षिगण साधना करते हैं।[1]

वह मोक्षस्थान शाश्वत निवास वाला है। जिसे पा कर भव्यात्माएँ सदा-सदा के लिए शोकचिन्ता से मुक्त हो जाती हैं।"[2]

उस परम स्थान को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा एवं न अग्नि ही। जहाँ पहुँचने के पश्चात् पुनः संसार में जन्म-मरण धारण करना नहीं पड़ता है। वही मेरा परमधाम है।[3]

जैन बौद्ध एवं वैदिक दार्शनिकों ने निर्वाण के अस्तित्व को खुले दिल-दिमाग से स्वीकार किया है। किन्तु व्याख्या विश्लेषण की दृष्टि से उपर्युक्त धाराओं में कुछ अन्तर अवश्य जान पड़ता है।

---

१. अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
नत्थि जत्थ जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा॥
निव्वाणंति अबाहंति, सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो॥
उत्तरा०—२३।८१-८३

२. तं ठाणं सासयं वासं, जे संपत्ता न सोयंति॥
उत्तरा०—२३।८४

३. न तद् भासयते सूर्यो, न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद् धाम परमं मम॥
गीता—१५।६

गीता के माध्यम से वैदिकधारा का कहना है कि हे अर्जुन ! जब-जब भारत में धर्म का ह्रास होने लगता है और अधर्म-अत्याचार सीमा लांघ जाते हैं। तब मैं पुनर्जन्म धारण करता हूँ। दुष्ट जनों का संहार करके सज्जन आत्माओं की रक्षार्थ मैं युग-युग में प्रगट होता हूँ।[१]

बौद्धग्रन्थों में लिखा है कि जब धर्म-तीर्थ की प्रभावना मंद पड़ जाती है। तब परमपद निर्वाणको प्राप्त हुई आत्मा पुनर्जन्म ग्रहण कर संघरूपी तीर्थ में परिव्याप्त विकृति को दूर करती है।[२]

पुनर्जन्म धारण करने का अभिप्राय: यह हुआ कि उस धर्मप्रवर्तक की मनोकामना अभी तक संसार के परिभ्रमण से मुक्त नहीं हुई है; भले ही उस भावना में परोपकार निहित हो। किन्तु पुनर्जन्म का मतलब यह हुआ कि—अभी उस आत्मा के गमनागमनरूप कार्य-कारण का अभाव नहीं हुआ है। कर्मरूपी शत्रु परास्त नहीं हुए हैं। अभी उनमें राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि मलिन पर्यायों का सद्‌भाव है। जैसा कि 'यत्र-यत्र कषायस्तत्र-तत्र संसारसद्‌भाव: वर्तते, इसके अनुसार संसार-परिभ्रमण जिनका बंद नहीं हुआ है। वह आत्मा निर्वाण को नहीं पहुँची, ऐसा स्वयं सिद्ध है।

जैनधारा उपरिवर्णित मान्यताओं से सर्वथा भिन्न प्रतिपादित करती है। जैनदर्शन की यह अटूट मान्यता रही है कि कोई भी किसी भी जाति-परिवार का पुरुष अथवा स्त्री क्यों न हो ; जिसने रत्नत्रय की सम्यक् साधना के साथ-साथ, सब प्रकार के आरम्भ और परिग्रह का त्याग किया हो, सब प्राणियों के प्रति समता और जो चित्त की एकाग्रतारूप समाधि में रमण करता हो मोक्ष को प्राप्त करता है।[3] गत काल में उसी मार्ग का अनुसरण किया और भविष्य में अनन्त आत्माएँ करेंगी।

---

१. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ॥
गीता ४।७।८

२. ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्तार: परमं पदम्।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भवं तीर्थनिकारत: ॥
(बौद्धग्रन्थ)

३. नाण-किरियाहिं मोक्खो।
(विशेषावश्यक भाष्य गाथा ३)

जिन्होंने कर्मों का समूल क्षय किया है। जन्म-मरण की एक चिरपरम्परा का अन्त किया है; उन शुद्धात्माओं के लिए पुनः संसार में आने का प्रश्न खड़ा ही नहीं होता है। जिस प्रकार बीज समूल जल जाने पर पुनः अंकुरित नहीं होता है; उसी प्रकार कर्मरूपी बीज पूरी तरह से विनष्ट हो जाने पर भवरूपी अंकुर पैदा नहीं होते हैं।[१]

सेनापति के पलायन होने पर सारी सेना मैदान छोड़ कर भाग जाती है, उसी प्रकार मोहरूपी सेनापति के भ्रष्ट होने पर सर्वकर्मरूपी सेना निर्जरित हो जाती है।[२]

ऐसे महादुरुह निर्वाण तक पहुँचना, प्रत्येक साधक के वश की बात नहीं है। चूँकि साधनाकाल में साधक के समक्ष विविध विघ्नबाधाएँ उभर आती हैं। साधनामार्ग से स्खलित करना ही उनका कार्य है। इसलिए जीवन में दृढ़ता का प्रमुख स्थान माना है। दृढ़ता के सद्भाव में साधक सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक् चारित्र सम्यक्त्वरूप इस मोक्षमार्ग की आराधना में उत्तीर्ण है।

जिसमें ज्ञान और क्रिया का सुन्दरतम संगम हुआ है। ज्ञान और क्रिया दोनों निर्वाण के दो मंगलद्वार माने हैं।[3]

योगवाशिष्ठ उपनिषद् में लिखा है—मुक्ति-महल के चार द्वारपाल हैं—यथा—शांति (२) सद्विचार (३) संतोष और [४]साधुसंगति।[४]

इस प्रकार भारत के महर्षियों ने निर्वाण से सम्बन्धित अत्युत्तम विश्लेषण प्रस्तुत कर सचमुच आत्मविज्ञान का श्लाघनीय परिचय प्रस्तुत किया है।

——(०)——

---

१. मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्त्तिताः।
शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसंगमः॥
योगवाशिष्ठ २।१६।५८

२. सव्वारंभ-परिग्गहणिक्खेव्व, सव्वभूतसमया य।
एक्कग्गमणस्स माहाणया य, अह एत्तिओ मोक्खो॥
(बृहत्कल्पभाष्य ४५८५)

३. यथा दग्धानां बीजानां, न जायन्ते पुनरंकुराः।
कर्मबीजेषु दग्धेषु, न जायन्ते भवांकुराः॥
(सूत्रकृतांगसूत्र)

४. सेनापतौ निहते यथा, सेना प्रणश्यति।
एवं कर्माणि नश्यन्ति मोहनीये क्षयं गते॥
(सूत्रकृतांग)
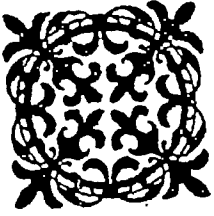
जैनदर्शन में निर्वाण :

एक विवेचन

—भंवरलाल पोल्याका, जैनदर्शनाचार्य, सा. शास्त्री, (जयपुर)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को भारत के प्रायः सभी धर्माचार्य एवं दार्शनिक मानते हैं, जिनमें संसारीपुरुष का चरम पुरुषार्थ, मोक्ष की प्राप्ति ही निहित है। केवल चार्वाकदर्शन ही इसका अपवाद है; क्योंकि वह आत्मा का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानता। ये सारे ही दर्शन सामान्यतः इस तथ्य से तो एक मत हैं कि मुक्तावस्था में आत्मा कर्मबन्धन का नाश कर स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तथा वहाँ लेशमात्र भी दुःख नहीं है; केवल सुख ही सुख है। फिर भी मोक्ष के स्वरूप के सम्बन्ध में उनका मतैक्य नहीं है।

अमरकोषकार के अनुसार मोक्षविषयक बुद्धि ज्ञान कहलाती है। मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, श्रेय, निःश्रेयस, अमृत, मोक्ष और अपवर्ग ये सब समानार्थी पर्यायवाची शब्द हैं (देखिये काण्ड १ वर्ग ५ श्लोक ५-६) अतः हमने भी इस रचना में इन शब्दों का प्रयोग किया है।

नैयायिक वैशेषिक बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार को आत्मा के ९ गुण मानते हैं। उनका कहना है कि धर्म और अधर्म से बुद्धि, बुद्धि से संस्कार, संस्कार से इच्छा और द्वेष, इच्छा और द्वेष से प्रयत्न तथा प्रयत्न से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। इन नौ आत्मगुणों का आत्यंतिक क्षय ही मोक्ष है। (देखिये प्रशस्तपादभाष्य की व्योमवती टीका)।

इस सम्बन्ध में जैनों का कहना है कि जैसे आग से ऊष्णता, जल से शीतलता कभी भी पृथक् नहीं किये जा सकते; वैसे ही ज्ञान और दर्शन जो कि आत्मा के गुण हैं कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। यदि गुणों का गुणी से पृथक् होना मान लिया जावे तो फिर जड़ और चेतन में कोई भेद नहीं रहेगा। यदि ऐसा कहा जाय कि ज्ञान का सम्बन्ध केवल आत्मा से ही होता है, जड़ से नहीं, तो ऐसा क्यों है? इस तर्क का

कोई उत्तर नहीं है। हाँ, यदि यह कहा जाय कि केवल इन्द्रियजन्य ज्ञान का उच्छेद होता है तो जैन ऐसा मानते ही हैं इससे उनका विरोध नहीं है।

नैयायिक ऐसा भी कहते हैं कि मोक्ष होने पर आत्मा की अवस्था ऐसी ही है जैसी कि स्वप्नरहित निद्रा की। लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि स्वप्न रहित निद्रा की अवस्था वैसी ही है जैसी कि जड़। तब तो जड़ को भी मोक्ष हो जाना चाहिए।

वेदान्ती भास्करीय निर्वाणावस्था में केवल आनन्द ही आनन्द मानते हैं। जैन इस बात को भी आंशिकरूपेण सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि मुक्तावस्था में भी आनन्द एकान्तरूप से नित्य न हो कर परिणामी भी है। ज्ञान द्रव्यदृष्टि से नित्य है किन्तु ज्ञेय परिणमनशील हैं। ज्ञान ज्ञेयों को दर्पण की भाँति जानता है। अतः जैसे ज्ञेय होते हैं वैसा ही प्रतिभास केवली के ज्ञान में पड़ता है। आचार्य समन्तभद्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्नकरण्ड श्रावकाचार के मंगलाचरण में कहा है— 'दर्पणतल इव सकला प्रतिफलन्ति पदार्थमालिका यत्र।' इसलिये जिस प्रकार दर्पण और उसमें प्रतिभासित होने वाले पदार्थ भिन्न हैं उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान गुण सर्वथा नित्य है और अविकारी है किन्तु ज्ञेयों के परिणमनशील होने के कारण वह ज्ञान भी कथंचित परिणमनशील है।

बौद्ध रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान-इन पांच स्कन्धों के निरोध के फलस्वरूप अभाव को मोक्ष मानते हैं। वे मुक्ति को इस प्रकार से शून्य मानते हैं। जिस प्रकार तेल की समाप्ति पर दीपक बुझ जाता है। किन्तु **माध्यमिक बौद्ध** निर्वाण को अवक्तव्य बताते हैं। वे कहते हैं कि निर्वाण न तो परिसमाप्ति है और न अभाव है। निर्वाण का स्वरूप कैसा है, कहा नहीं जा सकता। चूँकि निर्वाण शून्यरूप है, अतः आत्मा के कहीं जाने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। जैन कहते हैं आत्मा सत् है, अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है। सत् का कभी अभाव होता नहीं। आत्मा शरीर से भिन्न शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, किन्तु कर्मों के कारण वह संसारी हो रहा है। कर्मबन्धन के हटते ही आत्मा शुद्ध-स्वरूप को प्राप्त कर ऊर्द्ध्व गमन स्वभावी होने से ऊपर की ओर गति करता है और लोकाकाश के अग्रभाग में जा कर ठहर जाता है। क्योंकि आगे धर्मद्रव्य, जो कि जीव की गति में कारण है, नहीं है।

ब्रह्माद्वैतवादी 'आत्मैकत्वज्ञानात्परमात्मनि लयः सम्पद्यते इति एव मोक्षः' ऐसा मानते हैं। जैन प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं और अपनी अवगाहना शक्ति के कारण अनन्तानन्त आत्माएँ एक ही स्थान में रह सकती हैं।

सांख्य प्रकृति और पुरुष में भेदविज्ञान होने पर शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित होने को मोक्ष कहते हैं। 'तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (योग सूत्र १।३)।

प्रकृति से अभिप्राय जड़ और पुरुष से अभिप्राय आत्मा से है। मोक्ष का यह स्वरूप जैनों के अत्यधिक निकट होने पर भी आपत्तिजन्य बात इसमें यह है कि सांख्य प्रकृति को केवल कर्ता और आत्मा (पुरुष) को केवल भोक्ता मानते हैं। जब पुरुष प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है तो सुख आदि गुण भी नष्ट हो जाते हैं। केवल पुरुष (आत्मा) की ही सत्ता शेष रहती है। मुक्ति में सुखादि की सत्ता नहीं है, क्योंकि ये सब प्रकृति के भाव हैं। **प्रभाकर** भी मुक्तावस्था में सम्पूर्ण धर्मों का नाश तथा केवल स्वाभाविक आत्मा का अस्तित्व मानता है। **कुमारिल** दुःखमुक्ति को मुक्ति मानता है। करे कोई और भरे कोई ऐसा ठीक नहीं है। आत्मा जैनों के मत में व्यवहार नय से पुद्गल कर्मों का, अशुद्ध निश्चयनय से रागद्वेषादि का तथा शुद्ध निश्चयनय से ज्ञान-दर्शन आदि शुद्ध भावों का कर्ता है। इस प्रकार आत्मा एक अपेक्षा से कर्ता एवं एक अपेक्षा से अकर्ता है। जो कर्ता होगा वही भोक्ता भी होगा। गुणों का अभाव पदार्थ में सम्भव ही नहीं है। अग्नि से उष्णत्व कभी पृथक् नहीं हो सकता। उष्णत्व के अभाव में अग्नि का सद्भाव दिखाई नहीं देता।

सुप्रसिद्ध जैन सूत्रकार श्रीमदुमास्वाति ने अपने मोक्षशास्त्र अपर नाम तत्वार्थ-सूत्र नामक ग्रन्थ के दसवें अध्याय में पहले के नौ अध्यायों में जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा तत्वों का वर्णन करने के पश्चात् मोक्षतत्व का वर्णन किया है। आत्मा अनादिकाल से कर्मों के सम्बन्ध के कारण परतन्त्र है, अतः दुःखी है। कर्मों की संख्या आठ है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञान गुण एवं दर्शनावरण दर्शन गुण को ढकता है। मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित करता है और अन्तराय कर्म से इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। ये चार कर्म जीव के चार स्वाभाविक गुण ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य को ढकते हैं। अतः घाती कर्म कहलाते हैं। शेष चार कर्म अघाती हैं; क्योंकि उनसे आत्मा के गुणों का घात नहीं होता। आयु-कर्म का कार्य है—आत्मा को निश्चित समय तक एक शरीर में रोके रखना। नाम-कर्म के कारण अच्छे और बुरे शरीर की रचना होती है। गोत्रकर्म के कारण उच्च या नीच कुल की प्राप्ति होती है। वेदनीयकर्म साता और असाता का अनुभव कराता है।

आत्मा जब शुद्धि की ओर बढ़ता है तो संयोगकेवली नामक तेरहवें गुण-स्थान में पहुँचता है। इससे पूर्व वह बारहवें क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान में मोह को नष्ट कर चुकता है। इसके पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मो को अन्तर्मुहूर्त में एक साथ नष्ट कर केवली बन जाता है और आत्मा के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य नामक गुण प्रकट हो जाते हैं। ये ही अरिहन्त, जिन, जीवन्मुक्त या केवली कहलाते हैं। इनके दो भेद हैं—
१. सामान्य केवली, २. तीर्थङ्कर।

तीर्थङ्कर जन्मना मति, श्रुत एवं अवधि (इन तीन) ज्ञानों के धारी होते हैं। इनके कई प्रकार के अतिशयों का वर्णन जैनशास्त्रों में है। ये एक कालचक्र में २४ ही होते हैं। विदेहक्षेत्रों की बात इससे भिन्न है। वहाँ २० तीर्थङ्कर प्रतिसमय रहते हैं। ये तीर्थङ्कर इसलिये कहलाते हैं कि अपने उपदेशद्वारा ये संसार के जीवों को भवसागर से पार उतरने का रास्ता बताते हैं। इनकी उपदेशसभा में, जो कि समवशरण कहलाती है, सभी प्राणी पशु-पक्षी तक भी विना किसी प्रकार के भय और भेदभाव के उपस्थित होते हैं एवं अपनी-अपनी भाषा में उसे समझते हैं। भगवान् महावीर इस कड़ी के अन्तिम तीर्थङ्कर थे। आद्य नमस्कारमंत्र में 'णमो अरिहंताणं' कह कर सर्वप्रथम अरिहंतों को नमस्कार किया जाता है, क्योंकि वे श्रुत की रचना कर अपने उपदेश द्वारा जीवों को मुक्ति का मार्ग बता असीम उपकार करते हैं। इनकी तुलना सांख्यों और वेदान्तियों के जीवन्मुक्त, बौद्धों के उपाधिशेष निर्वाण, और माध्यमिकों के अप्रतिष्ठित निर्वाण से की जा सकती है। हितोपदेशी होने से वे ही आप्त कहलाते हैं।

थोड़ी आयु शेष रहने पर शेष चार अघातिया कर्मों का भी क्षय हो जाने पर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाता है, तब बन्ध का कोई कारण शेष न रहने से आत्मा मुक्त हो जाती है। उस समय आठों कर्मों के क्षय हो जाने से आत्मा में ये आठ गुण प्रकट हो जाते हैं—१. अनन्तज्ञान, २. अनन्तदर्शन, ३. अनन्तवीर्य, ४. इन्द्रियसुख का अभाव, ५. अनन्तसुख, ६. जन्ममरण का अभाव, ७. अवगाहन-शक्ति अथवा अमूर्तत्व, ८. ऊँचनीचकुल का अभाव। अपने अन्तिम शरीराकार यह मुक्त आत्मा अपने ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अग्रभाग में जा ठहरती है, क्योंकि इससे आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है। मुक्तावस्था में कर्मों का नाश नहीं होता, अपितु आत्मा कर्मबन्धन से पृथक् हो जाती है। कर्मों से पृथक् होने के पश्चात् भी आत्मा पूर्वसंस्कार के वश गति करती है। जिस प्रकार कुम्हार का चक्र उस को घुमाने वाले डंडे के हट जाने पर भी कुछ समय तक गति करता रहता है, कीचड़ से सना तुम्बा कीचड़ के हट जाने पर ऊपर ही आता है, एरण्ड का बीज बीजकोशबंध से छूटने पर ऊपर ही जाता है तथा पवन आदि का कोई कारण न हो तब भी अग्निशिखा ऊपर ही जाती है उसी प्रकार कर्ममल से रहित, कर्मबन्धन से मुक्त, रागद्वेष और मोह अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के अभाव के कारण यह आत्मा ऊपर ही की ओर जाती है। यह सिद्धावस्था ही जीव का चरम पुरुषार्थ निर्वाण है।
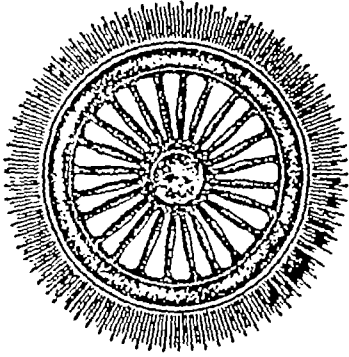
विभिन्न दर्शनों में निर्वाण : सिद्धांत और व्याख्या

—प्रो० श्रीरंजनसूरिदेव

व्याख्याता, प्राकृत-शोधसंस्थान, वैशाली

निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, निवृ'ति, कैवल्य आदि शब्द सम्प्रदाय-भेद से न्यूनाधिक अर्थान्तरवाची होने के वावजूद पर्यायवाची हैं, जिनका मूल अर्थ शान्ति या दुःख-निवृत्ति है। चार्वाक के अतिरिक्त प्रायः समस्त भारतीय दर्शनों में अविद्या या अज्ञान समूल नाश को 'मोक्ष' कहा गया है।

सांख्यदर्शन के मतानुसार, मोक्ष का साधन ज्ञान है और अविद्या या अज्ञान का विनाश ही मोक्ष है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन त्रिविध दुःखों की प्राप्ति अविद्या है। अविद्या का विनाश विवेकख्याति से होता है। उक्त त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक हानि को मोक्ष कहते हैं। दुःख की आत्यन्तिक हानि का एकमात्र उपाय विवेकख्याति, यानी विवेक (ज्ञान) से अविवेक (अज्ञान) का विनाश है। 'सांख्यकारिका' में दुःखों का आत्यन्तिक निवृत्ति को ही 'कैवल्य' कहा गया है। कैवल्य की प्राप्ति तत्वज्ञान होने पर ही सम्भव है। कैवल्य-प्राप्ति के वाद सभी संशय दूर हो जाते हैं और हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

'तत्त्वसमास' में मोक्ष को तीन प्रकार का माना गया है : प्राकृतिक, वैकारिक और दाक्षिणिक। प्राकृतिक वन्धनों से मुक्ति को प्राकृतिक मुक्ति कहा जाता है। प्रकृति के विकार इन्द्रिय, मन आदि के शासन से मुक्ति वैकारिक मुक्ति है और कर्मकाण्ड के अस्थायी फल से विरति को दाक्षिणिक मुक्ति कहा गया है। यों, सांख्यवादियों की दृष्टि से मुक्ति मुख्यतः दो प्रकार की होती है : जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति में संस्कार शेष रहते हैं और विदेहमुक्ति में संस्कार पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। विवेकख्याति से ही जीवन्मुक्ति होती है। इसमें पूर्वजन्म के संस्कार के शेष रहने से संशय की सत्ता तो वनी रहती है, किन्तु कैवल्य के अनुभव से किसी प्रकार की वाधा नहीं होती। जिस प्रकार कुम्हार डंडे से चाक को घुमाता है और डंडा हटा लेने पर भी वह चाक संस्कारवश घूमता रहता है उसी प्रकार पुरुष भी तत्वज्ञान हो जाने के वावजूद पूर्व-संस्कारों के शेष रहने से कुछ दिनों तक शरीर धारण किये रहता है। किन्तु, विदेहमुक्ति में संस्कारों का सर्वथा ध्वंस हो जाता है।

शरीरपात के बाद दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाने पर विदेहमुक्ति होती है। सांख्यों का शरीरपात के बाद सर्वथा मुक्ति का सिद्धान्त चार्वाकों के उक्त देहत्याग-रूप मोक्ष से बहुशः साम्य रखता है। साथ ही, जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का प्रसंग जैनों के निर्वाण-सिद्धान्त से भी मेल खाता है।

सांख्य० के सदृश पातजल योगदर्शन में भी 'मोक्ष' के लिए 'कैवल्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्योंकि सांख्य-योग एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। योग-दर्शन के अनुसार, 'कैवल्य' का अर्थ है—केवल उसी का होना। अर्थात्, एकाकित्व का ही नाम कैवल्य है। स्पष्ट यह कि केवल अपने रूप में हो जाना तथा किसी के साथ उसका सम्बन्ध न होना 'कैवल्य' है। 'कैवल्य' की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने कहा है कि प्रकृति के कार्य महत् आदि के विलय होने से तथा पुरुष के साथ प्रकृति का आत्यन्तिक वियोग होने से कैवल्य (एकाकित्व) सिद्ध होता है। इस प्रकार, समस्त औपाधिक स्वरूप को छोड़ कर अपने मूलरूप में स्थित हो जाना ही पुरुष का कैवल्य है। जैनदर्शन में कैवल्य (निर्वाण या मोक्ष) का मूल कारण सम्यग्ज्ञान माना गया है।

न्याय-वैशेषिक-दर्शन के आचार्यों ने दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष स्वीकार करते हुए भी शरीर-विच्छेद को मोक्ष नहीं माना है। उनके मत से तत्त्व-ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। श्रीधराचार्य ने इस सन्दर्भ में तर्क करते हुए कहा है कि तत्त्वज्ञान के लिए श्रद्धा अनिवार्य है। बिना श्रद्धा के जिज्ञासा नहीं होती और बिना जिज्ञासा के तत्त्वज्ञान नहीं होता है। इसलिए, तत्त्वज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। *अतः तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का प्रमुख साधन है।* *न्याय-वैशेषिक* के मत में अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम; प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के अनुष्ठान से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति मानी गई है। अष्टांग योग द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है और आत्म-साक्षात्कार ही मोक्ष प्राप्ति का कारण बनता है ('आत्मसाक्षात्कारो मोक्षहेतुः')।

मीमांसादर्शन के अनुसार, आत्मा का अपने से भिन्न, यानी विजातीय वस्तुओं से सम्बन्ध होना 'बन्ध' है। मीमांसा के तीन बन्धन इस प्रकार हैं : भोगायतन शरीर; भोगसाधन इन्द्रियाँ और भोगविषय समस्त जागतिक पदार्थ। आत्मा अनादिकाल से ही इन तीन बन्धनों में पड़ी रहती है एवं अनेक प्रकार के कष्टों का अनुभव करती रहती है। इसी बन्धन के कारण ही वह सुख-दुःख आदि विषयों का उपभोग करती है। इसे ही भव-बन्धन कहा जाता है। भव-बन्धन के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। फलतः, वह सांसारिक बन्धनों से उद्विग्न होकर उनसे मुक्ति चाहता है। इसीलिए, उक्त त्रिविध बन्धनों से छुटकारा पा लेना ही मोक्ष है। 'शास्त्रदीपिका' में कहा गया है : 'त्रिविधस्यापि बन्धनस्यात्यन्तिको विलयो मोक्षः।'

जैन दर्शन की तरह मीमांसादर्शन भी कर्म को ही बन्धन का कारण मानता है। बन्धन कार्य है और कर्म कारण है। कारण का नाश होने पर कार्य स्वतः नष्ट हो जाता है। मीमांसक लोग बन्धन-रूप कर्म के दो प्रकार मानते हैं : काम्य और निषिद्ध। काम्य कर्मों से पुण्य और निषिद्ध कर्मों से पाप उत्पन्न होता है। ये दोनों ही कर्मबन्ध के कारण हैं। इनका नाश हो जाने पर कार्य-रूप बन्ध स्वतः नष्ट हो जाता है। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति चाहने वाले को पाप-पुण्य के कार्यों से ऊपर उठना आवश्यक है। इसके लिये केवल वेद-विहित कर्म करना अनिवार्य है। वेदोक्त कर्मों के आचरण से शरीर का नाश होने पर पुनः नये शरीर में आत्मा का प्रवेश नहीं होता। आत्मा मुक्त हो कर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाती है।

वेदान्त-दर्शन में जीव और ब्रह्म के तादात्म्य को 'मुक्ति' कहा गया है। चित्सुखाचार्य के अनुसार, परमानन्द का साक्षात्कार ही मोक्ष है। पद्मपादाचार्य मिथ्याज्ञान के अभाव को मोक्ष कहते हैं। सांख्यों तथा जैनों की तरह वेदान्तियों ने भी जीवन्मुक्ति तथा विदेह-मुक्ति के रूप में मुक्ति के दो प्रकार माने हैं। किन्तु वे इनकी व्याख्या अपनी पद्धति से करते हैं। उनका कहना है कि 'तत्त्वमसि' वाक्य के द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाने से जब परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, तब अज्ञान और उसके कार्य का नाश हो जाने पर संचित संशय, विपर्यय आदि कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्मवेत्ता जीवित रहते हुए ही समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ पुरुष को 'जीवन्मुक्त' कहते हैं। जीवन्मुक्त पुरुष का जब शरीरपात हो जाता है, तब वह 'विदेहमुक्त' की संज्ञा प्राप्त करता है। विदेहमुक्त को ही 'परममुक्त' कहते हैं। विदेहमुक्ति या परम-मुक्ति होने पर पुरुष की जन्म-मरण-रूप सांसारिक बन्धनों से, आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है।

बौद्ध-दर्शन में भी दुःखनिरोध को ही निर्वाण कहा गया है। समस्त दुःखों के कारणों का विनाश ही निर्वाण या मोक्ष है। बौद्ध-दर्शन में भी निर्वाण के सन्दर्भ में 'दुःखनिरोध' की व्याख्या 'दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति' की गई है। व्युत्पत्ति के आधार पर, निर्वाण, शब्द निर् उपसर्गपूर्वक 'वा' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय का योग होने पर बनता है, जिसका अर्थ है बुझना। किन्तु, बौद्ध-दर्शन में 'निर्वाण' का 'बुझना' अर्थ अभिप्रेत नहीं है। यदि 'निर्वाण' शब्द का 'बुझना' अर्थ स्वीकार किया जायगा, तो आत्मा का बुझना या शान्त होना अर्थ गृहीत होगा। बौद्धमत में आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है, तो फिर उसका बुझना' अर्थ कैसे होगा ? अतएव, 'निर्वाण' पद का अर्थ दुःखों का आत्यन्तिक विनाश ही ग्रहण करना उपयुक्त होगा। डा० राधाकृष्णन् ने 'निर्वाण' का अर्थ 'बुझना' किया है और उसका तात्पर्य 'नष्ट होना' बताया है। इस प्रकार दुःखों का बुझना या दुःखों का नाश होना ही निर्वाण है।

बौद्धमत के अनुसार, निर्वाण या मोक्ष जीवनकाल में भी प्राप्त किया जा सकता है, जिसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्तावस्था में व्यक्ति, राग-द्वेषादि दुर्गुणों

पर विजय प्राप्त कर अपने कर्म-बन्धन का विनाश करने में समर्थ हो जाते हैं। जीवन्-मुक्त दशा में कर्मासक्ति न रहने के कारण कर्मफल-रूप पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती। जैसे बीज के दग्ध हो जाने पर उससे अंकुर नहीं निकलते। कर्मासक्ति के अभाव का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि निर्वाण प्राप्त कर लेने पर 'अर्हत्' निष्क्रिय हो जाते हैं। वे कर्म करते रहते हैं, किन्तु कर्म के बन्धन में नहीं बंधते। यहाँ भगवद्गीता में 'मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' वाक्य से स्पष्टतया साम्य परिलक्षित होता है। महात्मा बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी परिभ्रमण करके धर्मप्रचार करते रहे। इस प्रकार, बौद्धमत में भी मुक्त पुरुष दो प्रकार के होते हैं : एक जीवन्मुक्त, जिसमें वे जीवन धारण किये रहते हैं। दूसरे वे, जिनका सांसारिक जीवन समाप्त हो जाता है और जो षडायतन शरीर का परित्याग कर देते हैं।

भारतीय दर्शन-परम्परा में जैन-दर्शन अपना प्रमुख और पांक्तेय स्थान रखता है। जैनदर्शन और धर्म दोनों परस्पर पुंखानुपुंखरूप से अनुस्यूत हैं। जैनदर्शन की नास्तिकदर्शन में परिगणना अवास्तविक है। पाणिनि के अनुसार, यदि हम नास्तिक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ (नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिकः) लेते हैं; तो इस दशा में केवल चार्वाक-दर्शन ही नास्तिक-दर्शन कहलायेगा। जैन-दर्शन तो परलोक की सत्ता स्वीकारता है और पुनर्जन्म को भी मानता है। यदि नास्तिक शब्द का अर्थ निरीश्वरवादी लिया जाय, तो जैनदर्शन के सन्दर्भ में यह भी उपयुक्त नहीं होगा; क्योंकि जैनदर्शन सीधे ईश्वर के नाम से न सही, किन्तु 'जिन' या 'अर्हत्' के नाम से ईश्वर को तो मानता ही है। जैन धर्म का मत है कि ईश्वर अवतार नहीं लेता, बल्कि मानव ही देवत्व या ईश्वरत्व को प्राप्त करता है, फिर 'जिन' या अर्हत्' हो जाता हैं। 'जिन' या 'अर्हत्' ही ईश्वर है, वही सर्वज्ञ है। यदि नास्तिक शब्द का अर्थ वेदनिन्दक लेते हैं, तो जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में भी यह भी सटीक नहीं बैठता है; क्योंकि जैन भी प्रकारान्तर से वेद को स्वीकार करता ही है। उसके लिए जैनागम ही वेद हैं। अमरकोशकार के अनुसार, मिथ्यादृष्टि ही नास्तिकता है ('मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता')। इसलिए जो कोई भी मिथ्या दृष्टि रखने वाले हैं, वे ही नास्तिकों में परिगणनीय हैं। इस प्रकार, मिथ्यादृष्टि रखने वाले चार्वाकों को ही केवल नास्तिकशिरोमणि कहा जा सकता है।

जैनदर्शन में मिथ्यादृष्टि को ही बन्ध का कारण माना गया है। बन्ध का संवर, यानी अवरोध कर लेने पर नये कर्मों का अभाव होने से और निर्जरा, यानी तप आदि के द्वारा संचित कर्मों के विनाश-रूपी कारण के सम्बन्ध से पूर्वकर्मों के क्षय होने से समस्त कर्मों की जो आत्यन्तिक मुक्ति होती है, उसे ही मोक्ष या निर्वाण कहते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' के रचयिता उमास्वाति (उमास्वामी) के अनुसार, बन्ध के कारणों का अभाव तथा निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों से मुक्त होना ही मोक्ष है (बन्ध-हेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षणं मोक्षः)। यह मोक्ष भी दो प्रकार का होता है : भावमोक्ष और द्रव्यमोक्षः। कुन्दकुन्दाचार्य के मत से ज्ञानावरणीय, दर्शना-

वरणीय, मोहनीय और अन्तराय—इन चार घातीय कर्मों का क्षय भावमोक्ष है और आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय—इन चार अघातीय कर्मों का क्षय द्रव्यमोक्ष है। मोक्ष या निर्वाण से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य आदि उत्पन्न होते हैं। इसके बाद जीव ईश्वर और सर्वज्ञ हो जाता है।

साधना की चौदह भूमिकाओं में तेरहवीं और चौदहवीं भूमिका में पहुँचने पर जीव को मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति होती है। साधना की इस भूमिका या स्तर को 'गुणस्थान' कहा जाता है। बारहवीं भूमिका में साधक का मोहक्षय हो जाता है और तेरहवीं भूमिका में ज्ञानादि-निरोधक अन्य कर्म भी क्षीण हो जाते हैं, फलतः आत्मा में विशुद्ध ज्ञानज्योति का आविर्भाव होता है। आत्मा की इसी अवस्था का नाम सयोगिकेवली है। विशुद्ध ज्ञानी होते हुए भी शारीरिक प्रवृत्तियों से युक्त रहने वाला सयोगिकेवली कहलाता है। सयोगिकेवली की अवस्था ही सदेहमुक्ति है।

सयोगिकेवली जब अपने देह से मुक्ति पाने के लिए विशुद्ध ध्यान का आश्रय ले कर मानसिक, वाचिक, एवं कायिक व्यापारों को रोक देता है, तब वह आध्यात्मिक विकास की अवस्था में पहुँच जाता है। चौदहवीं भूमिका को प्राप्त आत्मा की इसी अवस्था का नाम अयोगिकेवली है। इसमें आत्मा उत्कृष्टतम शुक्लध्यान द्वारा सुमेरु की भाँति निष्कम्प स्थिति को प्राप्त कर अन्त में देहत्यागपूर्वक सिद्धावस्था को प्राप्त होती है। इसी सिद्धावस्था का नाम परमात्मपद, स्वरूपसिद्धि, मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण है। यह आत्मा की सर्वांगीण पूर्णता, पूर्ण कृतकृत्यता एवं परम पुरुषार्थ-सिद्धि है। इस स्थिति में आत्मा की आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति हो जाती है और उसे अनन्त अव्याबाध तथा अलौकिक सुख प्राप्त होता है। आत्मा की इसी उत्कृष्ट निर्वाण-स्थिति को तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में पूज्यपादाचार्य ने इस प्रकार परिभाषित किया है—निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलंकस्याऽशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्य-स्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्षः।' अयोगकेवली की यही स्थिति विदेहमुक्ति कहलाती है।

इस प्रकार, मोक्ष या निर्वाण जीवन की वह अवस्था है, जहाँ सब बन्धन उन्मूलित हो जाते हैं, दैहिक, वाचिक और मानसिक सब दोष निःशेष हो जाते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौतिक और धार्मिक सब बन्धनों से मुक्ति या पूर्ण स्वतन्त्रता ही निर्वाण है। समग्र वासनाओं और क्लेशों की निरपेक्ष शान्ति ही निर्वाण का परम लक्ष्य है। निर्वाण के सन्दर्भ में भगवान् महावीर ने दो प्रकार की परिज्ञा का निर्देश किया है : 'ज्ञ' और 'प्रत्याख्यान'—जानना और छोड़ना। ज्ञेय सब पदार्थ हैं। आत्मा के साथ जिसका विजातीय सम्बन्ध है, वह हेय है। उपादेय से भिन्न हेय कुछ भी नहीं है। आत्मा का अपना रूप सत्, चित् और आनन्दघन है। जब तक हेय नहीं छूटता, तब तक वह छोड़ने-लेने की उलझन में फँसी रहती है। हेय छूटते ही आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। महावीर की दृष्टि में निर्वाण का यही स्वरूप है।

—:०:—

है, जिसके परिणामस्वरूप जीव में नये कर्मपुद्गलों का प्रवेश रुक जाता है। किन्तु जीव में पहले से प्रविष्ट कर्मपुद्गलों का क्षय संवर के इन साधनों के द्वारा संभव नहीं होता है। उसके लिए निर्जरा का आश्रय लेना पड़ता है। निर्जरा के द्वारा जीव में प्रविष्ट कर्मपुद्गलों का क्षय[१३] कर दिया जाता है। यह निर्जरा दो प्रकार की होती है—१—अविपाक निर्जरा, तथा २—सविपाक निर्जरा। तपस्या के द्वारा फलोत्पत्ति के पूर्व कर्मपुद्गलों का क्षय कर देना अविपाक निर्जरा है। फलोत्पत्ति के पश्चात् स्वाभाविक रूप से कर्मपुद्गलों का जीव से बाहर निकल जाना सविपाक निर्जरा है।

जीव से कर्मपुद्गलों के पूर्णरूप से पृथक् हो जाने के बाद जीव शरीर का त्याग कर देता है। बन्धन के कारणभूत कर्मपुद्गलों का सम्बन्ध समाप्त हो जाने के उपरान्त जीव शरीर में नहीं रह सकता है। अतएव जैनमत में 'जीवन्मुक्ति' का सिद्धान्त मान्य नहीं है। जैनसिद्धान्त के अनुसार जीव का स्वभाव ऊपर की ओर उठना है। जैसे दीपशिखा स्वभावतः ऊपर की ओर उठती है और जैसे शुष्क काष्ठ स्वभावतः जल के ऊपर तैरता है, वैसे ही जीव स्वभावतः ऊपर की ओर उठता है।[१४] किन्तु जैसे मिट्टी के भार से काष्ठ जल के भीतर चला जाता है और मिट्टी के गलते ही वह पुनः ऊपर की ओर आ जाता है, वैसे ही कर्मपुद्गल के संयोग से जीव अधोगति को प्राप्त होता है और उनके बाहर निकल जाने पर वह ऊपर की ओर उठने लगता है। लोकाकाश तथा अलोकाकाश के बीच में एक नितान्त पवित्र स्थान है, यही सिद्धजीवों की निवास भूमि[१५] है। इस स्थान को 'सिद्धशिला' कहते हैं। यहाँ पहुँच कर जीव 'अनन्तचतुष्टय' को प्राप्त कर परमशान्ति का अनुभव करता है। साधकों के लिये यही चरममुक्तावस्था है।

किन्तु सिद्धावस्था तक पहुँचने के पूर्व साधक को अपने आध्यात्मिक विकास के मार्ग में क्रमशः आगे की ओर बढ़ना पड़ता है। मोक्षमार्ग के इन सोपानों को जैन आचारशास्त्र में 'गुणस्थान' कहा गया है। गुणस्थानों की संख्या चौदह है। इनमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से ले कर अन्तिम अवस्था तक क्रमशः आगे की ओर बढ़ना पड़ता है। इन गुणस्थानों की कल्पना मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१—मिथ्यादृष्टि, २—ग्रन्थिभेद, ३—मिश्र, ४—अविरतसम्यग् दृष्टि, ५—देशरविति, ६—प्रमत्त, ७—अप्रमत्त, ८—अपूर्व कर्म, ९—अनिवृत्ति, १०—सूक्ष्मसाम्पराय, ११—उपशान्तमोह, १२—क्षीणकषाय, १३—सयोगकेवली तथा १४—अयोगकेवली। अकलंकदेव ने राजवार्तिक में (९. १.

---

१३. तपसा निर्जरा च। त० सू० ९/३
१४. यथा····प्रदीपशिखा स्वभावादुत्पतति तथा मुक्तात्माऽपि ऊर्ध्वगतिस्वाभाव्यादूर्ध्वमेवारोहति। राजवार्तिक, १०/७/६ अकलंक भट्ट
१५. तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्। त० सू० १०/५

१२ से ६. १. ३० तक) इन गुणस्थानों का विस्तार से वर्णन किया है।[१६] मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में जीव विवेकहीनता की दशा में होता है। ग्रन्थिभेद गुणस्थान में उसमें सत्-असत् के विवेक का उदय हो जाता है। मिश्र गुणस्थान में निश्चय और अनिश्चय की मिश्रित दशा रहती है। अविरतसम्यक्दृष्टि गुणस्थान में सम्यक् श्रद्धा की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में जीव को सम्यक्दृष्टि की तो प्राप्ति हो जाती है, किन्तु उसे इस दृष्टि को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति प्राप्त नहीं होती। श्रद्धा की प्राप्ति हो जाने पर भी वह अपने आपको दुष्कर्मों से बचाने में असमर्थ रहता है। देशविरतिगुणस्थान में दुष्कर्मों का आंशिक रूप से त्याग हो पाता है। प्रमत्तगुणस्थान में आत्मसंयम की प्राप्ति तो हो जाती है, किन्तु इसमें प्रमाद की दशा बनी रहती हैं। अप्रमत्तगुण स्थान में यह प्रमाद भी दूर हो जाता है। अपूर्व-कर्णगुणस्थान में जीव को पवित्रता की प्राप्ति होती है, साथ ही उसे अननुभूतपूर्व आनन्द की उपलब्धि होती है। अनिवृत्तिगुणस्थान में जीव निरन्तर विशुद्ध चिन्तन एवं ध्यान में निमग्न रहता है। सूक्ष्मसाम्पराय की अवस्था में सुख, दुःख चिन्ता, भय आदि दूर हो जाते हैं। किन्तु तृष्णा सूक्ष्मरूप में बनी रहती है। उपशान्तमोह की अवस्था में मोह एवं तृष्णा उपशान्त हो जाते हैं। क्षीणमोहगुणस्थान में जीव की सभी घातीय कर्मों से मुक्ति हो जाती है, किन्तु अभी अघातीय कर्म बने रहते हैं। इस अवस्था में वह सर्वज्ञ हो जाता है। अगली अवस्था सयोगकेवली गुण-स्थान की होती है। वह अवस्था अन्य दर्शनों में प्रतिपादित जीवन्मुक्तावस्था के समान है। इसमें बन्धन के पाँच कारणों—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग में से पहले चार का नाश हो जाता है, केवल अन्तिम कारण योग (कायिक, वाचिक तथा तथा मानसिक प्रवृत्ति) बना रहता है। साधना की अन्तिम अवस्था अयोगकेवली गुण-स्थान में जीव के सभी कर्मों का विनाश हो जाता है। यह अवस्था कुछ क्षणों तक रहती है। इसके अनन्तर ही साधक सिद्धावस्था एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

जैन-आचार्यों ने मोक्ष को दो प्रकार का माना है—१—भावमोक्ष तथा २—द्रव्यमोक्ष। जीव जब घातीय कर्मों से मुक्त हो जाता है, तब उसे भावमोक्ष की प्राप्ति होती है।[१७] किन्तु जब उसके अघातीय कर्मों का भी अन्त हो जाता है, तब उसे द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय तथा अन्तराय इन चार प्रकार के कर्मों को घातीय कर्म माना गया है। इसके विपरीत वेदनीय, आयुष्क, नाम तथा गोत्र कर्मों को अघातीय कर्म कहा गया है। कुन्दकुन्दाचार्य के मत से घातीय कर्मों का नाश होने पर जीव को भावमोक्ष की प्राप्ति होती है तथा अघातीय कर्मों का भी नाश हो जाने पर उसे

---

१६. राजवार्तिक, ६/१/१२ से लेकर ६/१/३० तक।

१७. An Epitome of Jainism P. 617. Nahar & Ghoshal.

द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु आचार्य नेमिचन्द्र कुन्दकुन्दाचार्य के उपर्युक्त मत से सहमत नहीं है। उनके मत से कर्मों के नाश के लिए किये गये मानसिक प्रयत्नों के द्वारा भावमोक्ष की तथा कर्मों के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति होती है। आ० नेमिचन्द्र के मत से भावमोक्ष की अवस्था कुछ क्षणों तक ही रहती है, उसके बाद द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु इसके विपरीत कुन्दकुन्दाचार्य के मन में भावमोक्ष की अवस्था वर्षों तक बनी रह सकती है। उमास्वामी के मत में जिस साधक के घातीय कर्मों का नाश हो जाता है, उसे सर्वज्ञता की प्राप्ति हो जाती है। वह केवलज्ञानसंपन्न होने के कारण 'केवली' कहलाता है। जब उससे अघातीय कर्मों का भी नाश हो जाता है तब वह मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उमास्वामी का 'केवली' तथा कुन्दकुन्दाचार्य का 'भावमोक्ष' वेदान्त के जीवन्मुक्ति के सिद्धान्त के बहुत समीप आ जाता है। जैनदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् डा० नथमल टांटिया का कथन है कि घातीय कर्मों की तुलना वेदान्तसम्मत माया की आवरण शक्ति से तथा अघातीय कर्मों की तुलना उसकी विशेष शक्ति से की जा सकती है।[१८] घातीय कर्मों के नाश से आवरण भंग हो जाता है, जिससे साधक को सर्वज्ञता की प्राप्ति हो जाती है। अघातीय कर्मों के नाश से उसकी चंचलता एवं विक्षिप्तता का भी अन्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह निर्वाण या मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जैनदर्शन में, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन तीनों को सम्मिलित रूप में मोक्ष का साधन माना गया है। उमास्वामी के अनुसार यथार्थज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना सम्यग्दर्शन[१९] कहलाता है। कुछ व्यक्तियों में तो यह स्वभावतः विद्यमान रहता है और कुछ इसे विद्योपार्जन एवं अभ्यास के द्वारा प्राप्त करते हैं। किन्तु श्रद्धा का उदय तभी होता है, जब अश्रद्धा को उत्पन्न करने वाले कर्म का संवर या निर्जर होता है। सम्यग्दर्शन का अर्थ अन्धविश्वास नहीं है। श्रद्धा पूर्णतया युक्ति एवं तर्क पर प्रतिष्ठित होती है। अध्यात्ममार्ग के पथिक के लिए सबसे अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण साधन सम्यक् श्रद्धा है। सम्यग्ज्ञान दूसरा साधन है। शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना सम्यक् ज्ञान है।[२०] जीव और अजीव के मूल तत्त्वों का विशेषज्ञान प्राप्त होना सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान असंदिग्ध तथा दोषरहित होता है। सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की चरितार्थता सम्यक्चारित्र में ही सम्पन्न होती है। अहितकार्यों का वर्जन और हितकार्यों का आचरण ही

---

१८. Studies in Jaina Philosophy P. XX, Nathmal Tatia.

१९. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। त० सू० १/२

२०. द्रव्यसंग्रह, श्लोक ४२, आ० नेमिचन्द्र

सम्यक्चारित्र है।[21] सम्यक्चारित्र के द्वारा जीव अपने कर्मों से मुक्त हो सकता है, क्योंकि कर्मों के कारण ही बन्धन होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों को सम्मिलित रूप में मोक्ष का साधन माना गया है। जैन-दर्शन में अद्वैत वेदान्त के उस मत का खण्डन किया गया है, जिसके अनुसार एकमात्र ज्ञान को ही मोक्ष का साधन स्वीकार किया जाता है। इस सम्बन्ध में विद्यानन्द का यह कथन है कि जो एकमात्र ज्ञान को मोक्ष का साधन मानते हैं उनके मत से ज्ञानी पुरुष के शरीरधारण की व्याख्या नहीं की जा सकती। यदि ज्ञान ही मोक्ष का साधन हो तो ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर ज्ञानी पुरुष शरीरधारण कैसे किये रह सकता है? क्या यह संभव है कि प्रदीप जलता रहे और अन्धकार भी बना रहे? यदि यह कहा जाय कि प्रारब्ध कर्मों के फलोपभोग के लिए ज्ञानी पुरुष को शरीर धारण करना पड़ता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर भी ऐसे कुछ दोष रह जाते हैं, जिनका निवारण सम्यक्चारित्र के द्वारा ही संभव है। इस प्रकार सम्यग् ज्ञान के साथ सम्यक्चारित्र को भी मोक्ष का साधन मानना पड़ता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को निर्वाण का साधन स्वीकार करते हुए महावीरदृष्टि में मन की तीनों शक्तियों—ज्ञान, इच्छा तथ क्रिया की उपयोगिता पर बल दिया गया है। केवल ज्ञान, केवल कर्म अथवा केवल भक्ति हमें निर्वाण तक नहीं पहुँचा सकती। निर्वाण की प्राप्ति के लिए, जो मानवजीवन का चरम लक्ष्य है, मन के तीनों घटकतत्त्वों के बीच पूर्ण सामञ्जस्य एवं तालमेल आवश्यक है।' इस प्रकार भ० महावीर की दृष्टि से ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्ति-मार्ग में अविरोध एवं समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास उपलब्ध होता है। इस दृष्टि से यह मत शंकराचार्य के उस मत से जो एकमात्र ज्ञान को ही मोक्ष का साधन स्वीकार करता है और मीमांसकों के उस मत से जो एकमात्र कर्म को ही स्वर्गप्राप्ति एवं निःश्रेयस का साधन मानता है, तथा वैष्णवाचार्यों के उस मत से जो एकमात्र भक्ति एवं प्रपत्ति को ही मुक्ति का साधन स्वीकार करता है, कहीं अधिक वैज्ञानिक एवं युक्तयुक्त प्रतीत होता है।

---

२१. द्रव्यसंग्रह, श्लोक ४५, आ० नेमिचन्द्र

२२. History of Indian Philosophy, By J.N. Sinha, Vol II, P. 277.

निर्वाण का महत्त्वपूर्ण अंग—

ध्यानसाधना : वर्तमान संदर्भ में

डा० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०

☐

आज का युग विज्ञान और तकनीकी प्रगति का युग है। अतः यह प्रश्न सहज उठ सकता है कि ऐसे द्रुतजीवी युग में ध्यान-साधना की क्या सार्थकता और उपयोगिता हो सकती है ? ध्यान का बोध हमें कहीं प्रगति की दौड़ में रोक तो नहीं लेगा, हमारी क्रियाशीलता को कुंठित तो नहीं कर देगा, हमारे संस्कारों को जड़ और विचारों को स्थिति-शील तो नहीं बना देगा ? ये खतरे ऊपर से ठीक लग सकते हैं पर ये सतही हैं। ध्यानसाधना निष्क्रियता या जड़ता का बोध नहीं है। यह समता, क्षमता और अखण्ड शक्ति व शांति का विधायक तत्व है।

एक समय था, जब मुमुक्षुजनों के लिए ध्यान का लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति था। वे मुक्ति के लिए ध्यान-साधना में तल्लीन रहते थे। आध्यात्मिक दृष्टि से यह लक्ष्य अब भी बना हुआ है। पर वैज्ञानिक प्रगति और मानसिक बोध के जटिल विकास ने ध्यान-साधना की सामाजिक और व्यावहारिक उपयोगिता भी स्पष्ट प्रकट कर दी है। यही कारण है कि आज विदेशों में ध्यान भौतिक वैभव से सम्पन्न लोगों का आकर्षण केन्द्र बनता चला जा रहा है।

ध्यान और चेतना

ध्यान का सम्बन्ध चेतना से है। मनोवैज्ञानिकों ने चेतना के मुख्यतः तीन प्रकार बतलाये हैं—जानना अर्थात् ज्ञान (Cognition), अनुभव करना अर्थात् अनुभूति (Feeling) और चेष्टा करना अर्थात् मानसिक सक्रियता (Conation)। ये तीनों मन के विकास में परस्पर सम्बद्ध-संलग्न हैं। ध्यान एक प्रकार की मानसिक चेष्टा है। यह मन को किसी वस्तु या संवेदना पर केन्द्रित करने में सक्रिय रहती है। पर भ० महावीर जैसे आध्यात्मिक पुरुषों ने ध्यान को इससे आगे चित्तवृत्ति के निरोध रूप में स्वीकार कर आत्म-स्वरूप में रमण करने की प्रक्रिया बतलाया है।

ध्यान के प्रकार

ध्यान के कई अंग-उपांग है। जैनधर्म में इसका कई प्रकार से वर्गीकरण मिलता है। ध्यान के मुख्य चार भाग हैं—(१) आर्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान।

आर्त का अर्थ है पीड़ा, दुख, चीत्कार। इस ध्यान में चित्तवृत्ति बाह्यविषयों की ओर उन्मुख रहती है। कभी अप्रिय वस्तु के मिलने पर और कभी प्रिय वस्तु के अलग होने पर आकुलता बनी रहती है। रौद्र का अर्थ है—भयंकर, डरावना। इस ध्यान में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयादि के सेवन की पूर्ति में प्रवृत्ति रहती है और इनके बाधक तत्वों के प्रति द्वेष के कारण कठोरक्रूरभावना बनी रहती है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों त्याज्य हैं। आर्तध्यान व्यक्ति को राग में बांधता है और रौद्रध्यान द्वेष में। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये दोनों ध्यान अनैच्छिक ध्यान की श्रेणी में आते हैं। इनके ध्यान में इच्छाशक्ति को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ये मानव की पशु-प्रवृत्ति को संतृप्ति देने में ही लीन रहते हैं। इनका साधना की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से इन्हें 'ध्यान' नहीं कहा जा सकता। ये अशुभध्यान हैं।

धर्मध्यान और शुक्लध्यान शुभध्यान हैं। इनका चिन्तन राग-द्वेष को कम करने के लिए किया जाता है। ये आभ्यन्तर तप माने गये हैं। धर्मध्यान के चार प्रकार माने गये हैं—(१) आज्ञाविचय-आगमसूत्रों में प्रतिपादित तत्वों को ध्येय बना कर उनका चिन्तन करना। (२) अपायविचय-रागद्वेषादि दोषों के क्षयहेतु ध्येय बनाकर उनमें लीन होना। (३) विपाकविचय-कर्म के विविध फलों को ध्येय बना कर उनकी निर्जरा के लिए चिन्तन करना। (४) संस्थानविचय-द्रव्य की विविध पर्यायों को ध्येय बना कर उनमें एकाग्र होना। धर्मध्यान के आगे की अवस्था शुक्लध्यान है। यह शुद्ध ध्यान माना गया है। इसके भी चार प्रकार हैं—(१) पृथकत्ववितर्क-सविचार-इसमें अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण रूप से—एक पदार्थ का विचार कर उसे छोड़ दूसरे पदार्थ में विचार जाना—विचार किया जाता है। (२) एकत्व वितर्कअविचार-इसमें एक ही पदार्थ पर अटल रह कर अभेदबुद्धि द्वारा विचार किया जाता है। इसमें संक्रमण का अभाव रहता है। (३) सूक्ष्मक्रिया—अप्रतिपाति—इसमें मन-वचन-काया सम्बन्धी स्थूल योगों को सूक्ष्म योग द्वारा रोक दिया जाता है और मात्र श्वास-उच्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया ही रह जाती है। इसका पतन नहीं होता। संयोगी केवली को यह ध्यान होता है। (४) समुच्छिन्नक्रिया-अनिवृत्ति जब शरीर की श्वास-प्रश्वास क्रिया भी बन्द हो जाती है और आत्म-प्रदेश सर्वथा निष्कम्प हो जाते हैं। इसमें स्थूल या सूक्ष्य किसी प्रकार की मानसिक, वाचिक, कायिक क्रिया नहीं रहती। यही मुक्तदशा की स्थिति है।

शुक्लध्यान के आरम्भिक दो ध्यानों में श्रुतज्ञान का अवलम्ब लेना होता है; जबकि अन्तिम दो में श्रुतज्ञान का आलम्बन भी नहीं रहता। अतः ये दोनों ध्यान अनालम्बन कहलाते हैं।

बौद्धधर्म में ध्यान पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। वहाँ ध्यान (झान) का एक अर्थ चित्तवृत्तियों को जलाना भी किया है। यहाँ ध्यान के दो मुख्य प्रकार

माने गये हैं—(१) आरम्भण उपनिज्झान-जो चित्त के विषयभूत वस्तु (आलम्वन) पर चिन्तन करे। (२) लक्खण उपनिज्झान—जो ध्येय वस्तु के लक्षणों पर चिन्तन करे।

आरंभण उपनिज्झान ध्यान के आठ भेद हैं—

१—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

२—विचार, प्रीति, सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

३—प्रीति, सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

४—सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

ये चारों ध्यान रूपावचर ध्यान कहलाते हैं। इनमें वृत्तियों को क्रमशः संक्षिप्त कर चित को एकाग्र किया जाता है।

५—आकाशान्त्यायतन

६—विज्ञानानन्त्यायतन

७—अकिंचनायतन

८—नैवसंज्ञानासंज्ञायतन

ये चार अरूपावचर ध्यान कहे जाते हैं। इन आयतनों को जव साधक शनैः शनैः पार कर लेता है, तब उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। अन्तिम अवस्था को 'भवाग्र' कहा गया है।

लक्खण उपनिज्झान के भी तीन भेद किये हैं—विपस्सना, मग्ग और फल। विपस्सना में प्रज्ञा, ज्ञान और दर्शन होता है। इसमें विषय-वस्तु के लक्षणों पर विचार किया जाता है। मग्ग में उसका कार्य पूर्ण होता है और फल में उसकी निष्पत्ति होती है। इसी को लोकोत्तर ध्यान कहते हैं जो निर्वाण का विशिष्टरूप माना गया है।

ध्यान तत्व का प्रसार :

भगवान् महावीर और बुद्ध दोनों बड़े ध्यान-योगी थे। ध्यानावस्था में ही दोनों मुक्त हुए। महावीर की ध्यान-परम्परा मध्य-युग में आ कर मन्द पड़ गई। इसके कई सामाजिक और प्राकृतिक कारण रहे हैं। जैनश्रमणों के नगर-सम्पर्क ने भी उसमें वाधा डाली। पर बुद्ध की ध्यान-परम्परा ने ध्यान-सम्प्रदाय का एक स्वतन्त्र रूप ही धारण कर लिया और चीन-जापान में उसका व्यापक प्रचार हुआ। वह परम्परा आज भी वहाँ जीवित है।

बुद्ध के बाद हुए २८ वें धर्माचार्य[1] बोधिधर्म[2] ने सन् ५२० या ५२६ ई० में चीन जा कर वहाँ ध्यान-सम्प्रदाय (चान्-त्सुंग) स्थापना की। बोधिधर्म की मृत्यु के बाद भी चीन में उनकी परम्परा चलती रही। उनके उत्तराधिकारी इस प्रकार हुए—

१. हुई के (सन् ४०६-५९३ ई०)
२. सेंग-त्सन् (मृत्यु सन् ६०६ ई०)
३. ताओ-हसिन (सन् ५८०-६५१ ई०)
४. हुंग-जेन (सन् ६०१-६७४ ई०)
५. हुइ-नेंग् (सन् ६३८-७१३ ई०)

हुई-नेंग् ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया, पर यह परम्परा वहाँ चलती रही। इसका चरम विकास तग् (सन् ६१६-९०५ ई०), सुंग् (सन् ९६०-१२७८ ई०) और यूआन् (सन् १२०६-१३१४ ई०) राजवंशों के शासन-काल में हुआ। १३-१४ वीं शती के बाद महायान बौद्ध-धर्म का एक अन्य सम्प्रदाय, जो जो अमिताभ की भी भक्ति और उनके नाम-जप पर जोर देता है, अधिक प्रभावशाली हो गया। इसका नाम जोदो-शूया सुखावती सम्प्रदाय है। सम्प्रति चीन-जापान में यह सर्वाधिक प्रभावशील है।

चीन से यह तत्व जापान गया। येइ-साइ (सन् ११४१-१२१५ ई०) नामक जापानी भिक्षु ने चीन में जा कर इसका अध्ययन किया और फिर जापान में इसका प्रचार किया। जापान में इस तत्व की तीन प्रधान शाखाएँ हैं—

(१) रिजई शाखा—इसके मूल प्रवर्तक चीनी महात्मा रिजई थे। इस शाखा में येइ-साइ, दाए-ओ (सन् १२३५-१३०८ ई०), देतो (सन् १२८२-१३३६),

---

१—बौद्धधर्म के पहले जो २७ धर्माचार्य हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं—
(१) महाकाश्यप, (२) आनन्द, (३) शाणवास, (४) उपगुप्त, (५) घृतक, (६) मिच्छक, (७) वसुमित्र, (८) बुद्धनन्दी, (९) बुद्धमित्र, (१०) भिक्षु पार्श्व, (११) पुण्ययशस्, (१२) अश्वघोष, (१३) भिक्षु कपिमाल, (१४) नागार्जुन, (१५) काणदेव, (१६) आर्य राहुलत, (१७) संघनंदी, (१८) संघयशस्, (१९) कुमारत, (२०) जयत, (२१) वसुवन्धु, (२२) मनुर, (२३) हक्लेनयशस्, (२४) भिक्षु सिंह, (२५) वाशसित् (२६) पुण्यमित्र, (२७) प्रज्ञातर
—ध्यान-सम्प्रदाय : डा० भरतसिंह उपाध्याय, पृ० १३-१४।

२—ये दक्षिण भारत के कांचीपुरम् के क्षत्रिय (एक अन्य परम्परा के अनुसार ब्राह्मण) राजा सुगन्ध के तृतीय पुत्र थे। इन्होंने अपने गुरू प्रज्ञातर से चालीस....वर्ष तक बौद्धधर्म की शिक्षा प्राप्त की। गुरु की मृत्यु के बाद ये उनके आदेश का अनुसरण कर चीन गये। वही पृ० १।

ववंजन (सन् १२७७-१३६० ई०), हेकुमिन (सन् १६८५-१७६८ ई०) जैसे विचारक ध्यानयोगी हुए ।

(२) **सोतो शाखा**—इसकी स्थापना येइ-साइ के वाद उनके शिष्य दो-गेन्- (सन् १२००-१२५३ ई०) ने की । इसका सम्बन्ध चीनी महात्मा हुइ-नैंग के शिष्य चिग्-यूआन् और उनके सदस्य शिद्-ताउ (सन् ७००-७९० ई०) से रहा है ।

(३) **ओबाकु शाखा**—इसकी स्थापना इंजेन (सन् १५९२-१६७३ ई०) ने की । मूलरूप में इसके प्रवर्तक चीनी महात्मा हुआङ्-पो थे, जिनका समय ९वीं शती है और जो हुइ-नैंग् की शिष्यपरम्परा की तीसरी पीढ़ी में थे ।

उपर्युक्त विवरण से सूचित होता है कि ध्यानतत्व का वीज भारत से चीन-जापान गया, वहाँ वह अंकुरित ही नहीं हुआ, पल्लवित, पुष्पित और फलित भी हुआ । वहाँ के जन-जीवन में (विशेषत: जापान में) यह तत्व घुलमिल गया है । वह केवल अध्यात्म तक सीमित नहीं रहा, उसने पूरे जीवन-प्रवाह में अपना ओज और तेज विखेरा है । येइ-साइ की एक पुस्तक कोजन-गोकोकु-रोन (ध्यान के प्रचार के रूप में राष्ट्र की सुरक्षा) ने ध्यान को वीरत्व और राष्ट्र-सुरक्षा से भी जोड़ दिया है । जापानी सिपाहियों में ध्यानाभ्यास का व्यापक प्रचार है। मनोवल, अनुशासन, दायित्वबोध और अन्तर्निरीक्षण के लिए वहाँ यह आवश्यक माना जाता है। जापान ने स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन कर जो प्रगति की है, उसके मूल में ध्यान की यह ऊर्जा अवश्य प्रवाहित है ।

मुझे लगता है, पश्चिमी राष्ट्रों में जो ध्यान का आकर्षण वढ़ा है, वह उसी ध्यानतत्व का प्रसार है, चाहे यह प्रेरणा उन्हें सीधी भारत से मिली हो, चाहे चीन-जापान के माध्यम से ।

यह इतिहास का कटु सत्य है कि वर्तमान भारतीय जन-मानस अपनी परम्परागत निधि को गौरव के साथ आत्मसात् नहीं कर पा रहा है । जव पश्चिमी राष्ट्र का मानस उसे अपना लेता है या उसकी महत्ता-उपयोगिता प्रकट कर देता है, तव कहीं जा कर हम उसे अपनाने का प्रयत्न करते हैं और अपने ही घर में 'प्रवास' से लगते हैं । 'ध्यान' भी इस संदर्भ से कटा हुआ नहीं है । पश्चिम में जव 'हरे राम हरे कृष्ण' की धुन लगी, तव कहीं जा कर हमें अपने 'ध्यान-योग, की गरिमा और आवश्यकता का वोध हुआ ।

ध्यान के प्रति पश्चिमी आकर्षण :

यह वोध स्वागतयोग्य है, क्योंकि इसके द्वारा हमें विलुप्त होती हुई ध्यान-साधना की अन्त:सलिला को फिर से पुनर्जीवित करने का अवसर मिला है । पर जिस माध्यम से यह 'वोध' हुआ है, उसमें कई खतरे भी हैं । पहला खतरा तो यह कि हम ध्यान की मूल चेतना को भूल कर कहीं इसे फैशन के रूप में ही ग्रहण

कर लें। दूसरा यह कि हम इसे केवल जड़मनोविज्ञान के धरातल पर ही स्वीकार करके न रह जांय और इस वस्तु या विचार के साथ मन के समायोजन (Adjustment) तक ही सीमित न कर दें और तीसरा यह कि हम वैज्ञानिक चिन्ता-धारा को छोड़ कर कहीं मध्ययुगीन संस्कारों में फिर न बंध जांय।

ऊपर जिन खतरों की चर्चा की गई है, वे निराधार नहीं हैं। उनके पीछे आधार है। 'ध्यान' के सम्बन्ध में जो पश्चिम की हवा चली है, वह भोग के अतिरेक की प्रतिक्रिया की परिणति है, आत्मा के स्वभाव में रमण करने की सहज वृत्ति नहीं। भौतिक ऐश्वर्य में डूबे पश्चिम के मानव के लिए वह भौतिक यन्त्रणाओं से मुक्ति का साधन है, इन्द्रियभोग के अतिरेक की थकान की विश्रान्ति है, मानसिक तनाव और दैनन्दिनी जीवन की आपाधापी से बचने का रास्ता है। ध्यान के प्रति उसकी ललक भौतिक पदार्थों की चरम संतृप्ति (संत्रास) का परिणाम है, उसका लक्ष्य प्राच्य मनीषियों की तरह मुक्ति या निर्वाणप्राप्ति नहीं है। उसे वह शारीरिक और मानसिक स्तर तक ही समझ पा रहा है। उसके आगे आत्मिक स्तर तक अभी उसकी पहुँच नहीं है। पर हमारे यहाँ ध्यानयोग की साधना भोग की प्रतिक्रिया का फल नहीं है। उसका उद्देश्य महान् है। वह चरस, गांजा का विकल्प नहीं है और न है कोरा मन का वैलासिक उपकरण। उसके द्वारा आत्मा के स्वभाव को पहचान कर उसमें रमण करने की चाह जागृत की जाती है, चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है—इस प्रकार कि वह जड़ नहीं बने; वरन् सूक्ष्म होती हुई शून्य हो जाय। रिक्तता नहीं; वरन् अनन्त शक्ति और आनन्द से भर जाय।

ध्यान : शक्ति और शांति का स्रोत :

आज की प्रमुख समस्या शान्ति की खोज की है। शान्ति आत्मा का स्वभाव है। वह स्थिरता और एकाग्रता का परिणाम है। आज का मानस अस्थिर और चंचल है। शान्ति की प्राप्ति के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है। पर मन आज चलायमान है। 'योगशास्त्र' में मन की चार दशाओं का वर्णन किया गया है—

(१) विक्षिप्तदशा—आज विश्व का अधिकांश मन इसी दशा को प्राप्त है। मस्तिष्क के अत्यधिक विकास ने मन को विक्षिप्त बना दिया है। वह लक्ष्यहीन, दिशाहीन हो कर इधर-उधर भटक रहा है। वह अत्यन्त चंचल, अस्थिर और निर्बल बन गया है। उसे इन्द्रिय-भोगों ने संतृप्ति के बदले दिया है—संत्रास, तनाव और तृष्णा का अलंघ्य क्षेत्र। कुंठा और अत्यधिक निराशा तथा थकान के कारण वह विक्षिप्त हो कर निरुद्देश्य भटकता है।

(२) यातायात-दशा—विज्ञान ने यातायात और संचार के साधन इतने तीव्र और द्रुतगामी बना दिये हैं कि इस दशा वाला मन गति तो कर लेता है पर

दिशा नहीं जानता। वह कभी भीतर जाता है, कभी वाहर आता है। किसी एक विषय पर टिक कर रह नहीं सकता। वह अवसरवादी और दलवदलू बन गया है। वह किसी के प्रति वफादार नहीं, प्रतिबद्ध नहीं, आत्मीय नहीं। वह अपने ही लोगों के बीच पराया है। आज के युग की यह सबसे वड़ी दर्दनाक मानव-पीड़ा है। इस अस्थिरता और चंचलता के कारण वह सबको नकारता चलता है, किसी का अपना बन कर रह नहीं पाता।

(३) **शिलष्ट-दशा**—इस दशा का मन कहीं स्थिर होने का प्रयत्न तो करता है, पर उसकी स्थिरता प्रायः क्षणिक ही होती है। दूसरे, वह अपवित्र, अशुभ व वाह्यविषयों में ही स्थिर रहने का प्रयत्न करता है। शास्त्रीय दृष्टि से आर्त एवं रौद्र-ध्यान की स्थिति वाला है यह मन। जहाँ शुभ भावना और पवित्रता नहीं, वहाँ शान्ति कैसे टिक सकती है। पश्चिम का वैभवसम्पन्न मानस इसी दशा का है।

(४) **सुलीन-दशा**—इस दशा का मन शुभ एवं पवित्र भावनाओं में स्थिर रह कर एकाग्रता व दृढ़ता प्राप्त करता है।

ध्यान-साधना का मुख्य लक्ष्य मन को सुलीन दशा में अवस्थित करना है।

आज का मानस चंचल, अस्थिर, अनुशासन-हीन और उच्छृंखल है। ध्यान उसमें स्थिरता और सन्तुलन की स्थिति पैदा करता है। आज का व्यक्ति गैरजिम्मेदार बनता जा रहा है। उसमें कार्य के प्रति लगन, तल्लीनता और उत्साह नहीं है। वह अपने ही कर्तव्यों के प्रति उदासीन बन गया है। इसका मुख्य कारण है—चित्त की एकाग्रता का अभाव। इस एकाग्रता को लाने के लिए ध्यानाभ्यास आवश्यक है। पर यह ध्यानाभ्यास आसन और प्राणायाम तक ही सीमित न रह जाय। इसे यम-नियमादि से तेजस्वी वनाना होगा। चित्तवृत्ति को पवित्र और संयमित करना होगा। मन की गति को मोड़ना होगा। उसे स्वस्थता-प्रदान करना होगा।

ध्यान की भूमिका तैयार करने के लिए उचित आहार-विहार, सत्संग और स्थान की अनुकूलता पर भी दृष्टि केन्द्रित करनी होगी; अन्यथा, ध्यान की ओट में हम छले जायेंगे और हमारा प्रयत्न आत्म-प्रवंचना बन कर रह जायेगा।

आज की प्रमुख समस्या तीव्र और गतिशील जीवन में भी स्थिर और दृढ़ रहने की है। ध्यानसाधना इसके लिए भूमि तैयार करती है। वह मानसिक सक्रियता को जड़ नहीं बनाती, चेतना के विभिन्न स्तरों पर उसे विकसित करती चलती है। आन्तरिक ऊर्जा को जागरूक बनाती चलती है। उससे आत्मशक्ति की वेटरी चार्ज होती रहती है, वह कमजोर नहीं होती। यह ध्याता पर निर्भर है कि वह उस शक्ति का उपयोग किस दिशा में करता है। यहाँ के मनीषी उसका उपयोग आत्म-स्वरूप को पहचानने में करते रहे; जब आत्म-शक्ति विकसित और जागृत हो जाती है, हम उसी तुलना में विघ्नों पर विजय प्राप्त करते चलते हैं। प्रारम्भ में हम

भौतिक और बाहरी विघ्नों पर विजय प्राप्त करते हैं; पर जब शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है, तब हम आन्तरिक्त शत्रुओं एवं वासनाओं पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। आज आन्तरिक खतरे अधिक सूक्ष्म और बलशाली बन गये हैं, उन्हें वशवर्ती बनाने के लिए ध्यानाभ्यास आवश्यक है।

ध्यान और सामाजिकता का प्रश्न :

ध्यान-साधना आध्यात्मिक ऊर्जा का स्रोत तो है ही, सामाजिक शालीनता और विश्व-बन्धुत्व-भावना की वृद्धि में भी उससे सहायता मिल सकती है। यह जीवन से पलायन नहीं, वरन् जीवन को ईमानदार, सदाचारनिष्ठ, कलात्मक और अनुशासनबद्ध बनाये रखने का महत्वपूर्ण साधन है। यह एक ऐसी संगम-स्थली है, जहाँ विभिन्न धर्मों, जातियों और संस्कृतियों के लोग एक साथ मिल-बैठ कर परम सत्य से साक्षात्कार कर सकते हैं, अपने आपको पहचान सकते हैं, शर्त केवल यही है कि इसे भोगोन्मुख होने से रोका जाय।

अट्टरूद्दाणि वज्जिता झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए॥

उत्तराध्ययन सू० ३६ अ० ३०

आर्त और रौद्र ध्यान को छोड़ कर सुसमाहित साधक जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्याता है, ज्ञानीजन उसे ही ध्यानतप कहते हैं।

ओमं चित्तं समादाय झाणं समुपज्जइ।
धम्मे ठिओ अविमणे निव्वाणमभिगच्छइ॥

—दशाश्रुतस्कन्ध ५।१

चित्तवृत्ति निर्मल होने पर ही ध्यान की सही स्थिति प्राप्त होती है। जो बिना किसी विमनस्कता के निर्मल मन से धर्म (ध्यान) में स्थित है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

निर्वाण-साधना में बाधक : भौतिक उपलब्धियाँ

—मुनि नेमिचन्द्र

[निर्वाण आध्यात्मिक विकास की चरम उपलब्धि है। उस उपलब्धि के पथ पर बढ़ने वाले साधक के चरणों में भौतिक उपलब्धियाँ भी स्वतः लौटने लगती हैं। किन्तु निर्वाण का पथिक उन भौतिक उपलब्धियों, विभूतियों की मोहिनी में उलझता नहीं है, अगर उलझ गया तो बस·······यहाँ प्रस्तुत है, उन भौतिक उपलब्धियों की मोहिनी से बचे रहने की एवं विचारोत्तेजक चेतावनी प्रसिद्ध विचारक एवं लेखक मुनिश्री नेमिचन्द्रजी की लोहलेखनी द्वारा····]

—सम्पादक

भ० महावीर का यह सिद्धान्त था कि निर्वाण-साधना में बाधक विघ्नों, कष्टों, परिषहों और उपसर्गों के सह लेने पर अनेक लोग—देवता और मानव ही नहीं, प्रकृति भी अनुकूल हो जाती है, पृथ्वीकाय आदि के असंज्ञी जीव भी अनुकूल हो जाते हैं। मतलब यह कि कठोर साधना में उत्तीर्ण होने के बाद साधन को कई प्रकार की सिद्धियाँ, लब्धियाँ, विभूतियाँ, अतिशय या चमत्कार प्राप्त हो जाते हैं, देवताओं का आगमन, आकाश, में उड्डयन, वैभवसूचक छत्रचामरादि विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन साधक इन सबसे निर्लेप न रहे, इनके प्रवाह में बह जाए तो वह सारी साधना को मटियामेट कर देता है। साधना से निर्वाण प्राप्त करने या कर्मक्षय करने के बदले वह मोहमाया, प्रसिद्धि और आडम्बर में और अधिक फँसता जाता है, भक्तों की जमघट और सेवा करने वालों की होड़ उसके साधनामय जीवन को चौपट करते देर नहीं लगाते। अतः इनसे प्रतिक्षण सावधान रहना चाहिए, **चरे पयाइं परिसंकमाणो**—कदम फूँक-फूँक कर रखना चाहिए।

निर्वाणवादी भ० महावीर उपर्युक्त सिद्धान्त की कसौटी में खरे उतरते हैं। वे देवों और मानवों की सहायता से निरपेक्ष रहते थे; उन्हें कई प्रकार की लब्धियाँ

और सिद्धियाँ प्राप्त भी हुई, लेकिन कभी उनका प्रयोग उन्होंने अपने लिए खासतौर से दूसरों को दु:खी करने के लिए नहीं किया। वे चाहते तो अपने पर कष्टों का कहर बरसाने वालों को अपने तपोबल से भस्म कर सकते थे, इन्द्र आदि को आदेश दे कर या इशारा करके वे उन्हें उनके किये का बदला ले सकते थे। लेकिन इन सब को साधक के जीवन में सबसे अधिक बाधक या निर्वाण में विघ्नकारक समझ कर उन्होंने कभी इनका प्रयोग नहीं किया। केवल ज्ञान प्राप्त होने से पहले तक भी छद्मस्थ-अवस्था के साधनाकाल में भी महावीर ने इस बारे में जरा भी प्रमाद नहीं किया। वे भौतिक उपलब्धियों को कर्मक्षय करने में रुकावट डालने वाली समझते थे। सहज-भाव से जो कुछ अनुकूलता प्राप्त हो गई, उसे ही वे स्वीकार करते थे, परन्तु चला कर उसके लिए लालायित नहीं रहते थे।

इसी कारण उनकी निर्वाणसाधना निर्विघ्न, निर्दोष और निराबाध चलती रही। उनकी आत्मा कर्मों के भार से दिनानुदिन हल्की होती गई। निर्वाण की पूर्वोक्त परिभाषा के अनुसार उनकी आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विकारों से रहित होती चली गई। प्रसिद्धि का मोह, आडम्बरों और चमत्कार-प्रदर्शनों के द्वारा जनता को आकृष्ट करने की लालसा या वासना उनमें तनिक भी नहीं थी। अन्यथा, भगवान् चाहते तो कुछ चमत्कार बता कर अनार्यदेशवासी लोगों को अनायास ही अनुकूल बना सकते थे। चंडकौशिक सर्प को मंत्र द्वारा वश में कर सकते थे। परन्तु महावीर को यह कदापि अभीष्ट नहीं था। वे अपना महावीरत्व साधना में पुरुषार्थ करके निर्वाण प्राप्त करने में दिखाना चाहते थे, कर्मों से जूझ कर विजय प्राप्त करने में ही उन्हें वीरत्व प्रतीत होता था। यही कारण है कि महावीर जादू, टोने, मंत्र-तंत्र, आदि अन्धविश्वासों से स्वयं भी दूर रहे और जनता को भी इनके चक्कर में नहीं फँसाया। अपने अनुगामी साधु-साध्वियों को भी उन्होंने जादू-मंत्र आदि के प्रयोगों के लिए निषेध किया। उन्होंने कहा—

नक्खत्तं सुमिणं जोगं निमित्तं मंतभेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं॥

दशवैकालिक अ० ८ गा० ४८

साधक ग्रह, नक्षत्र, स्वप्न, योग, निमित्त (भविष्यवाणी), मंत्र, भैषज्य आदि बातें गृहस्थों को न बताए। क्योंकि इनसे प्राणियों की विराधना होने की संभावना है।
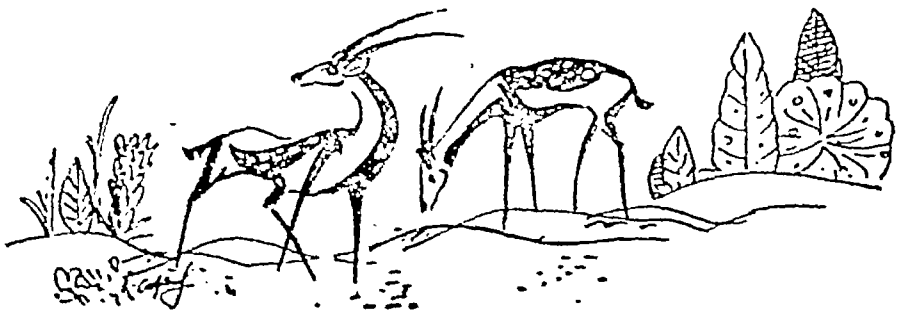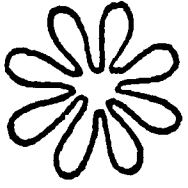
निर्वाणसाधना में कर्मक्षय की अनिवार्यता

—डा० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर

☐

लोक षड्द्रव्यों का समूह है। छह द्रव्यों में जीव और पुद्गल द्रव्य में वैभाविक शक्ति है, जिसके कारण वे कारणों से प्रभावित हो कर विकृत परिणमन करने लगते हैं। जीव में रागादिभाव होना उसका विकृत परिणमन है और पुद्गल में कर्मस्कन्धादि रूप परिणमन होना उसका विकृत परिणमन है। जीव का विकृत परिणमन पुद्गल कर्म की उदयावस्था के कारण होता है और पुद्गल का विकृत परिणमन जीव की रागादि अवस्था के कारण। जीव और कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल का सम्वन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जीव की चतुर्गतिरूप संसारी पर्याय शुद्ध जीव की पर्याय नहीं है, किन्तु जीव और पुद्गल के संयोग से निर्मित संयोगी पर्याय है। संयोगी पर्याय के कारण जीव की संसारी अशुद्ध पर्याय कहलाती है और सिद्ध-परमेष्ठी की पर्याय परद्रव्य से रहित होने के कारण शुद्ध पर्याय कही जाती है।

जब तक जीव और कर्म-नोकर्म रूप पुद्गल का सम्वन्ध रहता है, तव तक जीव की संसार-पर्याय रहती है और जब समस्त कर्मों से रहित जीव की अवस्था हो जाती है, तब सिद्ध-अवस्था प्रकट हो जाती है। इस सन्दर्भ में विचार करने की वात यह है कि जव जीव और कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र है स्वतन्त्र द्रव्य हैं, तव इनका संयोग कैसे हो गया? जव इनके संयोग के कारणों पर विचार करते हैं, तव आस्रव और बन्ध तत्व की ओर लक्ष्य जाता है। आत्मा अपनी योगशक्ति—मन वचन, काय के निमित्त से होने वाले परिष्पन्द के कारण कर्म-नोकर्म-पुद्गलों को ग्रहण करता है तथा मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय के कारण उन गृहीत पुद्गल-स्कन्धों को स्थिति और अनुभाग दे कर वन्ध-अवस्था को प्राप्त कराता है; यही आस्रव और बन्ध तत्व है। आस्रव और वन्ध का फल संसार है।

संसार-भ्रमण से छूट कर मुक्त-अवस्था प्राप्त करना जीव का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति तव तक नहीं हो सकती, जव तक आत्मा में आने वाले नूतन कर्मों के प्रवेश पर नियन्त्रण नहीं किया जाता। यह नियन्त्रण ही शास्त्रीय भाषा में संवर कहलाता है। संवर हो जाने पर भी जव तक सत्ता में स्थित कर्म-नोकर्म के प्रदेशों को आत्मा से पृथक् नहीं किया जाता, तव तक सकल कर्म से रहित मोक्षपर्याय का

प्रकट होना असंभव है। इसलिए तपश्चरणादिरूप पुरुषार्थ के द्वारा कर्मक्षय का पुरुषार्थ करना आवश्यक है। जीव का यह पुरुषार्थ क्रम-क्रम से ही पूर्ण होता है। कर्मों के इस क्रमिक पृथक्करण को निर्जरा कहते हैं। इस प्रकार संवर और निर्जरा के द्वारा जब आत्मप्रदेशों से समस्त कर्म-प्रदेश पृथक् हो जाते हैं, तब मोक्ष होता है। मोक्ष का अर्थ छूटना है, छूटना बन्धपूर्वक होता है अर्थात् पहले बन्ध-पर्याय होती है और उसके बाद मोक्षपर्याय। बन्ध अपने कारणों से होना है और मोक्ष अपने कारणों से। बन्ध के कारण मिथ्यादर्शनादि हैं और मोक्ष के कारण सम्यक्दर्शनादि हैं।

हे प्राणी ! तू बन्ध और मोक्ष के कारणों का सही-सही निर्णय कर मोक्ष-प्राप्ति की दिशा में चलने का पुरुषार्थ कर तो सही। अपने आपको अकर्मण्य मान कर पुरुषार्थहीन क्यों हो रहा है ? देख, विपरीतदिशा में होने वाला पुरुषार्थ तुझे इष्ट स्थान में नहीं पहुँचा सकेगा, यह ध्रुव सत्य है। इसलिये एक बार मार्ग का सही निर्धारण अवश्य कर ले, फिर चलना प्रारम्भ कर दे।

विपरीत अभिप्राय को दूर कर आत्मा को ज्ञायक-स्वभाव का परिज्ञान प्राप्त करना और उसी ज्ञायक स्वभाव में लीन हो जाना। यह अभेद रत्नत्रय ही मोक्ष का साक्षात् मार्ग है। इस अभेद-रत्नत्रय की साधना में जो साधक होता है, वह भेद रत्नत्रय भी उपचार से मोक्षमार्ग कहलाता है। अभेदरत्नत्रय स्वयं प्रकट होता है और भेदरत्नत्रय बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया जाता है। भेदरत्नत्रय की साधना से अभेद-रत्नत्रय की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसलिये जो कार्य तेरे बुद्धिगोचर है, उसे श्रद्धा के साथ कर। अवसर आने पर अभेदरत्नत्रय भी प्रकट हो जायगा और उसके माध्यम से तू कर्मबन्धन विमुक्त हो जायगा।

इस सन्दर्भ में कर्मस्वरूप, उसके भेद और उनसे छूटने की प्रक्रिया पर भी विचार कर लेना अपेक्षित है।

कर्मस्वरूप और उनके भेद :

पुद्गल द्रव्य की २३ वर्गणाओं में एक कार्मण वर्गणा है, जो लोक में सर्वत्र व्याप्त है और विस्रसोपचय के रूप में प्रत्येक आत्मा के साथ संलग्न हो रही है। आत्मा को रागादिभावों का निमित्त पा कर वे कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्मरूप परिणत हो जाते हैं। इन परमाणुओं की विविध जातियों में आठ जातियाँ प्रमुख हैं, जो जैनागम में १ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय के नाम से प्रख्यात हैं, इनके उत्तर भेद १४८ हैं। ये कर्मप्रकृतियाँ अपने नाम के अनुसार आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुणों को आवृत

करती हैं—प्रकट नहीं होने देती हैं।[1] इस कर्मरूप पुद्गलद्रव्य की ऐसी कोई अनिर्वचनीय शक्ति है, जो आत्मा के केवलज्ञानस्वभाव को भी आच्छादित कर देती है। यह कर्म का सम्बन्ध यद्यपि अनादिकाल से चला आ रहा है, तथापि दुरानुदूर भव्य को छोड़ अन्य भव्यों का समय आने पर छूट जाता है। अभव्य तथा दूरानुदूर भव्य का उपादान इस प्रकार का है कि उसे अनन्तकाल तक इसी अवस्था में रहना पड़ता है—चतुर्गति के चक्र में उसे निरन्तर घूमना पड़ता है।

भव्यजीव का संसारभ्रमण का काल जब अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष-रह जाता है, तब वह सम्यक्दर्शन प्राप्त करने के योग्य होता है। मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, मायानु, लोभ इन सात प्रकृतियों का उपशम कर वह औपशमिक सम्यगदर्शन प्राप्त करना है। इसके अनन्तर क्षायोपशमिक अथवा वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। कदाचित् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर मिथ्यात्व के प्रपंच से सदा के लिये वञ्चित हो जाता है। सम्यक्ज्ञान तो सम्यग्दर्शन का सहभावी है, परन्तु सम्यक्चारित्र, सम्यक्दर्शन के साथ होता भी है और नहीं भी होता। इतना अवश्य निश्चित है कि वह देर-सवेर सम्यक्चारित्र को अवश्य प्राप्त करना है।

सम्यग्दृष्टि जीव की यह श्रद्धा होती है कि राग-द्वेषादिक मेरे स्वभाव में नहीं हैं, अतः प्रारम्भिक गुणस्थानों में राजादिक के रहते हुए भी वह छद्‌मस्थ वीतराग के समान अनुभव में आता है। चार ध्यानों में शुक्लध्यान का महत्व सर्वोपरि है, क्योंकि कर्मबन्धनों को काटने वाला और कोई ध्यान नहीं है। शुक्लध्यान के पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत क्रियानिर्वति के नाम से चार भेद हैं। इनमें से पहला शुक्लध्यान मोहनीय कर्म के क्षय का आयोजन करता है। इसके प्रभाव से दशमगुणस्थान के अन्त तक मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियों का क्षय हो जाता है और उसके फलस्वरूप आत्मा छद्मस्थ वीतराग हो कर बारहवें गुणस्थान में पहुँचता है वहाँ द्वितीय शुक्लध्यान के प्रभाव से शेष तीन घातिया कर्मों तथा नामकर्म की तेरह प्रकृतियों का क्षय करता है। भुज्यमान आयु को छोड़ शेष तीन आयुकर्म सत्ता में ही नहीं रहते इसलिए उनका क्षय अयत्नसाध्य होता है। इस प्रकार ६३ प्रकृतियों का क्षय कर यह मानव सर्वज्ञ-वीतराग बनता है। केवलज्ञान के द्वारा संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है। इस समय यह तेरहवें गुणस्थान में रह कर दिव्यध्वनि के द्वारा संसार के असंख्य जीवों का कल्याण करता है। इस गुणस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक करोड़ वर्ष पूर्व है।

---

१. कापि अपुव्वा दीसइ पुग्गल दव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवलणाणसहावो जीवस्स विणासिदो जेण॥ कार्तिकेयानुप्रेक्षा

जब तेरहवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बाकी रहता है और मनोयोग, तथा वचनयोग नष्ट हो कर जब काययोग भी सूक्ष्मस्पन्दन को प्राप्त होता है, तब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम का तृतीय शुक्लध्यान प्रकट होता है और उसके द्वारा पूर्व समय से असंख्यातगुणी निर्जरा करता है। स्मरण रखने की बात है कि तेरहवें गुणस्थान में क्षय तो एक भी प्रकृति का नहीं होता है परन्तु निर्जरा सबसे अधिक होती है। इसके पश्चात् 'व्युपरतक्रियानिवर्ति' नामक शुक्लध्यान का चौथा भेद प्रकट होना है और उसके माध्यम से उपान्त्य समय में बहत्तर कर्म प्रकृतियों का और अन्त्य समय में शेष तेरह प्रकृतियों का क्षय करके यह जीव एक समय में ऋजुगति से जा कर त्रिलोकशिखर में स्थिर हो जाना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि **निर्वाणसाधना में कर्मक्षय की अनिवार्यता है।** सौ टंच का स्वर्ण तभी कहा जाता है, जब उसमें किट्टकालिमा का एक भी कण विद्यमान नहीं रहता। उसी प्रकार निर्वाण की साधना भी तभी होती है, जब आत्मा में कर्मकालिमा का एक भी कण नहीं रहता है। इस निर्वाणधाम में पहुँचा हुआ जीव, शाश्वत सुख का उपभोक्ता होता है, सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी वह वहाँ से विचलित नहीं होता।

अट्ठकम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवत्तए॥

मैं अनुक्रम से आठ कर्मों का वर्णन करूँगा, जिनसे बंधा हुआ यह जीव संसार में परिभ्रमण करता है।

तम्हा एएसिं कम्माणं अणुभागे वियाणिया।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जहा बुहे॥

इसलिए इन कर्मों के अनुभागों (रसों) को जान कर बुद्धिमान साधक इनका संवर (रोकने) और क्षय करने का प्रयत्न करे।

विगिंच कम्मणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए।
सरीरं पाढवं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं॥—उत्तरा०

कर्मबन्ध के कारणों को ढूँढ़ो, उनका छेदन करो, और फिर क्षमा आदि के द्वारा अक्षय यश का संचय करो। साधक पार्थिव शरीर को छोड़ कर, ऊर्ध्व गति (मोक्ष स्वर्ग) को प्राप्त करता है।
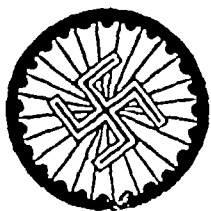
निर्वाणसाधना के लिए

महावीर का स्वतन्त्र चिन्तन

विद्वद्रत्न मुनि राम कृष्णजी म०

अन्तरिक्ष में स्वतन्त्रता से विचरण करने वाला सूर्य किसी दूसरे ग्रह से प्रकाश लेकर ज्योतिर्मय नहीं होता। उसका अपना स्वतन्त्र प्रकाश होता है। अखिल अन्तरिक्ष की भूमा में सूर्य ही एक ऐसा ग्रह है, जो अपने ही प्रकाश में अपनी परिक्रमा कर रहा है। इस विस्तीर्ण वसुधा पर महापुरुष ही एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपने ही प्रकाश में अपनी यात्रा करता है। मार्ग बना-बनाया नहीं मिलता। जो मार्ग बनाता है, वह महापुरुष है।

भारत का एक सत्पुत्र, कुण्डग्राम का एक राजकुमार भिक्षुक-जीवन में प्रवेश करता है। भिक्षुकजीवन साधना का मार्ग है। साधनाजीवन 'विश्लेषण की एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जहाँ आत्मा का पौरुष प्रदीप्त किया जाता है। महावीर के नाम से पुकारा जाने वाला यह राजकुमार पौरुष को प्रदीप्त करने के लिए निर्वाण-साधना के मार्ग पर अवतीर्ण होता है। वह आत्म-ज्योति के प्रादुर्भूत होने तक निश्चित संकल्प के साथ वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ जाता है। इस महन्‌ प्रक्रिया के लिए उसका चिन्तन पूर्ववर्ती धर्म-ग्रन्थों और 'धर्म-वीथियों से उन्मुक्त हो कर स्वतन्त्र था। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के विद्यमान होते हुए भी, राजकुमार भिक्षुक उसके पीछे नहीं चला। श्रुति और स्मृतियों को उसने अपना पथ-प्रदर्शक नहीं माना; क्योंकि प्रत्येक युग का वातावरण नया होता है। उसमें मार्ग-निर्माण के लिए अभिनव स्वानुभूति आवश्यक है। अतः महावीर का चिन्तन स्वतन्त्र होने से उनका पौरुष स्वतन्त्र था। इस भिक्षुक ने इस परम सत्य को सबके सामने प्रस्तुत किया। उसने अपने पीछे चलने के लिए जन-समूह से कभी आग्रह नहीं किया।

'चूँकि निर्वाण साधना के लिए महावीर धर्माचरण को अत्यन्त आवश्यक मानते थे। और धर्म वास्तव में मनुष्य में छिपे पशुत्व की परिशुद्धि के लिए ही है। धर्म की सर्व-प्रथम प्रक्रिया मानव-जीवन में पशुत्व के निराकरण में होती है। इसीलिए भगवान् महावीर ने अपने प्रवचन में जीवन के क्रमिक विकास में मनुष्यत्व की उपलब्धि को सबसे पहले स्वीकृत किया। पशुत्व के निराकरण के विना विशुद्ध मानवता की उपलब्धि सम्भव नहीं हो सकती। विशुद्ध मानवता के विना निर्वाण साधना का प्रारम्भ नहीं होता।

महावीर तव अभिनन्दन है।

श्री विपिन जारोली

□

महावीर तव अभिनन्दन हैं।
ज्ञातपुत्र, त्रिशलानन्दन, वीर जिनेश्वर वन्दन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

श्रमण संस्कृति के अधिनायक,
सत्य-अहिंसा के चिर गायक,
मुक्ति-मार्ग के अमर पथिक, तव कोटि-कोटि जिनका वन्दन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

चण्ड, माली उद्धारक नरवर,
शूद्र, नारी के तारक जिनवर,
मूक प्राणियों के चिररक्षक, जिनवाणी के जीवनधन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

आज बढ़ रहे एटम-अणुबम,
अंधकार शोषण का दुर्दम,
पिसती-कराहती मानवता, कर रही तुम्हारा आह्वान है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

:o:—:o:
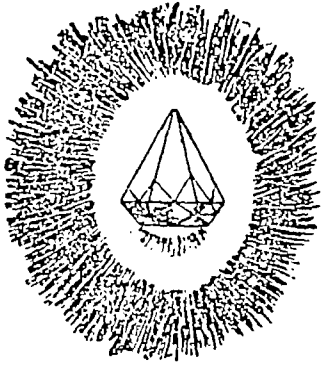
निर्वाण-दृष्टि से वर्ण, वेष, लिंग, वय और संघ का कितना महत्व ?

पं० उदय जैन—कानोड़

□

[पं० उदय जैन जाने-माने विद्वान्, विचारक एवं शिक्षा-शास्त्री हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जवाहर विद्यापीठ, कानोड़ के माध्यम से समाज की भावी पीढ़ी के जीवन-निर्माता हैं। आपका चिन्तन तर्क और श्रद्धा से संतुलित है। निर्वाण के लिए वर्ण, वेष, लिंग, वय और संघ का कितना महत्व है ? यह आपके चिन्तन के प्रकाश में पढ़िये—सं०]

आत्मा का कार्माणवर्गणा से पृथक् होना अथवा कषाय से मुक्ति पाना सच्चा निर्वाण है। यों निर्वाण का अर्थ मुक्ति से और देहावसानक्रिया से भी लिया जाता है। शरीर से छुटकारा पाना निर्वाण है। महापुरुष का शरीर से छूटना महानिर्वाण कहला सकता है।

वेदान्त और जैनदर्शन मुक्ति की प्रधानता से निर्वाण का मूल्यांकन करते हैं। अतः अनन्तज्ञान एवं सच्चिदानंदमय दशा की प्राप्ति, निर्वाण का द्योतक है। महा-प्रयाण भी निर्वाण का पर्यायवाची है। जन्म-मरण के लिए देह-त्याग, प्रयाणक्रिया में आता है। जन्म-मरण से मुक्तिरूप देह-त्याग—सदा के लिए अमरत्व की प्राप्ति महाप्रयाण हो जाता है अथवा साधारण जनसमुदाय के मानव की मृत्यु प्रयाण और महापुरुष की मृत्यु महाप्रयाण बन जाती है।

निर्वाण, सत्य माने में सर्वज्ञ महावीर के इस पच्चीसवीं शती-महोत्सव के अवसर पर पुनर्जीवित हुआ मालूम पड़ता है। निर्वाण-महोत्सव-महावीर भगवान् के मोक्षगमन के अर्थ में लिया जा रहा है। यों भगवान् महावीर के उपदेशानुसार जो भी जीवात्मा, परमात्मा बनने की योग्यता सम्पादन कर, देह-विसर्जन करते हैं, वे सभी निर्वाणगामी होते हैं, ऐसा माना जाता है।

आत्मा के चरमोत्कर्ष का मार्गानुसरण सभी जीवों के लिए खुला हुआ है। किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग, लिंग अथवा वय का कोई प्रतिबंध वीर-संघ में नहीं माना गया है। हमारे बुद्धिजीवियों ने भेदभाव की प्रवृत्त होती हुई मनोवृत्ति को स्थान

दे कर मुक्तिप्राप्ति में किन्हीं पर प्रतिबंध लगा दिया हो, लेकिन महावीर के सिद्धान्त ऐसा करने के लिए कोई निर्देश नहीं करते हैं।

वर्ण :

आर्यसंस्कृति में चार वर्ण माने गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इनमें से ब्राह्मणवर्ण वाले मुक्ति के अधिकारी एवं धर्माधिकारी माने जाते रहे हैं। वे ही जन्म से पवित्र एवं धर्मानुग वंदनीय एवं पूजनीय रहते आये हैं। वीर-शासन में मुक्ति के लिए कर्म से ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व प्रधान माने हैं। चाहे वह वर्ण का वैश्य हो अथवा शूद्र हो। किसी भी वर्ण का कोई भी भव्यात्मा अपनी आत्मा को सम्यक्ज्ञान दर्शन और चारित्र के बल पर मुक्ति का वरण कर सकता है। शूद्र से शूद्र भी आत्माभिमुख होता हुआ महानिर्वाणपद को पा सकता है। कर्मक्षय करने में और जीवों के सहकार में क्षत्रियत्व, ज्ञानसम्पादन में ब्राह्मणत्व, गुणग्रहण में वैश्यत्व और प्राणिमात्र की सेवा और सहकार में शूद्रत्व वरणीय है। वीर का फर्मान है कि कोई भी वर्ण न स्थाई है और न स्थाई रहेगा। आत्मा स्थाई है। अतः ऊपर के आवरणों से भेद कल्पना करना और अपने संस्कारों में रही हुई घृणा को स्थान देना अनुपयुक्त है। निर्वाण-मार्ग में भेदवृत्ति बाधक है।

रूप-रंग को भी वर्ण कहा गया है। मानव किसी भी रंग का हो, आत्मोत्कर्ष करने का अधिकारी है। काला, पीला, लाल और श्वेत रंग देह के हैं और कार्माण वर्गणा के हो सकते हैं, लेकिन आत्मा के नहीं। आत्मा चिन्मय है, प्रकाशपुञ्ज है। अतः इसमें वर्ण का भेदाभेदज्ञान, अज्ञान एवं कुज्ञान का परिणाम है।

किसी भी वर्ण के मानव-मानवी जब सम्यक्त्व-सत्यज्ञान को पा जाते हैं और मोहकर्म का क्षय करने के हित चारित्र को अंगीकार कर लेते हैं, उस आत्म-साधना की वृत्ति में वे सभी आत्मा गुणोत्कर्ष करते हुए मोक्ष को चले जाते हैं। वहाँ ऊँच-नीच वर्ण एवं शरीर के रूप-रंग कोई बाधक नहीं बनते। हरिकेशी आदि श्वपच योनि के असंख्य साधक निर्वाण को प्राप्त कर चुके हैं और आर्यक्षेत्र के दक्षिणी और उत्तरी विश्व के असंख्य अनेक रूपरंग वाले मानवों ने निर्वाण को पा लिया है।

वेष :

मानव-मानवियों के वेष; देश, काल और परिस्थितिवश भिन्न होते हैं; लेकिन आत्माभिमुख प्रवृत्ति के तरीके पृथक् होते हुए भी पहुँच एक है। निर्वाणप्राप्तिमें प्रधान लक्ष्य आत्मसाधना का है। शरीर साधक बन सकता है, लेकिन वेष तो मात्र परिचायक रह सकता है। किसी भी वेष में निर्वाणाभिमुखी आत्मा, मुक्त हो सकता है। बाह्य वेष परिग्रहमय है, अतः हेय है। समाज में और अपने साधकवर्ग में सीमित

रखने के लिए व्यवहार्य है। सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न वेषों और परिचायक-वेषरहित नग्नावस्था में रहते हुए आत्मा निर्वाण पा सकता है। वेष लज्जा ढांकने, शीत-उष्ण एवं वर्षा आदि की रक्षा के लिए होना चाहिये तथा जिस सम्प्रदाय में रह कर साधना करता है, वह भले ही रहे, किन्तु उस वेष का मोह नहीं होना ही निर्वाण-पथ के पथिक की सच्ची पहिचान है। निर्वाणप्राप्ति में वेष का निश्चितीकरण अस्वाभाविक और आशाश्वत मूल्यों का अंकन करता है। अतः वेष की महत्ता निर्वाण-दृष्टि से परिहार्य है।

लिंग :

स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीन लिंग माने जाते हैं। वीर के शासन एवं उपदेश तथा परिचर्या में स्त्री हो या पुरुष अथवा नपुंसक, सभी को अपनी आत्मा की उन्नति, निर्वाणप्राप्ति में समान अवसर और अधिकार दिये हुए हैं। उचित अवसर मिलने पर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। बाह्यलिंग इसके लिए बाधक नहीं बन सकते। शरीर आत्मा का घर या साधन है। शरीर आत्मा नहीं। साधन आत्मोत्कर्ष में साधन बन सकता है, बशर्ते कि आत्मा निर्वाण की ओर गति करे। शरीर के लिंगभेद से कामवासनाओं का सम्बन्ध अवश्य होता है, लेकिन जब क्षायिक चारित्रवाला वासनाओं को पारित कर देता है, तब बाह्यलिंग वासना का उत्पादक कैसे बन सकता है? पुरुषलिंग वाला स्त्रीलिंग वाले से और स्त्रीलिंग वाले पुरुषलिंग वाले से तथा नपुंसक दोनों लिंग वालों के साथ कामवासना का शिकार बनता आ रहा है। इसका यह मतलब नहीं कि सभी आत्माएँ ऐसी ही हों। सौ में से ९९वें प्रतिशत कामवासना-ग्रसित आत्माएँ चारित्र का विकास नहीं कर पातीं, लेकिन कुछेक आत्माएँ ऐसी होती हैं, जिनको भोगेच्छा पैदा नहीं होती है, जिनको भौतिक ज्ञान की तरफ रुचि है वे लिंग पर ध्यान देते रहते हैं। लेकिन आत्माभिरुचिवाला आत्मा, विषयवासना को जीत कर आत्मविजयी बन जाता है, उसके लिए स्त्री, पुरुष और नपुंसक सिर्फ हाड़ मांस के पुतले मात्र दिखते हैं। लिंगभेद वासना के कारण हैं। वासना नष्ट हुई, लिंगभेद नष्ट हुए। अतः किसी भी लिंग का आत्मा, आत्मिक गुणों का विकास करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर सकता है। मुक्तिप्राप्ति में बाह्यलिंग बाधक नहीं, सिर्फ वेद-कामवासना का ज्ञान अथवा भाव बाधक है। अतः निर्वेद मुक्ति कही है। जब तक शरीर है, किसी भी लिंग का आश्रय रहेगा ही, बिना शरीर के साधना अशक्य है।

वय :

आत्मोकर्ष एवं निर्वाणप्राप्ति में उम्र की सीमा बांधना निरी मूर्खता है। अमुक वय तक ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यासी बन कर जीना, यह सांसारिक व्यवस्था हो सकती है, लेकिन आत्मिक साधना में भवस्थिति की परिपक्वता एवं सम्यक्त्व की उपलब्धि के साथ वीर्य की चारित्र में प्रवृत्ति ही प्रमुख स्थान पाती है।

एक-एक वृद्ध आत्मा आत्मदर्शन नहीं कर पाता और एक-एक गजसुकुमाल जैसे बालक गुणस्थान की उत्तम स्थिति को पा कर निर्वाण को पा सकते हैं। अतः उम्र की सीमा साधना के लिए किन्हीं अंशों में सामाजिक व्यवस्था में ग्राह्य हो सकती है, लेकिन मुक्तिमार्ग में यह कसौटी झूठी साबित हुई है। आत्मविकास का शरीरविकास से सामान्य सम्बन्ध हो सकता है, लेकिन वास्तविक कोई सम्बन्ध नहीं है। वीर के शासन में आत्मिक गुणों की उपलब्धि के साथ निर्वाणप्राप्ति में उम्र का बंधन कहीं भी नहीं है।

संघ :

संघ की महत्ता आत्मिकविकास में सहयोग दे सकती है। तीर्थ की रचना का मूर्तरूप संघ कहलाता है, लेकिन वर्तमान का विभिन्न रूपों में बिखरा हुआ संघ, संघ नहीं है। यह तो सम्प्रदायें और पंथ हैं। इन संघ-रचनाओं से आत्मा को निर्वाण प्राप्त होना दुष्कर है।

संघ के भीतर और संघ के बाहर भव्यात्माएं कल्याणमार्ग में बढ़ती हुई निरन्तर गति करती हुई मुक्त बन सकती हैं। संघ के भीतर और बाहर कोई भेद-भाव महावीर प्रभु ने कहीं भी नहीं बताया। गुणस्थानों में बढ़ती हुई चौदहवीं अवस्था को पाने के लिए संघ में रहना कोई आवश्यक नहीं है। कोई महानुभाव उस समय के विचरने एवं प्रचार करने वाले बौद्ध आदि संघों में रहता हुआ भी निर्वाण प्राप्त कर सकता था। संघ साधक अवश्य है। संघ में रहना भी आवश्यक है, लेकिन आत्माभिमुख चेतनश्री का विकास संघ के बाहर रहने पर भी रुक नहीं सकता। साधकों के लिए मर्यादा-पालन आवश्यक है, लेकिन अनिवार्य नहीं।

आत्मा की प्रगति के अनुकूल सभी साधन ग्राह्य हैं और प्रतिकूल वर्जनीय हैं। चाहे वे लिंग, वय, वेष, वर्ण और संघ रूप में ही क्यों न हों।

वर्ण, वेष, लिंग, वय और संघ की निर्वाणदृष्टि से उतनी ही अपेक्षा होनी चाहिए, जितनी साधक को साधना में जरूरत हो। सभी की महत्ता साधक की स्थिति और आत्मिक विकासभूमिका पर अवलंबित है। उपरोक्त पांचों वस्तुएं निर्वाणप्राप्ति पर अनावश्यक हैं। निर्वाणप्राप्ति तक इनकी आवश्यकता है, निर्वाण-प्राप्ति में इनकी अनिवार्यता नहीं। इनका सीमाबंधन साधक की स्थिति के अनुकूल, परिस्थिति के अनुसार बाधक और साधक बन जाता है। लेकिन सीमाबंधन में आपसी घृणा वर्जनीय है; सीमा का पारस्परिक द्वेष त्याज्य है।

——(०)——
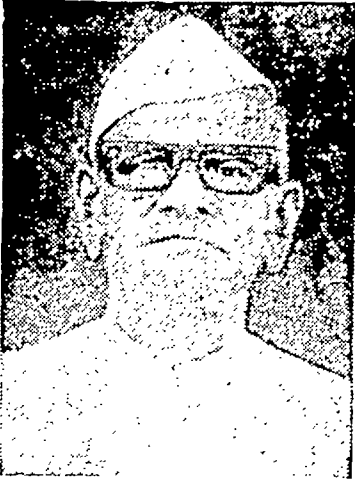
भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी दृष्टि

रामसिंह जैन, एम. ए. एल. टी.

□

प्रत्येक पदार्थ को पूर्ण रूप से समझने के लिए, उसे विभिन्न दृष्टियों से देखना अनेकान्तवाद कहलाता है। और उसे एक ही दृष्टि से देखने को तथा उस दृष्टि-विशेष से ग्रहण किये हुए उसके अंश को पूर्ण पदार्थ पूर्ण सत्य मान लेने को एकान्त-वाद कहते हैं। यह केवल आपेक्षिक सत्य कहा जा सकता है। वस्तु के एक अंश को ग्रहण करना नय का विषय है और नय ज्ञान का अंश होता है। पूर्णज्ञान प्रमाण कहलाता है। पदार्थ के पूर्णज्ञान को प्राप्त करने के लिये अनेकान्तवाद एक मार्ग है। अनेकान्तवाद सभी एकान्तवादियों के पारस्परिक मतभेदों को दूर कर उनके सभी दृष्टिकोणों का समन्वय करता है। अनेकान्तवाद सभी द्रव्यों एवं उनकी सभी पर्यायों में है।

अनेकान्तवाद की पृष्ठ-भूमि

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्म होते हैं। छदमस्थ का ज्ञान इन अनन्त धर्मों में से कुछेक को ही जान सकता है। वह दूसरों को भी उन्हीं कुछेक धर्मों का ज्ञान करा सकता है। अतः उसका ज्ञान पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता; आपेक्षिक सत्य अवश्य कहा जा सकता है। इस बात को जानने के लिये अन्धे पुरुषों का उदाहरण अति उपयुक्त है। जिस प्रकार कई अन्धे पुरुष किसी हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों को हाथ से टटोल कर उसके उन भिन्न-भिन्न अंगों को ही पूर्ण हाथी समझ कर परस्पर लड़ते हैं, उसी प्रकार संसार का प्रत्येक दार्शनिक अल्पसत्ता के कारण पदार्थ के एक अंश को ही जानता है और उस पदार्थ के उस अंश को ही पूर्ण सत्य समझ कर पारस्परिक विवाद खड़ा कर देता है। बस, इन्हीं परस्थितियों में अनेकान्तवाद का जन्म होता है।

अनेकान्तसिद्धान्त की प्राचीनता

इस युग के आदि में धर्म के आदिप्रवर्त्तक भगवान ऋषभदेव ने पदार्थ के अनेकधर्मात्मक होने का उपदेश दिया था। अतः अनेकान्त का सिद्धान्त तो सदैव का ही है। किन्तु भगवान् महावीर के समय में परस्थितियाँ कुछ जटिल हो गई थीं। उस समय एकान्तवाद के कई प्रवल प्रचारक थे और नित्यवाद, अनित्यवाद, क्षणिक वाद आदि वहुत-सी विरोध उत्पन्न करने वाली मान्यताएँ प्रचलित थीं। अनेकान्तवाद से सभी धार्मिक विरोध समाप्त हो जाते हैं। अतः भगवान महावीर ने पदार्थ का पूर्ण ज्ञान करने के लिये अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को ग्रहण करने का उपदेश दिया था। किसी भी पदार्थ को पूर्णरूप से प्रगट करने को यह सूर्य के समान है। कहा भी गया है—

परमागमस्य वीजं, निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां, विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥

अर्थ—जो परमागम का वीज है, जो जन्मान्धों के लिये सूर्य के समान है, और जो सम्पूर्ण नयों से सुशोभित है और पारस्परिक विरोध को दूर करता है, उस अनेकान्त को मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी दृष्टि

भगवान महावीर ने कहा था कि वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं। जितने धर्म होते हैं उतने ही एकान्तवाद हो सकते हैं। वे सभी धर्म और सभी एकान्त सापेक्ष होते हैं। उनको सापेक्ष ही ग्रहण करना चाहिये। यही अनेकान्तवाद का सिद्धान्त है। सभी एकान्तवादियों का समन्वय करने के लिये भगवान् महावीर ने अनेकान्तवाद के चार भेद वताये, जैसा कि निम्न श्लोक से ज्ञात होता है—

स्यान्नाशि नित्यं सदृशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत्तदेव।
विपश्चितां नाथ निपीततत्वसुधोद्गतोद्गारपरम्परेयम्॥

अर्थ—हे विद्वानों के शिरोमणि, आपने अनेकान्तरूपी अमृत को पी कर प्रत्येक वस्तु को कथंचित् अनित्य, कथंचित् नित्य; कथंचित् सामान्य, कथंचित् विशेष, कथंचित् वाच्य, कथंचित् अवाच्य; कथंचित् सत् और कथंचित् असत् प्रतिपादन किया है।

कथंचित् : अनेकान्त का प्राणतत्व

इससे स्पष्ट होता है कि अनेकान्त के मुख्य चार भेद हैं—(१) कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य, (२) कथंचित् सामान्य, कथंचित् विशेष, (३) कथंचित् वाच्य कथंचित् अवाच्य, (४) कथंचित् सत् कथंचित असत्। "कथंचित्" शब्द का प्रयोग अनेकान्तवाद का प्राण है। "कथंचित्" का अर्थ "आंशिक रूप में", "अपेक्षा-कृत" अथवा "ऐसा भी है", है। 'कथंचित्' शब्द के प्रयोग से वस्तु में किसी धर्म

का लोप नहीं होता है और वह हठाग्रह को भी दूर करता है। उदाहरण के लिये हमने कहा, "जीव कथंचित् ज्ञान गुण वाला है।" इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी हैं। कथंचित् का विरोधी 'ही' शब्द है। जिस प्रकार अनेकान्त का मुख्य शब्द "कथंचित्" है, उसी प्रकार एकान्तवादियों का मुख्य शब्द "ही" है। यदि कहा जाये कि वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है; तो इसका अभिप्राय यह होता है कि वह अन्य प्रकार का नहीं हो सकता और उसमें अपेक्षित धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म नहीं है। वस्तु के इस प्रकार के प्रतिपादन में हठाग्रह निहित है। जैसे यदि कहा जाए कि "जीव ज्ञानगुण वाला ही है", तो इससे प्रगट होता है कि उसमें अन्य गुण नहीं है। किन्तु जीव में तो वीर्य, सुख आदि अनन्त गुण हैं। इसीलिये अनेकान्तवाद में कथंचित् शब्द का प्रयोग वस्तु के जानने और उसके प्रतिपादन करने में प्रथम आवश्यक बताया गया है। "अनेकान्तवाद" वस्तु का धर्म है और उसका शब्दों द्वारा प्रतिपादन करने वाला "स्याद्वाद" है।

भेदों में अभेदता

एक बात जो उक्त भेदों से और प्रगट होती है, वह यह है कि दो विरोधी धर्म भी वस्तु में एक साथ रह सकते हैं। इसीलिये प्रतिपक्षसहित इन चार भेदों को आठ रूप में कहा गया है। द्रव्यदृष्टि से वस्तु नित्य, अवाच्य, सामान्य और सत्‌रूप है। वही वस्तु पर्यायदृष्टि से अनित्य, वाच्य, विशेष और असत्‌रूप है। जैनधर्म एकान्त से न तो द्रव्यदृष्टि को ही ग्रहण करता है और न पर्यायदृष्टि को ही। पर्यायरहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्याय नहीं होती है। गुण के विकार को पर्याय कहते हैं और गुण के समूह को द्रव्य कहते हैं। अतः द्रव्य में गुण और पर्याय दोनों ही होते हैं। "तत्वार्थसूत्र" में कहा गया है—"गुणपर्यायवद्द्रव्यं।" अर्थात् गुण और पर्याय के समूह को द्रव्य कहते हैं। न तो केवल गुण ही द्रव्य है और न पर्याय ही द्रव्य है। जैनधर्म का अनेकान्तवाद दोनों दृष्टियों (द्रव्यदृष्टि जो गुणों का प्रतिपादन करती है, और पर्यायदृष्टि) को वस्तु में अपेक्षाकृत स्वीकार करता है। गुण और पर्याय दोनों ही द्रव्य के आश्रित होते हैं। अतः वस्तु का पूर्ण ज्ञान करने के लिये द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि, इन दोनों ही दृष्टियों का ज्ञान करना चाहिये। किन्तु एक समय में एक दृष्टि से वस्तु के एक ही अंश को जाना जा सकता है। अतः वह एकान्त सत्य अथवा अपेक्षाकृत सत्य कहा जा सकता है। वही भगवान् महावीर की अनेकान्तदृष्टि थी।

अनेकान्तवाद का समन्वयवादी सिद्धान्त

उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अनेकान्तवाद के भेद द्रव्य-दृष्टि और पर्यायदृष्टि के आधार पर ही किये गये हैं। द्रव्यदृष्टि द्रव्यार्थिनय का विषय है और पर्यायदृष्टि पर्यायार्थिक नय का विषय है। जैनागम में कहा गया है

कि नय ज्ञान का अंश होता है और नयों के समूह को ज्ञान कहते हैं। जितने शब्द हैं, उतने ही नय हैं। किन्तु मुख्य नय दो ही हैं—(१) द्रव्यार्थिक नय, (२) पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं—(१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं—(१) ऋजुसूत्र, (२) शब्द, (३) समभिरूढ़, (४) एवंभूत। इन नयों के समूह को ज्ञान कहते हैं। वही प्रमाण है और वस्तु-स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन करने वाला है। किन्तु सारे एकान्तवाद उक्त सात नयों में से किसी एक नय के आश्रित होते हैं।

अतः वे सभी किसी एक नय की अपेक्षा से सत्य हैं। उदाहरण के लिये ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, संग्रहनय की अपेक्षा से वेदान्त, नैगमनय की अपेक्षा से नैयायिक-वैशेषिक, शब्दनय की अपेक्षा से शब्द-ब्रह्मवादी तथा व्यवहारनय की अपेक्षा से चार्वाक-दर्शन को सत्य कहा जा सकता है। इसीलिये योगी आनन्दघनजी ने कहा है कि—

षड्दर्शन जिन-अंग भणीजे, न्यास षड़ंग जे साधे रे।
नमिजिनवरना चरण-उपासक, षड्दर्शन आराधे रे॥

इससे स्पष्ट होता है कि सभी दर्शनों को एकत्रित करने पर जैनदर्शन समग्र बन जाता है। कहा भी है कि—

अनेकान्तात्मकं वस्तु-गोचरः सर्वसंविदाम्।
एकदेशविशिष्टोऽर्थः नयस्य विषयो मतः॥

अर्थ—सर्वदेशीयज्ञान का वस्तुविषय अनेकान्तात्मक है। वस्तु का एकशीय ज्ञान नय का विषय होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक नय एकान्त सत्य है। अपेक्षाकृत सब नयों को ग्रहण करना अनेकान्त है। वही प्रमाण है और वही जैन सिद्धान्त है।

सप्त नय

यहाँ उन सात नयों के विषय में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

(१) नैगमनय—ज्ञान का वह अंश; जो भूत और भावी पर्यायों को वर्तमान में ग्रहण करे, उसे नैगम नय कहते हैं। जैसे डाक्टरी पढ़ने वाले विद्यार्थी को डाक्टर साहब कहना।

(२) संग्रहनय—जो समस्त वस्तुओं के संग्रह को एकरूप कहे, उसे संग्रहनय कहते हैं। जैसे सेना कहने से, सिपाही, घोड़े आदि सभी का ज्ञान होता है।

(३) व्यवहारनय—जो संग्रहनय द्वारा ग्रहण किये हुए विषय में भेद करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं। जैसे पैदल सेना, घोड़ों की सेना आदि।

(४) ऋजुसूत्र—वर्तमान पर्याय को ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्रनय कहलाता है। जैसे जीव को मनुष्य, देव आदि कहना।

(५) शब्दनय—जो, लिंग, वचन, कारक के व्यभिचार का दूर करता है, उसे शब्दनय कहते हैं। जैसे इन्द्रियों के स्वामी को इन्द्र कहना।

(६) समभिरूढ़नय—रूढ़ि से प्रचलित अर्थ को ग्रहण करना। जैसे गाय को गाय कहना।

(७) एवंभूतनय—क्रिया के आधार से कर्त्ता का ज्ञान करना। जैसे पूजा करते समय मनुष्य को पुजारी कहना।

ये ही सातों नय मिल कर वस्तु के यथार्थस्वरूप को प्रगट करते हैं। ये सभी नय अनेकान्तवाद पर आधारित हैं।

अनेकान्तवाद और लोकव्यवहार

हम लोकव्यवहार में भी अनेकान्तवाद को ही ग्रहण करते हैं। यदि इस सिद्धान्त का लोक-व्यवहार में प्रयोग न किया जाये, तो संसार का व्यवहार चल ही नहीं सकता। इसके लिये एक व्यक्ति का उदाहरण ले लीजिये। वह व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्र की अपेक्षा पिता है। इसी प्रकार उसमें भ्रातृत्व, पतित्व, स्वामित्व, सेवकत्व आदि अनेक धर्म हैं। लेकिन वे सब अपेक्षाकृत हैं। शब्द का उच्चारण होते ही अपेक्षित ज्ञान ग्रहण कर लिया जाता है। जब बहन कहती है, भाई ! तब भाई समझ लेता है कि बहन बुला रही है। लेकिन जब भाई कहा गया तब उस व्यक्ति में अन्य धर्म भी थे। लेकिन वे गौण थे। यहाँ उनकी विविक्षा नहीं थी। तत्वार्थसूत्र में कहा गया है कि "अर्पितानर्पितसिद्धेः।" अर्थात् जब एक धर्म को ग्रहण किया जाता है, तब उसी की मुख्यता होती है। उस समय अन्य धर्म गौण होते हैं। वे कहीं चले नहीं जाते। यही अनेकान्तवाद का स्वरूप है। वस्तु को भलीभाँति समझने के लिये भगवान् ने यही उपदेश दिया था। इसको समझे बिना वस्तु का स्वरूप नहीं जाना जा सकता और न लोकव्यवहार ही चल सकता है। कहा भी है—

> जेण विणा लोयस्सवि विवहारो सव्वहा न निव्वडइ।
> तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥

अर्थ—जिसके बिना लोक के सभी व्यवहार का सर्वथा निर्वाह नहीं हो सकता है, त्रिभुवन के एकमात्र गुरु उस अनेकान्तवाद को नमस्कार है।

सारांश—अभिप्राय यह है कि भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में अनेकान्त-सिद्धान्त को वस्तु का स्वरूप समझने के लिये आवश्यक बताया। विशेपता यह है कि उन्होंने एकान्तदृष्टि को भी आंशिक रूप से सत्य माना है। तभी तो जैनधर्म का किसी से विरोध ही नहीं है।

भगवान् महावीर और अनेकान्तवाद

जैनभूषण, पण्डितरत्न श्रीज्ञानमुनिजी म०

विश्ववन्द्य श्रमण भगवान् महावीर ने संसार में चल रहे या चलने वाले पारस्परिक झगड़ों द्वन्द्वों और संघर्षों के अन्त के लिए अहिंसा की देन दी। उन्होंने उसे केवल पोथियों की वस्तु न बना कर आचाररूप में परिणत भी किया। भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित अहिंसा को मुख्यतः दो भेदों में बांटा जा सकता है—आचार में अहिंसा और विचार में अहिंसा।

अनेकान्तवाद का स्वरूप

विचार में अहिंसा को ही हम अनेकान्त कहते हैं। विचारभेद के कारण—मतों, पंथों और सम्प्रदायों का जन्म होता है। उसी के कारण संघर्ष होता है। भगवान् महावीर ने इसी संघर्ष की जड़ पर प्रहार करते हुए कहा कि अनेकान्त के द्वारा किसी भी मत, पंथ या सम्प्रदाय में कथित विचारधारा और आचारपद्धति को किसी एक ही दृष्टिकोण से न देख कर, उसकी दृष्टि से भी देखो, उसकी अपेक्षा से भी देखो। जब व्यक्ति दूसरे के मत, पंथ, सम्प्रदाय या दर्शन पर भी शान्तिपूर्वक सहिष्णुता से विचार करता है तो विरोध का शमन स्वतः ही हो जाता है। समन्वयदृष्टि से संघर्ष नहीं रहता। एकान्त कदाग्रह सत्य नहीं कहा जा सकता। कोई विचार तभी पूर्ण सत्य कहा जा सकता है, जब उसे सभी पहलुओं से जांचा-परखा जाए। उसी तथ्य एवं सत्य का नाम अनेकान्तवाद है। दर्शनशास्त्र की भाषा में विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है, उसमें अनेकानेक धर्म निवास करते हैं। अनेकान्तवाद वस्तु के सभी धर्मों को समझ लेने की बात कहता है। वस्तु के सभी धर्मों पर दृष्टिपात न करके, केवल उसके किसी एक धर्म पर दृष्टिपात करना और उसी एक धर्म को ही वस्तु का स्वरूप समझना अनेकान्तवाद को इष्ट नहीं है। अनेकान्तवाद वस्तु के सभी धर्मों की ओर देख कर उसके स्वरूप का निर्णय करता है। इस तथ्य को एक उदाहरण से समझिए। भारत के कुछ विचारक आत्मा को सर्वथा नित्य मानते हैं और कुछ

निर्वाण का प्रथम सोपान : अपरिग्रह

—बनारसीदास चतुर्वेदी, ज्ञानपुर वाराणसी

□

[जब तक मन से आसक्ति के बंधन नहीं टूटते, तब तक मुक्ति या निर्वाण नहीं हो सकता। आसक्ति को तोड़ने की सबसे पहली चोट है—अपरिग्रह। इसलिए अपरिग्रह निर्वाणसाधना का प्रथम सोपान है। सुप्रसिद्ध साहित्यिक एवं विचारक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का आज के युगधर्म की विवक्षा के साथ अपरिग्रह की अपेक्षा पर पढ़िए..........]

—सम्पादक

निस्सन्देह इस समय सम्पूर्ण विश्व के सामने एक धर्म संकट उपस्थित हो गया है। संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ अब यह अनुभव करने लगी हैं कि वे विनाश के कगार पर खड़ी है।

हिंसा के साधन इतने शक्तिशाली हो गये हैं—आणविक अस्त्र इतने भयंकर बन चुके हैं—कि कुछ बट्टनों के दबाते ही प्रक्षेपास्त्र विश्व के महान नगरों को क्षणभर में भूमिसात् कर सकते हैं, शतशताब्दियों से अर्जित सभ्यता के चिह्न को धूल में मिला सकते हैं।

क्या वर्तमान परिस्थिति में अहिंसा का आश्रय ले कर विश्व को बचाया जा सकता है ? क्या संसार की महान शक्तियाँ किसी व्यावहारिक समझौते द्वारा विनाश की घड़ी को सदासर्वदा के लिये टाल सकती हैं ? अमरीका तथा रूस के नेता अब इस बारे में चिन्ता तो करने लगे हैं और किंसिगर तथा ब्रेजनैव की यात्राएँ इसका प्रमाण है।

किसी भी बीमारी के इलाज के पहले उसके मूल कारणों को जान लेना जरूरी होता है। गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह पता चल सकता है कि भिन्न-भिन्न जातियों की विस्तारवादी नीति—जो परिग्रह का ही दूसरा नाम है; इस विश्वसंकट के मूल में है। यूरोपीय जातियों ने अफ्रीका तथा एशिया में छीना-झपटी के जो खेल खेले थे और जिस प्रकार करोड़ों व्यक्तियों को गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया था, मुख्यतया उन्हीं के कारण महायुद्ध हुए थे। हर्ष तथा सन्तोष की बात है कि परतन्त्र जातियाँ अब स्वाधीन हो कर स्वतन्त्रता के वातावरण में सांस ले रही है।

२. दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्रदान.

पर अब भी 'प्रभावशाली क्षेत्र'—(Zones of influence) बनाने की नीति उन महत्वाकांक्षी जातियों ने नहीं छोड़ी। वह भी आखिर पुरानी नीति का नवीन संस्करण ही है। पर अब दुनिया का लोकमत जाग्रत है और वह धोखे में नहीं आ सकती।

इसमें सन्देह नहीं कि अन्त में तो विजय अहिंसा की ही होगी—शान्ति स्थापित हो कर ही रहेगी, पर उसके पूर्व एक खतरा अवश्य है—वह यह कि भारत को खून की नदियों में से गुजरना पड़े। हमारे पड़ोसियों को अहिंसा की नीति (जिसे आज-कल की भाषा में 'सह-अस्तित्व' कहते हैं) समझने में बहुत देर लग सकती है।पर बहुसंख्यक जातियों की चिन्ता हमें फिलहाल छोड़ कर व्यक्तिगत तौर पर ही विचार करना चाहिये। प्रत्येक महान यज्ञ का प्रारम्भ व्यक्ति द्वारा छोटे से छोटे केन्द्र या स्थान पर हो सकता है और बढ़ते-बढ़ते उसकी परिधि में सम्पूर्ण विश्व आ सकता है। आखिर भगवान् महावीर भी एक व्यक्ति ही थे, जिनके सिद्धान्तों का महत्व अब सम्पूर्ण विश्व समझने लगा है।

पर सिद्धान्तों की शेखी बघारने का युग अब लद चुका है। एक अंग्रेजी कविता है—

> Go put your creed, Into your deed
> Nor speak with double tongue

अर्थात्-अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करो, दुहरी जबान से न बोलो।

दुर्भाग्य की बात यही है कि भगवान राम तथा कृष्ण, प्रभु ईसामसीह, भगवान बुद्ध और हजरत मुहम्मद के अनुयायी अपने अवतारों के प्रति मौखिक श्रद्धा ही प्रकट करते रहे हैं और उनका व्यवहार उसके सर्वथा विपरीत रहा है। फिर अकेले जैनसमाज को ही क्यों दोषी ठहराया जाय ?

मुख्य सवाल यह नहीं है कि भगवान् महावीर ने क्या कहा था अथवा महात्मा गांधी क्या कहते थे ? असली प्रश्न तो यह है कि हम और आप जो उनके अनुयायी होने का दम भरते हैं—या दम्भ करते हैं !—अपने नित्य के जीवन में क्या कर रहे हैं ?

महात्मा गांधीजी ने साधनसम्पन्न व्यक्तियों से यह आशा की थी कि वे ट्रस्टी बन कर लोकहित के कार्यों में अपने साधनों का उपयोग करेंगे, पर एकाध को छोड़ कर किसी ने भी उनके आदेशों का पालन नहीं किया। अवश्य ही सेठ जमनालालजी तथा बिड़ला-बन्धुओं ने उस दिशा में कुछ काम किये थे। पर ६६ फीसदी ने इधर ध्यान ही नहीं दिया।

मुझे दो बार रूस जाने का अवसर प्राप्त हुआ था, और मैंने वहाँ नवीन मानव का निर्माण अपनी आँखों से देखा था। हमें इस भ्रमात्मक धारणा को तिलांजलि दे देनी चाहिये कि ऋषि लोग केवल भारतभूमि में ही पैदा होते हैं। कार्ल मार्क्स (जिन्हें लाला हरदयाल ने ऋषि लिखा था) जर्मनी में पैदा हुए थे और राजर्षि लैनिन रूस में ! दुनियाँ का एक बड़ा हिस्सा उनकी पूजा करता है।

यह जरूरी नहीं है कि हम किसी देश-विदेश की नीतियों की हूबहू नकल कर लें। पर हर हालत में हमें स्वेच्छा से नहीं, तो मजबूरी से अपरिग्रह की नीति को अपनाना ही होगा।

अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, क्यों न तजै तब ही तैं ?

जन मास्को की गोर्की इन्स्ट्रीट्यूट से हमने दो मोटे ताजे रूसियों के चित्र देखे तो हम पूछ बैठे—ये कौन हैं ? उत्तर मिला—ये सफेद कौए हैं ? यानी वे पूँजीपति, जिन्होंने लैनिन तथा गोर्की की सहायता की थी।

रूस के सैकड़ों पूँजीपतियों का अब नामोनिशान बाकी नहीं। जो लोग स्वेच्छा से अपने द्रव्यसाधनों को जनता-जनार्दन को अर्पित नहीं करेंगे ; उनसे वे जोर-जबरदस्ती से छीन लिये जावेंगे !

इस अवसर पर हमें वह बातचीत याद आती है, जो महात्मा गांधी तथा सुप्रसिद्ध अमरीकन पत्रकार लुई फिशर के बीच हुई थी।

जमींदारी के उन्मूलन की चर्चा चल रही थी। तब महात्माजी ने कहा था—"किसानों में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की शक्ति आ जायगी और उनका दूसरा कदम होगा जमीन पर काबू कर लेना।"

फिशर ने पूछा "क्या हिंसा द्वारा वे जमीन हड़पेंगे ?"

बापू ने कहा—"हाँ, हिंसा हो सकती है, पर जमींदार लोग सहयोग कर सकते हैं।"

जब फिशर ने इस कथन पर टीका-टिप्पणी की तो बापू ने मजाक में कहा—

"जमींदार लोग भाग खड़े होंगे। यही उनका सहयोग होगा।"

फिशर ने कहा "तब तो खून खच्चर होगा।"

इस पर महात्मा जी ने कहा—"हाँ, पन्द्रह दिन के लिये अव्यवस्था हो सकती है, पर शीघ्र ही हम लोग उस पर काबू पालेंगे।"

महात्माजी का यह कथन पूँजीवाद पर भी लागू हो सकता है।

अनेकान्त, अपरिग्रह, अहिंसा तथा आध्यात्मिक स्वावलम्बन के जो सिद्धान्त भ० महावीर द्वारा प्रचारित होते रहे है, उनका विश्वव्यापी महत्व है। पर जब तक स्वयं हम लोग व्यक्तिगत तौर पर उन्हें अपने आचरणों में नहीं उतारते; तब तक वे प्रभावहीन ही बने रहेंगें। इनमें भी अपरिग्रह का सिद्धान्त सर्वोपरि है और वही आज का युगधर्म है।

तब जय बोलो महावीर की

संगीतकार ←→ जैन 'विनय' देववंदी

पलट के रख दी जिसने, सब रेखाएँ तकदीर की,
जय बोलो महावीर की, जय बोलो २ ॥ध्रुव ॥

वीर के गुण आलापने वालों, वीर का पथ अपनाओ ।
हिंसा, चोरी, झूठ, कपट, छल, स्वार्थ दूर भगाओ ॥
ऊँच-नीच और राग-द्वेष की, दीवारों को ढाओ ।
आपस के मत-भेद भुला कर, सबको गले लगाओ ॥
पहले इतना कर लो, तब बोलो जय महावीर की ॥जय बोलो०॥

हो कोई स्थानकवासी, या होवे श्वेताम्बर ।
इससे हमको क्या लेना, कि है कोई दिगाम्बर ॥
आपस के झगड़ों की खाई, अब तो मिल कर पाटो ।
एक पेड़ की शाखा हैं, मत इक दूजे को काटो ॥
जोड़ो, अब भी जोड़ो, बिखरी कड़ियाँ जंजीर की ॥जय बोलो॥

जैनधर्म के ठेकेदारो, सम्भलो, अब भी जागो ।
झूठी मान-प्रतिष्ठा के, चक्कर को अब तो त्यागो ॥
वक्त को देखो, बात को समझो, तजो आपसी झगड़ा ।
इन झगड़ों के कारण ही, जैन-धर्म रहा पिछड़ा ॥
पहले यह सब रोको, तब जय बोलो जय महावीर की॥जय०॥

वीर के शासन में सब हिल-मिल, गीत अभय के गाते ।
शेर, गाय, मृग एक घाट ही, पानी पीने आते ॥
किन्तु, आज हम मानव हो कर, मानव को ही सताते ।
महावीर की वाणी को, नाहक बदनाम कराते ॥
हिल-मिल रहना सीखो, तब बोलो जय महावीर की॥जय बोलो॥

होटल, क्लबों में होती है, शर्मो-हया नीलाम ।
आज सभ्यता चौराहों पर, होती है बदनाम ॥
गली-गली औ गांव-गांव में, खुली हैं जो मधुशाला ।
वीर ही जाने, मेरे देश का, क्या है होने वाला ॥
पीना-पिलाना छोड़ो, तब बोलो जय महावीर की॥जय बोलो॥

जलसों और जलूसों से ही, काम न पूरा होगा ।
वक्ता, गायक बुलवा कर भी, फर्ज न पूरा होगा ॥
करनी-कथनी एक करो, तब जा कर ही कुछ होगा ।
वीर-प्रभु निर्वाण-महोत्सव, सफल तभी बस होगा ॥
गिरतों को 'विनय' है थामो, तब बोलो जय-महावीर की ॥जय०॥

●
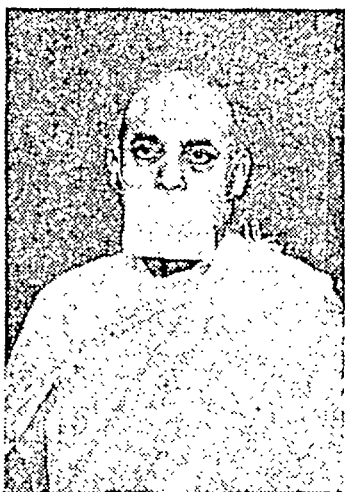
निर्वाण-साधना और सामाजिक अनिष्ट-निवारण

श्री अखिलेश मुनि

□

[श्री अखिलेश मुनिजी राष्ट्रसंत उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म० के गुरुभाई हैं। सन्मति ज्ञानपीठ, वीरायतन आदि संस्थाओं के आप मेरुदण्ड हैं। समाज-सेवा के साथ-साथ संत-सेवा में रत रहते हुए भी आप अभिमान और प्रसिद्धि से काफी दूर हैं। ये ही बातें आपके द्वारा प्रस्तुत लेख में प्रतिबिम्बित हुई हैं—सं०।]

महावीर की निर्वाणसाधना केवल एकान्त में या सिर्फ व्यक्तिगत-हित साधन के लिए ही नहीं थी। अहिंसा आदि पांचों ही महाव्रतों का पालन समाज के सम्पर्क से ही हो सकता है; क्योंकि इन पांचों के पालन मे दूसरे की अपेक्षा अनिवार्य होती है। अहिंसा आदि महाव्रतों की कसौटी या थर्मामीटर तो मानव-समाज या अन्य प्राणी ही है। फिर अन्य प्राणियों से बच कर या उनके सम्पर्क के कारण दोष पैदा होने के डर से भाग कर साधक कैसे अलग-थलग या एकान्त स्वहितार्थी हो सकता है। यही सोच कर भ० महावीर विभिन्न जनपदों में, यहां तक कि अनार्यक्षेत्रों में भी निर्भीक और साहसी बन कर पहुँचे और वहां अपनी अहिंसा का परिचय भी दिया। जहां उन्होंने देखा कि अपने पर कष्टों का पहाड़ गिराने वाले व्यक्ति को इन्द्र आदि दण्ड देने लगते हैं, वहां उनकी असीम करुणा उन्हें वैसा करने से रोकती है। यहां तक कि गोशालक के उद्दण्ड स्वभाव के कारण जब वैश्यायन बालतपस्वी क्रुद्ध होकर उस पर तेजोलेश्या छोड़ता है और उसके तीव्र ताप से गोशालक के प्रज्वलित होने में कोई कसर नहीं थी, तभी भ० महावीर की अनुकम्पा प्रबल हो उठी, उन्होंने गोशालक को शीतलेश्या छोड़ कर बचाया, उसका दाह शान्त किया।

भ० महावीर की दृष्टि में अहिंसा केवल निषेधात्मक ही नहीं थी, विधेयात्मक भी थी। समाज में जब चारों ओर हिंसा-मानवहिंसा प्रवृत्त हो रही हो, मनुष्य-मनुष्य को अपना दास (गुलाम) बना कर उसके स्वत्व का हनन करता हो, उससे मनमाना काम लेता हो, उस पर अत्याचार कर रहा हो, उस समय अहिंसा के आचरण करने-करवाने के लिए समाज व राष्ट्र को प्रेरित करना भी अहिंसा-

महाव्रती का कर्त्तव्य है, कृत, कारित और अनुमोदितरूप से उसकी विधेयात्मक अहिंसा महाव्रतरूपेण आचरित हो सकती है। वल्कि अज्ञान और अन्धविश्वास में पड़े हुए असभ्य एवं वर्वर मानवों के बीच ही नहीं, पशुओं के बीच रह कर भी उन्हें सत्पथ पर लाने का पुरुषार्थ करना, वात्सल्यभाव से प्रेरित हो कर उन्हें नीति और धर्म के मार्ग पर प्रेरित करना अहिंसा का उत्कृष्ट विधेयात्मक रूप है। भ० महावीर का अनार्यदेश में विचरण, चण्डकौशिक सर्प को प्रतिवोध, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। यही कारण है कि जव भगवान् महावीर ने कौशाम्बी आदि क्षेत्रों में दास-दासी का सरेआम क्रय-विक्रय होते देखा और भद्र घरों में उन पर अमानुषिक अत्याचार होते देखा तो उनकी आत्मा इस सामाजिक हिंसा से तिलमिला उठी। परन्तु जव उन्होंने नारीजाति पर और भी विशेष अत्याचार होते देखे-सुने तो उनका संवेदनशील हृदय द्रवित हो उठा। और इन अन्यायों-अत्याचारों का राज्य द्वारा समर्थन तो उन्हें और भी अधिक खटका। फलतः भगवान् महावीर ने इस प्रकार की सामाजिक हिंसाओं के निवारण के लिए स्वयं वीड़ा उठाया। उन्होंने इसी प्रकार की राजघराने की और अन्यायपीड़ित दशा को प्राप्त[1] दासी के हाथ से आहार लेने का कठोर संकल्प (अभिग्रह) किया। अहिंसक प्रतीकार में व्यक्ति समाज की गलती को अपनी गलती समझ कर उसे दूर करने के लिए वात्सल्यभाव से प्रवृत्त होता है, निराहार रह कर वह समाज का ध्यान खींचता है, उस दोष की ओर। यही कारण था कि भगवान् महावीर को इस भयंकर सामाजिक हिंसा के निवारण के लिए ५ महीने २५ दिन की तपस्या करनी पड़ी। उनका अभिग्रह फलित हुआ। चन्दनवाला नाम की दासी वनी हुई राजकुमारी के हाथ से उनका पारणा हुआ। उस अभिग्रह का इतनी तेजी से चारों ओर प्रभाव पड़ा कि उसके वाद दास-दासी का अमानुषिक व्यापार या मानव के प्रति मानव द्वारा अत्याचार प्रायः वंद हो गया। यह विश्ववत्सल प्रभु की अहिंसा की उत्कृष्ट साधना थी, जिसे निर्वाण-प्राप्ति के लिए उन्होंने आवश्यक समझी थी।

यही कारण है कि निर्वाण-साधना में स्वकल्याण के साथ-साथ परकल्याण की साधना वाधक नहीं है, वल्कि अनिवार्य है। क्योंकि तभी षट्कायिक जीवों (प्राणिमात्र) के रक्षक, पालक, माता-पिता और विश्ववत्सल का विरुद पूर्ण हो सकता है। अपने निमित्त से किसी को दुःख न देना, दिलाना; इतना ही नहीं, (अज्ञान, मोह या पूर्वकर्मवश) दुःख पाते हुए जीवों के दुःख-निवारण के लिए अहिंसक सात्विक प्रयत्न करना, उपाय वताना और समाज को उस उपाय की ओर प्रेरित करना भी निर्वाणसाधना के लिए। अपेक्षित है। इसे आधुनिक युग की भाषा में समाजसेवा या समाज का नवनिर्माण कहा जा सकता है; परन्तु ऐसी समाजसेवा या समाजनिर्माण के पीछे किसी प्रकार का अहंकार, स्वार्थ, प्रसिद्धि की कामना आदि विकार नहीं होने चाहिए। भ० महावीर के जीवन को इस कसौटी पर कसते हैं तो उनका जीवन इन विकारों से कोसों दूर था। उन्होंने इतनी लम्बी तपस्या और घोर कष्टसहन करके भी समाजसेवा करने या समाज-निर्माता होने का कभी दावा नहीं किया। अहंशून्यता ही तो साधक को निर्वाण के निकट ले जाती है।

●

---

१. कल्पसूत्र सू० ६४

निर्वाण-साधना में बाह्यक्रिया और मनोभावों का स्थान

— पं. दलसुख मालवणिया

[पं० दलसुखभाई मालवणिया सुप्रसिद्ध समन्वयवादी दार्शनिक हैं, आप वाराणसी में वर्षों जैनदर्शन के शोधप्रवन्धकारों के मार्गनिर्देशक प्राध्यापक रहे। आजकल आप अहमदावाद में इंडोलोजी रिसर्च इन्स्टीट्यूट के निर्देशक हैं। आपका श्रमणसंस्कृति का गहरा अध्ययन हैं। प्रस्तुत लेख भी आपकी समन्वयशीलता का परिचायक है—सं०]

पालीपिटक में भ० महावीर के सिद्धान्तों की चर्चा के दौरान एक शंका उठाई गई है कि मन, वचन और काया, इन तीनों प्रकार के दण्डों में प्रवल दण्ड[1] कौन-सा है ? उस सन्दर्भ में भगवान् महावीर का दृष्टिकोण यह बताया गया है कि उक्त तीनों दण्डों में कायदण्ड[2] ही अधिक पापजनक है जवकि भ० वुद्ध के अभिप्राय में[3] मनोदण्ड ही तीनों में प्रवल है।

देखना यह है कि भ० वुद्ध ने जिस रूप में भ० महावीर का मत दिया है क्या वह उचित है ? ऐसे मत के निर्देश का क्या कारण हो सकता है ?

डॉ० याकोबी ने पालिपिटक-निर्दिष्ट मत को उचित ही माना है। डॉ० मुनि नगराजजी ने याकोबी के इस मत को उचित नहीं माना। किन्तु उसकी विस्तृत चर्चा नहीं की।

दण्ड और कर्म-शब्द एकार्थक हैं या भिन्नार्थक ?

भ० बुद्ध इसी चर्चा के सन्दर्भ में यह बताते हैं कि "निग्गंथ नायपुत्त (महावीर) कर्म को पापजनक नहीं बताते। उनके मत से दंड ही पापजनक हैं और वे दंड तीन हैं—मन, अमन और काय। निग्गंथ नायपुत्त इन तीनों में कायदंड को ही सर्वाधिक प्रवल कहते हैं।"

देखें—१. मज्झिमनिकाय उपालिसुत तथा उसका अवतरण
२. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन पृ० ५४१
३. अनुवाद के लिये, वही पृ० ४०८

देखना यह है कि क्या जैन-आगम कर्म की अपेक्षा दंड शब्द को प्राधान्य देते हैं ? यह सच है कि जैनागमों में 'दंड'[४] और 'कर्म'[५] दोनों शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है।

आचारांगसूत्र, स्थानांगसूत्र, सूत्रकृतांग एवं उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगमों में 'कर्म' एवं दंड' दोनों शब्दों का अनेक जगह प्रयोग किया गया है और ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म और दंड दोनों एकार्थक हैं। क्योंकि दण्ड यदि मन-वचन-काय से होते हैं तो कर्म भी मनवचनकाय से होते हैं। यहां तक जैनदर्शन एवं बौद्ध-दर्शन के तात्पर्य में भी कोई अन्तर नहीं है।

अतएव 'निग्गंथ नायपुत्त दंड कहते हैं, कर्म नहीं, यह आक्षेप उचित नहीं जचता।

मन, वचन, काय में किसका प्राधान्य ?

मन, वचन और काय तीनों में पाप के लिए प्रधान कौन हैं ? इसे बौद्ध-आगमों और जैनागमों की कसौटी पर कसा जाय तो प्रतीत होगा कि दोनों में खास कोई मतभेद नहीं है। बौद्धत्रिपिटिक में मनोदंड को प्रधानता दी गई है, वह बात 'मनो पुब्वंगमा धम्मा' आदि धम्मपद में किये हुए उल्लेख से स्पष्ट है। कुशल-अकुशल जो कुछ भी किया जाता है, वह मनःपूर्वक होता है, यह उल्लेख भी इसी मत की ओर संकेत है।

जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है—

रागो य दोसो त्रिय कम्मवीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वयंति —उत्तराध्ययन ३१ अ. ७ गा.

---

४. कम्मसमारंभे अपरिन्नायकम्मे—आचारांग १.१.५, १.१.७, १.१.६।
आरंभी अपरिन्नायकम्मे—आचारांग २.५.१.
कम्मसमारंभ—आचारांग २.५.१.
उवरओ पावकम्मेहिं—वही ३.१.३.
कम्मुणा उवाही जायइ—वही ३.१.४.
पावकम्मं—वही ३.१.४. तथा उत्तराध्ययनसूत्र
कम्म परिन्नाय—आचारांग ४.३.२., पावेहि कम्मेहिं—वही ४.३.३.
कुराइं कम्माइं ५.१.१. वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं—सूय कृ० ५.२.१.

५. दंड समायाणं—आचारांग २.२.३, दडं समारंभेज्जा, वही २.२.३. और ८.१.४; निक्खित्तदंड—वही ४.३.१; ६.१.१.
नो दंडभी दंडं समारंभेज्जासि—वही ८.१.४, निहाय दंड पाणेहिं—वही ६.३.७; निहाय दंडपाणेहि पावं कम्मं अकुव्वमाणे—वही ८.३.१. मिच्छा-दंडं पउंजइ-उत्तराध्ययन। सव्वेहि दंडेहि पुराकएहिं-सूयकृतांग ५.१.१६.

अगर भ० महावीर को कायदण्ड का ही प्राधान्य अभिप्रेत होता तो वे पाप-कर्म के कारणों में राग और द्वेष को क्यों बताते ?

इसी तरह बौद्ध आगम—अंगुत्तरनिकाय[६] में कर्म का समुदाय लोभज, दोसज (द्वेषज) और मोहज माना है।

इन दोनों मन्तव्यों को देखते हुए दोनों में कोई तात्विक मतभेद नजर नहीं आता।

कर्मबन्ध का मुख्य कारण—मनोभाव

भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट कर्मवाद पर जब सूक्ष्म-विचारणा हुई और उसके फलस्वरूप विस्तृत साहित्य लिखा गया, तब तो भ० महावीर का वह दृष्टिकोण और अधिक स्पष्ट हो गया। कर्म के चार प्रकार के बन्धों में स्थिति और विपाक का मुख्य कारण कषाय को माना है तथा प्रकृति और प्रदेशबन्ध का कारण माना है—योग को। इससे भी यह संकेत मिलता है कि कायदंड की अपेक्षा मनोदंड ही पाप-कर्म का मुख्य कारण है।

भ० महावीर ने 'प्रमाद'[७] को भी कर्मरूप माना है, इससे भी स्पष्ट द्योतित होता है कि कर्म का मुख्य कारण मानसिक भाव है न कि कायिक बाह्यक्रिया।

आचार्य उमास्वाती ने[८] कर्मबन्ध का मुख्य कारण 'कषाय' को माना है। वहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि योग कर्म के आश्रव का कारण होते हुए भी यदि वह[९] सकषाय है तो साम्परायिक आश्रव है और अकषाय है तो ईर्यापथ-आश्रव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ईर्यापथ-आश्रव से नाममात्र का कर्मबन्ध होता है, उसका कोई विपाक नहीं होता। कर्म आते हैं और चले जाते हैं। इससे भी सिद्ध हो जाता है कर्मबन्ध में कायिक (बाह्य) क्रिया का विशेष महत्व नहीं है।

भ० बुद्ध द्वारा अभिव्यक्त अभिमत का तात्पर्य

यह सच है कि कर्मबन्ध और दण्ड में मुख्य कारण मन को मानते हुए भी भ० महावीर ने बाह्याचार में स्वयं कठोरता अपनाई है, अपने अनुगामी साधकों के लिए भी कठोर नियम बताये हैं। इन कठोर नियमों तथा कठोर तपश्चर्याओं को देख कर शायद भ० बुद्ध द्वारा यह अभिमत व्यक्त किया गया हो कि निग्गंथ नायपुत्त कायदंड को महत्त्व देते हैं। परन्तु केवल कठोर क्रियाएँ और कठोर नियम-संयम

देखें—६. अंगुत्तरनिकाय ३. ३३१

७. 'पमायं कम्ममाहंसु'—सूत्रकृतांग, १.८.३

८. तत्वार्थसूत्र अ. ८ सू. २

९. तत्वार्थसूत्र अ. ६ सू. ५

देख कर उक्त आक्षेप करना उचित नहीं जचता। क्योंकि भ० महावीर ने वाह्य तप की अपेक्षा आभ्यन्तर तप को महत्व दिया है। प्रायश्चित्त विधि में तपश्चरणक्रिया के साथ-साथ शुद्ध मन से आलोचना, निन्दना (पश्चात्ताप), गर्हणा भी आवश्यक वताई है। वाह्यक्रिया के साथ 'पढमं नाणं तओ दया' की दृष्टि से ज्ञान को प्राथमिकता दी है, जिसका सम्वन्ध मन से ही है।

भ० महावीर द्वारा कठोर वाह्याचार अपनाने का कारण

आमतौर पर किसी के मानसिक भावों का अल्पज्ञ लोगों को पता नहीं चलता, वाणी और शारीरिक क्रिया के आधार पर ही कोई निर्णय कर सकता है। और फिर भ० महावीर ने यह भी देखा कि पंचमकाल के साधकों में वक्रजड़ता अधिक होगी, इसलिए वाह्याचार में जरा भी शिथिलता फैली तो संघ का पतन होते देर न लगेगी। इसलिए वाह्याचार में कठोरता अपनाने के साथ ही उन्होंने आन्तरिक भावों को जोड़ने की प्रत्येक साधक को सलाह दी है। सामायिक की क्रिया के साथ-साथ सामायिक में मनोदुष्प्रणिधान को दोष वताया है। वाह्याचार कठोर होने से पतन एवं स्खलन की संभावना कम रहती है, नियम शिथिल होते हैं तो वे वढ़ते हैं। वौद्धों के वाह्याचार का शैथिल्य ही भारत से उनके संघ की समाप्ति का कारण हुआ है और आचार की कठोरता ने ही जैनसंघ को आज तक जीवित रखा है।

वाह्याचार और मनोभावों में संतुलन न होने से……

वास्तव में वाह्याचार और मनोभाव दोनों का संतुलन आवश्यक है। इनके संतुलन न होने से एकान्तवाद और उसके फलस्वरूप मान्यताओं की खींचातानी, संघर्ष वगैरह अनिष्ट पैदा होते हैं। आन्तरिक भावों का वाह्य-आचार के रूप में प्रतिविम्व पड़ना ही चाहिए, यह एक एकान्त है, और आन्तरिक भावों का वाह्याचार के रूप में प्रतिविम्व पड़ना आवश्यक नहीं है, यह दूसरा एकान्त है।

दिगम्वर और श्वेताम्वर सम्प्रदायों के वीच वस्त्रचर्चा इन्हीं दोनों एकान्तों का परिणाम है। दिगम्वर-सम्प्रदाय का कथन है—वाह्यवस्त्रों का ग्रहण, भले ही धर्मोपकरण की दृष्टि से किया गया हो, वहां आन्तरिक परिग्रह है ही। अर्थात् मूर्च्छा-ममत्व के विना वस्त्रग्रहण हो नहीं सकता। इसके उत्तर में श्वेताम्वर-सम्प्रदाय कहता है—वस्त्रग्रहण के साथ मूर्च्छा का अविनाभावी सम्वन्ध नहीं है। मूर्च्छा नहीं भी हो सकती है। अगर वस्त्रग्रहण मूर्च्छाभाव का कारण है तो मोरपिच्छी और कमण्डलु भी मूर्च्छाभाव का कारण हो सकता है। शरीर भी मूर्च्छा का कारण हो सकता है। कर्मपुद्गलों का ग्रहण और आहारग्रहण भी परिग्रह के अन्तर्गत हो सकता है।

इसलिए शरीर तो मूर्च्छा होने पर परिग्रह है। यद्यपि उसे छोड़ना नहीं पड़ता, समय आने पर वह अपने आप छूट जाता है; तब तक धर्मपालन के लिए उसे निभाना पड़ता है। आहारग्रहण भी मूर्च्छा हो तो परिग्रह है, परन्तु शरीर को धर्म पालन-हेतु आहार देना जरूरी हो जाता है। जैसे वस्त्र के सिवाय शरीरादि अन्य पदार्थों पर मूर्च्छा सम्भव है और नहीं भी है, वैसे ही वस्त्र के विषय में मान लिया जाय तो क्या हर्ज है ?

वास्तव में देखा जाय तो श्रमण, मुनि या भिक्षु बनते ही कोई वीतराग या मूर्च्छाविहीन नहीं हो जाता। वह उस मार्ग का—उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधनापथ का-पथिक होता है। यदि उस समय वह सर्वथा वस्त्र छोड़ देता है तो वह केवल बाह्याचार होगा, मूर्च्छाविहीनता का द्योतक नहीं। यदि वह सचमुच मूर्च्छा-विहीन हो गया है, तब तो उसमें और वीतराग में कोई भेद नहीं रह जायगा। फिर तो उसे साधना की भी क्या आवश्यकता रह जायगी ? इसलिए यह सिद्ध होता है कि जिसे सर्वथा मूर्च्छात्याग अभिप्रेत है, वह वस्त्रत्याग से उसका प्रारम्भ करता है, वह उसी समय मूर्च्छाविहीन नहीं हो जाता। इसी तरह यदि कोई अल्पवस्त्र रख कर मूर्च्छात्याग की शुरूआत करता है तो वह भी तत्काल मूर्च्छाविहीन नहीं हो जाता। दोनों उसी मार्ग के पथिक हैं। मंजिल दोनों ने नहीं प्राप्त की।

जब किसी भी पदार्थ पर मूर्च्छा नहीं रहती, तब शरीर पर वस्त्र या साथ में अन्य उपकरण हों या न हों, इससे कोई मतलब नहीं। क्योंकि ऐसा मूर्च्छाहीन साधक शरीर से सर्वथा ममत्व छोड़ कर अपनी आत्मा में ही लीन हो जाता है। इसलिए यह एकान्तिक रूप से जरूरी नहीं कि मन में मूर्च्छा होने से ही वस्त्रादि वस्तुओं का ग्रहण होता है अथवा मन में मूर्च्छा नहीं तो वस्त्रादि बाह्यपदार्थ-त्याग होना ही चाहिए। वस्तुस्थिति तो यह है कि वीतराग हो जाने पर उसकी सभी वस्तुओं पर से मूर्च्छा (आसक्ति) तो छूट जाती है, लेकिन सभी वस्तुएँ नहीं छूटतीं। जैसे वीतराग हो जाने पर भी उस साधक को आहार ग्रहण करना पड़ता है, शरीर धारण करना पड़ता है, संघ का सहयोग ग्रहण करना पड़ता है, उसी प्रकार धर्मो-पकरण भी संयम-पालन करने हेतु रखने पड़ते हैं। इसी आशय से श्वेताम्बरों ने पार्श्वनाथ आदि कई तीर्थंकरों को सवस्त्र होते हुए भी बुद्ध की तरह वीतराग माने हैं और दिगम्बरों ने अपने एकान्त आग्रह के कारण सभी को नग्न ही माना है।

यदि यह कहा जाय कि शरीर का ग्रहण कर्मवश होता है, तो क्या वस्त्र का ग्रहण बिना कर्म के होता है ? एक अदृश्य कर्म है, दूसरा है दृश्यकर्म। इतना-सा अन्तर है। कर्म तो कर्म ही हैं। ऐसी दशा में धर्मोपकरण के रूप में संयम-पालन हेतु वस्त्रग्रहण को भी एकान्त मूर्च्छाजन्य मानें तो बाह्य दृष्टि से देखने पर वीतराग की भी बहुत-सी क्रिया मूर्च्छाजन्य कहनी पड़ेगी, परन्तु वे मूर्च्छाजन्य होती नहीं। और

जब तक कोई पूर्ण वीतरागी नहीं हुआ तब तक वस्त्ररहित होने से ही उसे सर्वथा मूर्च्छाविहीन कैसे कहा जा सकता है ? क्योंकि पूर्वोक्त कथनानुसार निर्वस्त्र और सवस्त्र दोनों ही कोटि के साधु जब तक वीतराग नहीं हो जाते, तब तक मूर्च्छा-त्याग के पथिकमात्र हैं ।

ऐसी स्थिति में दिगम्बरों और श्वेताम्बरों का वस्त्र को ले कर संघर्ष कोई विशेष माने नहीं रखता । दिगम्बरों ने वस्त्र का त्याग निभाया; किन्तु अन्य कई वस्तुओं को इतना अधिक ग्रहण कर लिया, जिनका निर्वस्त्रता से कोई मेल नहीं खाता । इधर श्वेताम्बरों ने भी वस्त्र के स्वीकार के साथ उसकी मात्रा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, दूसरी भी कई प्रकार की रियायतें लीं । दोनों एक-दूसरे को निकट से आत्मीयतापूर्वक समझने का प्रयाप्त करें, यही श्रेयोमार्ग है ।

बाह्याचार और आन्तरिक भावों में सामंजस्य

आन्तरिक विशुद्धि का प्रभाव बाह्य-आकार में स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होना चाहिए, किन्तु उसकी कुछ सीमाएँ होती हैं । उन सीमाओं को सर्वथा तोड़ना या अपनाना तो वीतराग के वश की बात है । जब तक शरीर रहता है, तब तक वे कुछ सीमाओं का स्वीकार अनिवार्यरूप से करते हैं, लेकिन इससे उनकी वीतरागता में कोई कमी नहीं आती ।

यह सच है कि बाह्याचार के कारण विवेकी पुरुष का प्रस्थान विशुद्धि की ओर होता है, इसलिए बाह्याचार को सर्वथा निरर्थक तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु बाह्याचार और आन्तरिक भावों का सन्तुलन जरूरी है, जिसे भगवान् महावीर ने अपने प्रवचनों में स्पष्ट किया है ।

इसलिए भ० महावीर की दृष्टि से निर्वाण-साधना में बाह्याचार और आन्तरिक आचार में सामंजस्य जरूरी है, और वह कदाग्रह से नहीं; किन्तु विवेकबुद्धि से ही हो सकता है ।
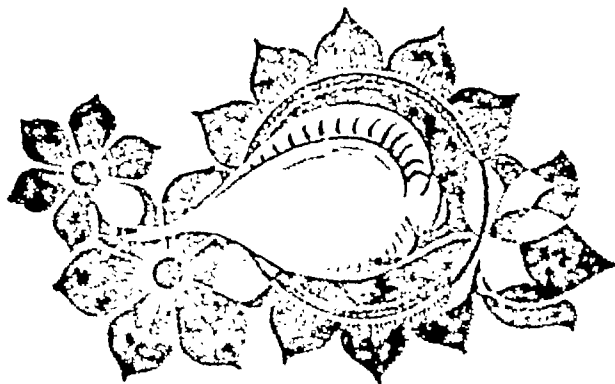
निर्वाण-साधना की दृष्टि से—

समाजनिर्माण का दायित्व

—शान्तिचन्द्र मेहता, एडवोकेट, चित्तौड़गढ़

☐

मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास का वैज्ञानिक इतिहास इस सत्य को अवश्य ही उजागर करता है कि मनुष्य सतत प्रगतिशील घटक रहा है। किसी समयावधि के लिये विमूढ़तावश वह भले ही स्थगन (Stagnation) की विवशता से पीड़ित रहा हो, किन्तु उसकी गतिशीलता कभी अवरुद्ध नहीं हुई। प्रगतिशीलता के उसके गुण ने ही महावीर के मुख से मनुष्य-जीवन को 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे' (मनुष्य जीवन अवश्य ही दुर्लभ है) कहलाया तो आधुनिक युग में कार्ल मार्क्स ने भी मनुष्य को प्रगति का मूल (Root of progress) कहा है। मानव-जीवन की प्रबुद्धता ही समाज-निर्माण का दायित्व झेलती है; जो निर्वाण-साधना की चरम स्थिति तक भी पहुँचती है।

व्यक्ति और समाज की शक्तियाँ

परम्परागत विचारदृष्टि से तो ऐसा अनुभव होगा कि निर्वाण-साधना और समाज-निर्माण—ये दोनों कार्य परस्पर विरोधी हैं। निर्वाण-साधना को आप व्यक्तिगत कार्य कहेंगे कि एक साधक एकाकी साधना से अपना उच्चतम विकास साधे—संसार से विरागी बन कर और अपने अन्तःकरण में डूब कर। किन्तु जहाँ तक समाज-निर्माण के अपने दायित्व को पूरा करने का प्रश्न है, वह तो व्यक्ति को संसार से संलग्न बनाता है और उसे समूह से जोड़ता है। तो प्रश्न है कि क्या वास्तव में ये दोनों कार्य परस्पर विरोधी हैं अथवा परम्परा की रूढ़ता में गिरने से हमारी ऐसी भ्रान्त धारणा बन गई है?

मेरा विचार यही है कि इन दोनों कार्यों में परस्पर-विरोध की धारणा अवश्य ही भ्रान्त है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि इन दोनों कार्यों में भरपूर सामंजस्य ही नहीं है; बल्कि दोनों अन्योन्याश्रित भी हैं। इसके लिये पिछली दो शताब्दियों में व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों की मान्यता में जो परिवर्तन आया है, उसे ध्यान में रखना होगा।

व्यक्ति एकाकी होता है और व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। समाज व्यक्ति से पृथक नहीं, फिर भी क्या व्यक्ति की शक्ति ही समाज की शक्ति बनती है ? क्या सामाजिक शक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता ? १९ वीं सदी तक हमारी धारणाएँ अधिकांशतः व्यक्तिवादी थीं, किन्तु विज्ञान के आश्चर्यजनक विकास ने जब सम्पूर्ण मानवजाति के बीच की दूरी घटा दी तो एक नये दृष्टिकोण ने जन्म लिया, जिसे हम सामान्यतया समाजवाद कहते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी शक्ति होती है, किन्तु जब कुछ व्यक्ति मिल कर किसी संविधान एवं नियमोपनियमों के साथ एक संस्था की रचना करते हैं और अपने को उससे सम्बद्ध बनाते हैं तो उस संविधान आदि की आधारशिला पर संस्था की नई शक्ति बनती है, जिसके आगे व्यक्ति की शक्ति को झुकना पड़ता है। ऐसी ही शक्ति समाज की होती है, जो व्यक्ति से गठित होती है। किन्तु वह होती है—व्यक्ति की शक्ति से ऊपर और वही शक्ति व्यक्ति को अनुशासित बनाती है। व्यक्ति एवं समाज की शक्तियों को इसी परिप्रेक्ष्य में देख कर जीवन के साथ उनके प्रभाव का अंकन करना चाहिये।

सामंजस्य एवं सहयोग की शृंखला

पाँवों को व्यक्ति का रूप मानिये तो समाज को धरातल। चलने वाले अवश्य ही पांव होते हैं, किन्तु उनकी गति सदा ही धरातल पर आधारित होती है। यदि धरातल समतल और साफ हुआ तो वे पांव उग्रगति से आगे बढ़ सकेंगे एवं अपने गन्तव्य तक पहुँच सकेंगे। किन्तु इसके विपरीत यदि धरातल उबड़-खाबड़ व कंटकाकीर्ण हुआ तो सशक्त पांव भी रुक जायेंगे, धीमे हो जायेंगे एवं थक जायेंगे। पांवों और धरातल के बीच यदि सामंजस्य एवं सहयोग की शृंखला जुड़ी हुई हो तो निश्चय ही प्रगति निर्बाध हो सकेगी।

व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के अनुसार हमको अब तक यही समझाया गया है कि धर्म और संसार (समाज) के क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं तथा धर्मसाधना की पुष्टि के लिये संसार-त्याग आवश्यक है। तब संसार में रह कर संसार को बदलने का विचार जन्मा नहीं था। व्यक्ति ही संसार से अलग हो तो वह अपनी आत्मा को निर्वाणगामी बना सकता है—यही विचार फैला हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि इस विचार में बहुत बड़ा सत्यांश था और है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि आज के समाजवादी विचार में सत्यांश नहीं है, बल्कि यह शोध का विषय है कि संभवतः इस विचार में उससे भी बड़ा सत्यांश रहा हुआ हो।

अब व्यक्ति को समाज से तोड़ कर नहीं, उससे जोड़ कर देखने का युग है और यही दृष्टि दोनों को सामंजस्य एवं सहयोग की शृंखला से जोड़ती है।

निर्वाणसाधना एवं समाजनिर्माण परस्पर पूरक

निश्चय ही निर्वाण-साधना व्यक्ति का व्यक्तिगत चरम है, किन्तु क्या इस चरम की उपलब्धि साधारणतः बिना समुचित समाजनिर्माण के सम्भव बन सकती

है ? वर्तमान वैज्ञानिक युग में मनुष्य शत-प्रतिशत रूप से सामाजिक प्राणी बन गया है। चाहे आध्यात्मिक गुणों की अवाप्ति का प्रश्न हो अथवा भौतिक साधनों की प्राप्ति का—संभवत: व्यक्ति सामाजिक प्रभावों से एक क्षण के लिये भी मुक्ति नहीं पाता है। आपकी दिनचर्या को ही देखिये—कौनसा काम आप सामाजिक सहकार के अभाव में पूरा कर पाते हैं ? पग-पग पर जब व्यक्ति और समाज जुड़कर चल रहे हैं तो यही स्थिति समीचीन मानी जानी चाहिये कि व्यक्ति सामूहिक प्रयत्नों से ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करे जिसके समतल धरातल पर चल कर वह निर्वाणसाधना को सफल बना सके। इस प्रकाश में यदि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं को देखने का एवं उनके समाधान खोजने का प्रयास किया जायगा तो निश्चय ही निर्वाणसाधना एवं समाजनिर्माण के लक्ष्य परस्पर पूरक ही प्रतीत होंगे।

समाज-निर्माण का दायित्व किस रूप में पूरा किया जा सकता है—इसे निर्वाण-साधना के लक्ष्य के सन्दर्भ में देखना एवं बनाना चाहिये। निर्वाण-साधना व्यक्ति का उच्चतम साध्य माना गया है तो समाज-निर्वाण को उसके अनुकूल साधन के रूप में देखना होगा। निर्वाण-साधना क्या है और वह महावीर की दृष्टि में क्या है—यह गम्भीर एवं विस्तृत दार्शनिक विषय है, किन्तु इसे संक्षेप में यों कह सकते हैं कि निर्वाण-साधना ममता के विरुद्ध समता की साधना है—परिग्रह की मूर्च्छा से हट कर आत्मा को उन्मुक्त बनाने की साधना है। इस साधना का अन्तिम परिणाम मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता के श्रेष्ठतम रूप में ही प्रकट होता है।

साधन को पहले सशक्त बनाइये !

साध्य की सिद्धि साधन की सशक्तता पर निर्भर करती है, इस कारण पहले साधन को सशक्त बनाने की आवश्यकता है। साधन तभी सशक्त होगा, जब वह साध्य की प्राप्ति के अनुकूल हो, बल्कि उसमें सहायक हो। निर्वाण-साधना की सिद्धि तभी प्राप्त हो सकेगी, जब उसके अनुकूल समाज का निर्माण किया जाय। ऐसे समाज-निर्माण के दायित्व का बीड़ा आज उन सभी निर्वाण-साधकों को उठाने के लिये आगे आना चाहिये, जिसमें से शोषण, दमन एवं उत्पीड़न के मूल रोग समाप्त हो कर मानवीय सद्गुणों का सम्यक् रीति से विकास हो चुका हो।

मानवीय धरातल पर ही मानव निर्वाण की ओर सफलतापूर्वक अग्रगामी बन सकेगा। अत: समाजनिर्माण का दायित्व निर्वाणसाधना से भी पहले आता है, जिसके लिये व्यक्ति एवं समाज की सारी शक्ति निष्ठापूर्वक एकजुट बननी चाहिये, ताकि स्वस्थ समाज के निर्माण के साथ एक व्यक्ति के लिये ही नहीं, सभी विकासोन्मुख व्यक्तियों के लिये निर्वाणसाधना को सहज बनाई जा सके।

उपदेश
तृतीय खण्ड
श्री
महावीर निर्वाण विशेषांक
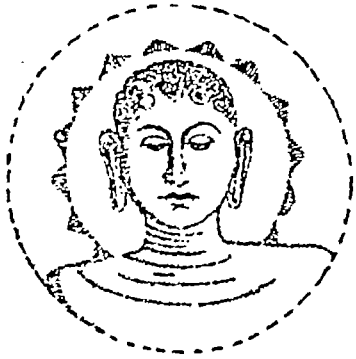
उतने पर अधिकार तुम्हारा

—शर्मनलाल 'सरस' सकरार (झांसी)

□

समय कह रहा बड़े वेग से, है यह मानवता का नारा,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,

●

हिंसा झूठ और चोरी से, मिटे आज आदर्श पुराने,
इतने कलुषित हृदय हो गए, लगा स्वयं इतिहास लजाने,
कैसे कहूं दया है हम में, हम भी दया वात वाले हैं ?,
हिंसक पशुओं से अव ज्यादा, हिंसक मनुज जात वाले हैं,
उर को कब्रिस्तान वनाने से होगा, क्या भला तुम्हारा ?,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,

●

कैसे कहें यही वह भारत, जिसका लक्ष्मण से नाता है,
आज गली हर चौराहों पर, सीता को टोका जाता है,
देखो वह देखो आँसू भर, किसकी कौन चली आती है,
दिन दोपहर कितनी वहनों की, अव साड़ी खींची जाती है,
कितना कटु सत्य है इसमें कभी आपने नहीं विचारा,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा ?

●

अधिक काम ले कर कम देना, खुले आम यह दानवता है,
आज इन्हीं पैसों वालों से, लज्जित सारी मानवता है,
क्या कारण है कहीं नग्न तन, कहीं विछी रेशम डोरी है,
अधिक जरूरत से रख लेना, सरे आम समझो चोरी है,
ऐसों को समझाना होगा, वंधु वीर का पावन नारा,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,

भगवान महावीर

वर्तमान युग में सुख-शान्तिदाता :

भगवान् महावीर का उपदेश

—परिपूर्णानन्द वर्मा

आज संसार में जितनी अव्यवस्था, अशान्ति तथा हाय-हाय की आँधी ने प्रत्येक वर्ग, समुदाय तथा मानवमात्र को त्रस्त कर रखा है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। धनी से धनी और निर्धन से निर्धन देश में न किसी को मानसिक सुख है या शान्ति है। जो जितना ही धनी देश है, वहाँ सामाजिक विघटन उतना ही भीषण है। इधर आत्महत्या में वृद्धि का एक कारण यह भी कहा जा रहा है कि लोग सुख, समृद्धि, भोग, विलास से ऊब कर जान दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या मानवता के लिये कोई सहारा नहीं है?

सहारा तथा उपाय है। यदि भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-दिवस पर हम उनके उपदेशों का कुछ भी अंश ग्रहण कर सकें, हृदयगम कर सकें तो समाज में फिर से आशा तथा स्थिरता की एक नयी ज्योति जाग सकती है और उससे जगत् मात्र आलोकित हो सकता है। संसार की विपत्ति की जड़ है—हरएक की असीमित, अपरिमित इच्छा, माँग तथा परिग्रह की कामना। हम चाहते हैं कि जितना जो कुछ हो सके, हमें मिल जाय। यही नहीं, दूसरे का जितना जो कुछ अपहरण कर सकें, उतनी ही तृप्ति होगी। मानव के इसी स्वभाव को देख कर भ० महावीर ने कहा था—

सुव्वण्णप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतया॥

—उत्तराध्ययन सूत्र

सोने और चाँदी के कैलाशपर्वत के समान असंख्य पर्वत (ढेर) हो जायं, तो भी (तृष्णावान) मनुष्य को उससे कुछ भी तृप्ति नहीं होती। क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

आज अपार धन वाले देश और व्यक्ति दुःखी हैं, चिन्तित हैं। क्यों ? इसलिए कि वे धन से त्राण और सुख की आशा लगाए बैठे हैं मगर धन से सुख नहीं है। जब तक जगत् इच्छा के जाल में पागल हो। हम यह भूल जाते हैं कि जीवन कुछ ही वर्षों के लिये है। मरने के बाद क्या होगा, इसका पता किसे है।

इसलिये कुछ वर्ष के इस सांसारिक जीवन को असली सुख व शान्ति से क्यों वंचित करें। इच्छा के बन्धन में जकड़े रहने से मनुष्य को कदापि सुख व शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिये भगवान महावीर ने कहा—

छंदो-निरोहेण उवेइ मोक्खं

अर्थात् इच्छा को जीतो। स्वच्छन्दता को रोकने पर ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। स्वतन्त्र बन जाओ। यदि इच्छा को जीत लोगे तो आत्मा की, आपकी रक्षा हो जायगी। ध्यान रखना होगा कि धन आदि कभी विपत्ति में हमारी रक्षा नहीं कर सकता। धर्म ही एकमात्र हमारी रक्षा कर सकता है। इसी बात को भगवान् महावीर ने यों कहा—

'एगो हु धम्मो नरदेव ताणं', 'वित्तेण ताणं लभे पमत्ते'

एकमात्र धर्म ही ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति की रक्षा कर सकता है, प्रमादी व्यक्ति धन से अपनी रक्षा नहीं कर पाता। अपनी आत्मा की रक्षा करनी है तो— 'भारंडपक्खीव चर अपमत्तो' (भारंडपक्षी की तरह अप्रमत्त बन कर चल।) अभी तो जवानी है। अभी तो इच्छाओं की पूर्ति कर लें, फिर आत्मा की रक्षा कर लेंगे तो यह हमारी भूल है ; क्योंकि एक क्षण का भी प्रमाद घातक होता है। एक क्षण का प्रमाद जीवन का समूचा भविष्य नष्ट कर सकता है। इसीलिए भ० महावीर की यह उक्ति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है—

'समयं गोयम ! मा पमाइए'

'गौतम ! एक क्षण के लिये भी प्रमाद मत करो।' इच्छा और आशा का सगी बहन का साथ है। दोनों साथ-साथ चलती हैं। जिसने आशा की, आशा के जाल में अपने को फंसा लिया; उसकी बड़ी दुर्गति होती है। गुरु अष्टावक्र ने अपनी गीता में लिखा है :—

"आशा या ये दासास्ते दासा सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः" ॥

जो आशा का दास बन जाता है, वह संसार का दास बन जाता है। जिसने आशा को छोड़ दिया, जो किसी से कुछ आशा नहीं करता, वह संसारभर को अपना दास बना लेता है। अतएव हमें निर्णय करना है कि क्या हम संसार की दासता करें, या संसार के स्वामी बन जायें ? यह सोचना घोर मूर्खता है कि अभी हमारे में शक्ति

भगवान महावीर

वर्तमान युग में सुख-शान्तिदाता :

भगवान् महावीर का उपदेश

—परिपूर्णानन्द वर्मा

आज संसार में जितनी अव्यवस्था, अशान्ति तथा हाय-हाय की आँधी ने प्रत्येक वर्ग, समुदाय तथा मानवमात्र को त्रस्त कर रखा है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। धनी से धनी और निर्धन से निर्धन देश में न किसी को मानसिक सुख है या शान्ति है। जो जितना ही धनी देश है, वहाँ सामाजिक विघटन उतना ही भीषण है। इधर आत्महत्या में वृद्धि का एक कारण यह भी कहा जा रहा है कि लोग सुख, समृद्धि, भोग, विलास से ऊब कर जान दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या मानवता के लिये कोई सहारा नहीं है?

सहारा तथा उपाय है। यदि भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-दिवस पर हम उनके उपदेशों का कुछ भी अंश ग्रहण कर सकें, हृदयगम कर सकें तो समाज में फिर से आशा तथा स्थिरता की एक नयी ज्योति जाग सकती है और उससे जगत् मात्र आलोकित हो सकता है। संसार की विपत्ति की जड़ है—हरएक की असीमित, अपरिमित इच्छा, माँग तथा परिग्रह की कामना। हम चाहते हैं कि जितना जो कुछ हो सके, हमें मिल जाय। यही नहीं, दूसरे का जितना जो कुछ अपहरण कर सकें, उतनी ही तृप्ति होगी। मानव के इसी स्वभाव को देख कर भ० महावीर ने कहा था—

सुव्वण्णप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतया॥

—उत्तराध्ययन सूत्र

सोने और चाँदी के कैलाशपर्वत के समान असंख्य पर्वत (ढेर) हो जायं, तो भी (तृष्णावान) मनुष्य को उससे कुछ भी तृप्ति नहीं होती। क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

आज अपार धन वाले देश और व्यक्ति दुःखी हैं, चिन्तित हैं। क्यों ? इसलिए कि वे धन से त्राण और सुख की आशा लगाए बैठे हैं मगर धन से सुख नहीं है। जब तक जगत् इच्छा के जाल में पागल हो। हम यह भूल जाते हैं कि जीवन कुछ ही वर्षों के लिये है। मरने के बाद क्या होगा, इसका पता किसे है।

इसलिये कुछ वर्ष के इस सांसारिक जीवन को असली सुख व शान्ति से क्यों वंचित करें। इच्छा के बन्धन में जकड़े रहने से मनुष्य को कदापि सुख व शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिये भगवान महावीर ने कहा—

छंदो-निरोहेण उवेइ मोक्खं

अर्थात् इच्छा को जीतो। स्वच्छन्दता को रोकने पर ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। स्वतन्त्र बन जाओ। यदि इच्छा को जीत लोगे तो आत्मा की, आपकी रक्षा हो जायगी। ध्यान रखना होगा कि धन आदि कभी विपत्ति में हमारी रक्षा नहीं कर सकता। धर्म ही एकमात्र हमारी रक्षा कर सकता है। इसी बात को भगवान् महावीर ने यों कहा—

'एगो हु धम्मो नरदेव ताणं', 'वित्तेण ताणं लभे पमत्ते'

एकमात्र धर्म ही ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति की रक्षा कर सकता है, प्रमादी व्यक्ति धन से अपनी रक्षा नहीं कर पाता। अपनी आत्मा की रक्षा करनी है तो— 'भारंडपक्खीव चर अपमत्तो' (भारंडपक्षी की तरह अप्रमत्र बन कर चल।) अभी तो जवानी है। अभी तो इच्छाओं की पूर्ति कर लें, फिर आत्मा की रक्षा कर लेंगे तो यह हमारी भूल है ; क्योंकि एक क्षण का भी प्रमाद घातक होता है। एक क्षण का प्रमाद जीवन का समूचा भविष्य नष्ट कर सकता है। इसीलिए भ० महावीर की यह उक्ति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है—

'समयं गोयम ! मा पमाइए'

'गौतम ! एक क्षण के लिये भी प्रमाद मत करो।' इच्छा और आशा का सगी बहन का साथ है। दोनों साथ-साथ चलती हैं। जिसने आशा की, आशा के जाल में अपने को फंसा लिया; उसकी बड़ी दुर्गति होती है। गुरु अष्टावक्र ने अपनी गीता में लिखा है :—

"आशा या ये दासास्ते दासा सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः" ॥

जो आशा का दास बन जाता है, वह संसार का दास बन जाता है। जिसने आशा को छोड़ दिया, जो किसी से कुछ आशा नहीं करता, वह संसारभर को अपना दास बना लेता है। अतएव हमें निर्णय करना है कि क्या हम संसार की दासता करें, या संसार के स्वामी बन जायें ? यह सोचना घोर मूर्खता है कि अभी हमारे में शक्ति

है, बल है, हम संसार को जीत सकते हैं। हमें संसार क्या दास बनायेगा ? इसीलिए भ० महावीर ने चेतावनी दी है—

'घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं'

अर्थात् "समय बड़ा निर्मम है और शरीर बड़ा निर्बल है।" उसके भरोसे रहने से काम नहीं चलेगा। जीवन का कोई ठिकाना नहीं। देखने में जरा-सी चीज इस शरीर को निर्बल और निकम्मा बना देती है। भ० महावीर ने कहा था—

चइत्ताणं इमं देहं गंतव्वमवसस्स ते

"इस शरीर को छोड़ कर एक दिन निश्चित ही तुम्हें चले जाना है।" इसीलिये केवल धन के पीछे पागल बना हुआ आज का समाज मिथ्यामोह और अन्धकार में है। "वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं।' धन दुःख बढ़ाने वाला है, इस बात को विशेष रूप से जान कर धर्ममार्ग पर चलो।

कामनाओं के जाल में मत फंसो; इसीलिये भ० महावीर ने सावधान किया है :—

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थेमाणा आकामा जंति दोग्गई ॥

"काम-भोग शल्य हैं, विष हैं और आशीविष सर्प के तुल्य हैं। काम-भोग की इच्छा करने वाले, उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त करते हैं।'

विषयों में आसक्ति ही आज संसार के दुःख का कारण है। आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं णहि सब्भावं वावारो णात्थं विसयत्थं ॥

"जिनकी इन्द्रियां विषयों में आसक्त हैं, उनको स्वाभाविक दुःखी समझना चाहिये। क्योंकि यदि उन्हें स्वाभाविक दुःख नहीं होता तो विषयों की प्राप्ति के लिये यत्न क्यों करते।"

अन्धे-बहरे

आज का समाज अन्धा और बहरा हो रहा है। आदि शंकराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरी में लिखा है—

कोऽन्धो योऽकार्यरतः
को वधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले
प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥

अन्धा कौन है—जो न करने योग्य बुरे कामों में लीन रहता है। बहरा कौन है—जो हित की बात नहीं सुनता। गूंगा कौन है—जो समय पर प्रिय वचन बोलना नहीं जानता।

हम आज ऐसे ही हो रहे हैं। सन्त भूधरदास ने ठीक ही लिखा है—

राग उदै जग अन्ध भयो सहजहिं सब लोगन लाज गँवाई।
सीख बिना नर सीखत है विषयादिक सेवन की सुरघाई॥
तापर और रचें रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझन की अंखियान में डारत हैं रज राम दुहाई।

शान्ति चाहिये

आज का मानव परेशान है, इसलिये कि वह सब कुछ होते हुए भी, विज्ञान तथा वैभव से सब कुछ प्राप्त करने पर भी, शान्ति नहीं पा रहा है। अशान्ति आज सबसे बड़ा अभिशाप है। जिस धर्म, जिस उपदेश, जिस मार्ग से शान्ति मिले, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। धार्मिक तथा राजनैतिक विवाद में न पड़ कर हमें केवल शान्ति का मार्ग ढूंढ़ना है। भगवान् महावीर ने शान्ति का राजमार्ग त्याग को ही बताया है—

'चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संति संतिकरे लोए पत्तो गईमणुत्तरं॥'

भारतवर्ष का सारा चक्रवर्ती की ऋद्धि से युक्त राज्य का सर्प कंचुकी की तरह क्षणभर में त्याग कर दिया। लोक में शान्ति करने वाले वे शान्तिनाथ प्रभु अनुत्तर गति (निर्वाण=मुक्ति) को प्राप्त हुए।

इसीलिए भगवद्गीता में कहा गया—

'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'

त्याग करने के बाद ही तुरन्त शान्ति मिलती है।
इसीलिए उन्होंने शान्ति को स्थायित्व प्रदान करने हेतु कहा—

'धम्मे हरए बंभे संतितित्थे।'
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो।

धर्म ह्रद (सरोवर) है। ब्रह्मचर्य शान्ति तीर्थ है।
जहाँ स्नान करने से आत्मा निर्मल और शुद्ध बन जाती है।

भगवान महावीर द्वारा—

श्रमण संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा

सौभाग्यमल जैन

□

आधुनिक इतिहासकार की दृष्टि आज से लगभग पाँच हजार वर्षों से पूर्व नहीं जाती। यदि हम इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो हमें इस परिणाम पर पहुँचना होगा कि आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व केवल भारतवर्ष में ही नहीं, समस्त विश्व में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि मानवसमाज अपने किसी उद्धारक की खोज की आवश्यकता अनुभव करता था। बात वास्तव में यही थी कि मानवसमाज की आन्तरिक क्षुधा केवल यज्ञ-यागादिपूर्ण वैदिक संस्कृति से तृप्त नहीं हो रही थी। वेदकालीन ब्राह्मणसंस्कृति में अधिकतर प्रकृतिपूजा थी। मानव अपनी भौतिक समृद्धि के लिए मन्त्रों द्वारा प्रार्थना किया करता था। उसका लक्ष्य भौतिक साधनों की प्राप्ति था। उसके पश्चात् मानवसमाज ने कुछ प्रगति की और उपनिषद्काल में उसने आध्यात्मिक विचार प्राप्त किए। वेद तथा उपनिषद्कालीन ब्राह्मणसंस्कृति का मार्ग प्रवृत्ति-सूचक था। उससे मानव पूर्ण संतुष्ट नहीं था। ब्राह्मणसंस्कृति के अग्रदूत ऋषि, मुनि स्वयं भी प्रवृत्तिमार्ग अपनाते तथा सांसारिक जीवन व्यतीत करते थे। उस समय मानवसमाज को निवृत्ति-सूचक मार्ग का कोई उपदेष्टा प्राप्त नहीं था। ब्राह्मणसंस्कृति के उस युग में ब्राह्मणों की ही श्रेष्ठता थी। वह अन्य वर्ण को अपने से निम्नकोटि का मानता था। शूद्रों को अत्यन्त नीच मान कर उन्हें वेद-श्रवण तक का अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता था। दास-प्रथा वर्तमान थी। बाजार में दास, दासियों का क्रय-विक्रय होता था। महिलाओं की स्थिति दयनीय थी, उन्हें कोई सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। धर्म के नाम पर पशुबलि दी जाती थी। धर्म केवल रूढ़ियों का कंकालमात्र था। ऐसी विषम

परिस्थिति में मानव-समाज अपने किसी मसीहा, उद्धारक की खोज में था। इस परिस्थिति के परिणाम-स्वरूप ही श्रमण-संस्कृति की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। श्रमण-संस्कृति पूर्व में भी थी; किन्तु कालप्रभाव से उस पर आवरण हो रहा था। उसके उद्धार की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। ऐसे समय में भगवान् पार्श्वनाथ ने वाराणसी में आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व एक क्षत्रियकुल से जन्म ले कर इस आवश्यकता की पूर्ति की। उन्होंने श्रमण-संस्कृति को परिष्कृत किया। धर्म के कंकालमात्र रूढ़ियों पर प्रहार किया। मानवसमाज को निवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया तथा मानवमात्र की बराबरी का अधिकार स्वीकार किया। उन्होंने वतलाया कि मानव किसी विशेष कुल, जाति में उत्पन्न होने से ही वह उच्च, नीच नहीं हो सकता, अपितु अपने कर्मों से ही उच्च-नीच, होता है। इस प्रकार उन्होंने जन्मना उच्च, नीच के विचार पर आक्रमण करके तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। दासदासियों का क्रय-विक्रय सामाजिक पाप प्ररूपित किया। यज्ञ की परिभाषा बदल दी। उन्होंने मानव को संदेश दिया कि 'यज्ञ' स्वयं का करो। आत्मयज्ञ तुम्हें आत्मशान्ति देगा। अपनी इच्छाओं की आहुति दे कर आत्मा को प्रगतिपथ पर ले जाना, मानव के लिए श्रेयस्कर है। भगवान् पार्श्वनाथ ने अपने शतायुपूर्ण जीवन में निवृत्ति-प्रधान संस्कृति का खूब विचार किया। उसके परिणाम स्वरूप उनके कई अनुयायी गृहस्थ-जीवन त्याग कर संन्यासी हो गए। जिनको 'श्रमण' नाम से अभिहित किया गया। भारतवर्ष में श्रमण-संस्कृति दिन-प्रतिदिन पल्लवित होने लगी।

भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के पश्चात् श्रमण-संस्कृति ने देश में निवृत्ति-प्रधान मार्ग का विकास किया। वास्तव में 'संस्कृति' के द्वारा ही मानव अपनी आत्मा को संस्कृत कर सकता है। आत्मा को संस्कृत करने का अर्थ यही है कि मानव अपनी आत्मा को सद्गुणों से संस्कृत करके अबाधसुख की प्राप्ति करे; आवागमन रहित मुक्ति प्राप्त करे। मानवसमाज को इसकी पूर्ति प्रवृत्तिप्रधान मार्ग में दिखलाई नहीं पड़ी, इसी के परिणामस्वरूप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा परिष्कृत श्रमण-संस्कृति तथा उनका उपदेशित 'चातुर्याम धर्म' का देश में खूब प्रचार हुआ। प्रत्येक वर्ग के मानव उसमें दाखिल हुए। सर्व-साधारण से ले कर तत्कालीन राजा, महाराजा ने भी उससे लाभ उठाया। भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के पश्चात् २५० वर्ष तक यही क्रम चलता रहा किन्तु कालप्रभाव से पुनः पूर्व परिस्थिति उत्पन्न होने के लक्षण प्रकट होने लगे। मानवसमाज पुनः ब्राह्मण-संस्कृति से ऊबने लगा। मानव समाज सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित होने लगा। हिंसापूर्ण यज्ञ-यागादि का पुनः प्रचार होने लगा। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी मगध देश के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के यहाँ आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व 'वर्द्धमान' का जन्म हुआ। अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य करने के कारण उनको 'म ावीर' कहा जाने

लगा। भगवान् महावीर ने अपने ७२ वर्षीय जीवन से श्रमण-संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित किया। तत्कालीन समाजव्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। यदि यह भी कहा जाये कि भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित मार्ग तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार परिवर्धित तथा परिष्कृत रूप में मानवसमाज को दिया, उसमें और भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए तो अत्युक्ति नहीं। भगवान् महावीर ने तत्कालीन प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरवाद का समन्वय करने के लिए मानवसमाज को 'अनेकान्तदृष्टि' का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने सर्वधर्मसमन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मार्ग को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि—

(१) विचार में अनेकान्त,	(२) वाणी में स्याद्वाद,
(३) आचार में अहिंसा,	(४) सामाजिक न्याय में अपरिग्रह।

वास्तव में भगवान् महावीर को 'श्रमण-संस्कृति' को पुनः प्रतिष्ठित करने में अत्यन्त कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा। भगवान् महावीर के समय में प्रतिकूल परिस्थिति काफी सबल थीं, किन्तु उनकी साधनापूर्ण तपस्या तथा जीवन ने मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उसके परिणामस्वरूप श्रमण तथा श्रावक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रत्येक प्रकार का मानव दीक्षित होने लगा। उच्चशिक्षित वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान, राजा, महाराजा, धनिक, निर्धन सब दीक्षित होने लगे। भगवान् महावीर के समय में पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण संघ व श्रावक-संघ विद्यमान था। दोनों महापुरुषों द्वारा उपदेशित मार्ग में कुछ साधारण-सा अन्तर था। इस कारण भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी 'केशीमुनि' तथा भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य 'गौतम गणधर' में चर्चा हुई। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट 'अनेकान्त दृष्टि' का ही यह प्रताप था कि वह चर्चा अत्यन्त शान्त वातावरण में हुई एवं 'समन्वय' हो सका। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ तथा महावीर द्वारा परिष्कृत श्रमण-संस्कृति आज लगभग तीन हजार वर्षों से अपना कार्य कर रही है तथा मानव की आत्मा को संस्कृत करने में योगदान दे रही है।

इसमें सन्देह नहीं है कि श्रमण-संस्कृति को भगवान् महावीर के समकालीन भगवान बुद्ध का भी पर्याप्त योगदान मिला है। भगवान् बुद्ध स्वयं एक क्षत्रिय राजपुत्र थे तथा भगवान् महावीर से आयु में कुछ कम थे। भगवान बुद्ध ने अपने प्रमुख-शिष्य 'सारिपुत्र' से अपने बोध-प्राप्ति से पूर्व की जीवन-चर्या के सम्बन्ध में तथ्य बताए हैं। उक्त चर्चा पर विचार करने से यह कहा जा सकता है कि यह चर्चा जैन स्थविर मुनियों तथा जिनकल्पित जैनसाधुओं की है। इस पर से कुछ विद्वानों का अनुमान है कि भगवान बुद्ध ने पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा या अन्य श्रमण संघ की परम्परा में साधु-जीवन व्यतीत किया होगा। क्योंकि भगवान बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की परम्परा भारतवर्ष में रही हो, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण

उपलब्ध नहीं हो सकता है। इस पर से यह अनुमान निकलता है कि भगवान बुद्ध ने उक्त जीवन कुछ वर्षों तक व्यतीत किया, उसके पश्चात् उन्होंने मध्यममार्ग निरूपित किया। इस सम्बन्ध में केवल एक विद्वान बौद्ध भिक्षुक स्वर्गीय श्री धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा लिखित पुस्तक 'भगवान बुद्ध' (पृष्ठ ६) में पण्डित धर्मानन्द कोशाम्बी का परिचय आदरणीय काका कालेलकर के शब्दों में उद्धृत करना उचित होगा—

"धर्मानन्दजी इस निर्णय पर पहुँचे कि पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में से ही बौद्ध और जैन यह दो धाराएँ निकली हैं। उनका यह भी अभिप्राय था कि बौद्ध और जैन विचार-पद्धति की बुनियाद में जो दार्शनिक जीवनदृष्टि है, उसके स्वीकार करने से ही समाजवाद और साम्यवाद कृतार्थ हो सकेंगे और मानवजाति का कल्याण करने की साधना आज के मानव के हाथ में आएगी।"

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशों का अनुशीलन किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उनके उपदेशों में विशेष अन्तर नहीं है। उनके द्वारा उपदेशित आचार तथा उसकी भूमिका लगभग एक-सी है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र तथा धम्मपद की कुछ गाथाएँ लगभग समान हैं। ब्रह्मचारी शीतल-प्रसाद जी ने अपने द्वारा लिखित पुस्तक "जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान" में यह निरूपित किया है कि दोनों महापुरुषों द्वारा प्ररूपित तत्वज्ञान में विशेष अन्तर नहीं है। यह प्रश्न अधिक गवेषणा का विषय है। जहाँ तक आचार की भूमिका का सम्बन्ध है, दोनों ने उच्च आधार लिया था। यह स्पष्ट है कि श्रमण-संस्कृति दोनों महापुरुषों के विचारों तथा जीवन से पल्लवित हुई है और समग्र विश्व का कल्याण श्रमण-संस्कृति के उन्नयन से ही हो सकता है। यदि जैन तथा बौद्ध समाज अपने आचार तथा अमल के द्वारा विश्व में दोनों महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट उच्च आदर्श का प्रचार करें तो निश्चित रूप से विश्व वर्तमान स्थिति से उभर सकता है। आज के युग की वर्तमान विषमता, घृणा, नफरत का वातावरण प्रेम तथा स्नेह के वाता-वरण में बदल सकता है। सिद्धान्तों के प्रचार का सबसे उत्तम माध्यम "अमल" होता है। "अमल" के बिना केवल वाणी का प्रचार प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता। यही कारण है कि इतने उच्च सिद्धान्तों के प्रचुर प्रचार के बावजूद विश्व में वर्तमान विषमता, घृणा का स्थान स्नेह तथा प्रेम नहीं ले सकता।

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के जन्म के साथ अन्य देशों में भी कुछ प्रभावशाली हस्तियों ने जन्म लिया। उदाहरण के रूप में यूनान में सुकरात, फारस में जरथुस्त, चीन में लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने तत्कालीन समाज में वैचारिक क्रान्ति की। भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के अवसर पर यह आशा करना अनुचित न होगा कि जैन समाज अपनी ओर से 'अमल' के जरिये श्रमण-संस्कृति के प्रचार, प्रसार का पूर्ण प्रयत्न करेगा।

लगा। भगवान् महावीर ने अपने ७२ वर्षीय जीवन से श्रमण-संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित किया। तत्कालीन समाजव्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। यदि यह भी कहा जाये कि भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित मार्ग तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार परिवर्धित तथा परिष्कृत रूप में मानवसमाज को दिया, उसमें और भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए तो अत्युक्ति नहीं। भगवान् महावीर ने तत्कालीन प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरवाद का समन्वय करने के लिए मानवसमाज को 'अनेकान्तदृष्टि' का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने सर्वधर्मसमन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मार्ग को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि—

(१) विचार में अनेकान्त, (२) वाणी में स्याद्वाद,
(३) आचार में अहिंसा, (४) सामाजिक न्याय में अपरिग्रह।

वास्तव में भगवान् महावीर को 'श्रमण-संस्कृति' को पुनः प्रतिष्ठित करने में अत्यन्त कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा। भगवान् महावीर के समय में प्रतिकूल परिस्थिति काफी सबल थीं, किन्तु उनकी साधनापूर्ण तपस्या तथा जीवन ने मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उसके परिणामस्वरूप श्रमण तथा श्रावक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रत्येक प्रकार का मानव दीक्षित होने लगा। उच्चशिक्षित वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान, राजा, महाराजा, धनिक, निर्धन सब दीक्षित होने लगे। भगवान् महावीर के समय में पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण संघ व श्रावक-संघ विद्यमान था। दोनों महापुरुषों द्वारा उपदेशित मार्ग में कुछ साधारण-सा अन्तर था। इस कारण भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी 'केशीमुनि' तथा भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य 'गौतम गणधर' में चर्चा हुई। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्श 'अनेकान्त दृष्टि' का ही यह प्रताप था कि वह चर्चा अत्यन्त शान्त वातावरण में हुई एवं 'समन्वय' हो सका। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ तथा महावीर द्वारा परिष्कृत श्रमण-संस्कृति आज लगभग तीन हजार वर्षों से अपना कार्य कर रही है तथा मानव की आत्मा को संस्कृत करने में योगदान दे रही है।

इसमें सन्देह नहीं है कि श्रमण-संस्कृति को भगवान् महावीर के समकालीन भगवान बुद्ध का भी पर्याप्त योगदान मिला है। भगवान् बुद्ध स्वयं एक क्षत्रिय राजपुत्र थे तथा भगवान् महावीर से आयु में कुछ कम थे। भगवान बुद्ध ने अपने प्रमुख-शिष्य 'सारिपुत्र' से अपने बोध-प्राप्ति से पूर्व की जीवन-चर्या के सम्बन्ध में तथ्य बताए हैं। उक्त चर्चा पर विचार करने से यह कहा जा सकता है कि यह चर्चा जैन स्थविर मुनियों तथा जिनकल्पित जैनसाधुओं की है। इस पर से कुछ विद्वानों का अनुमान है कि भगवान बुद्ध ने पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा या अन्य श्रमण संघ की परम्परा में साधु-जीवन व्यतीत किया होगा। क्योंकि भगवान बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की परम्परा भारतवर्ष में रही हो, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण

उपलब्ध नहीं हो सकता है। इस पर से यह अनुमान निकलता है कि भगवान बुद्ध ने उक्त जीवन कुछ वर्षों तक व्यतीत किया, उसके पश्चात् उन्होंने मध्यममार्ग निरूपित किया। इस सम्बन्ध में केवल एक विद्वान बौद्ध भिक्षुक स्वर्गीय श्री धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा लिखित पुस्तक 'भगवान बुद्ध' (पृष्ठ ६) में पण्डित धर्मानन्द कोशाम्बी का परिचय आदरणीय काका कालेलकर के शब्दों में उद्धृत करना उचित होगा—

"धर्मानन्दजी इस निर्णय पर पहुँचे कि पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में से ही बौद्ध और जैन यह दो धाराएँ निकली हैं। उनका यह भी अभिप्राय था कि बौद्ध और जैन विचार-पद्धति की बुनियाद में जो दार्शनिक जीवनदृष्टि है, उसके स्वीकार करने से ही समाजवाद और साम्यवाद कृतार्थ हो सकेंगे और मानवजाति का कल्याण करने की साधना आज के मानव के हाथ में आएगी।"

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशों का अनुशीलन किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उनके उपदेशों में विशेष अन्तर नहीं है। उनके द्वारा उपदेशित आचार तथा उसकी भूमिका लगभग एक-सी है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र तथा धम्मपद की कुछ गाथाएँ लगभग समान हैं। ब्रह्मचारी शीतल-प्रसाद जी ने अपने द्वारा लिखित पुस्तक "जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान" में यह निरूपित किया है कि दोनों महापुरुषों द्वारा प्ररूपित तत्वज्ञान में विशेष अन्तर नहीं है। यह प्रश्न अधिक गवेषणा का विषय है। जहाँ तक आचार की भूमिका का सम्बन्ध है, दोनों ने उच्च आधार लिया था। यह स्पष्ट है कि श्रमण-संस्कृति दोनों महापुरुषों के विचारों तथा जीवन से पल्लवित हुई है और समग्र विश्व का कल्याण श्रमण-संस्कृति के उन्नयन से ही हो सकता है। यदि जैन तथा बौद्ध समाज अपने आचार तथा अमल के द्वारा विश्व में दोनों महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट उच्च आदर्श का प्रचार करें तो निश्चित रूप से विश्व वर्तमान स्थिति से उभर सकता है। आज के युग की वर्तमान विषमता, घृणा, नफरत का वातावरण प्रेम तथा स्नेह के वातावरण में बदल सकता है। सिद्धान्तों के प्रचार का सबसे उत्तम माध्यम "अमल" होता है। "अमल" के बिना केवल वाणी का प्रचार प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता। यही कारण है कि इतने उच्च सिद्धान्तों के प्रचुर प्रचार के बावजूद विश्व में वर्तमान विषमता, घृणा का स्थान स्नेह तथा प्रेम नहीं ले सकता।

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के जन्म के साथ अन्य देशों में भी कुछ प्रभावशाली हस्तियों ने जन्म लिया। उदाहरण के रूप में यूनान में सुकरात, फ़ारस में जरथुस्त, चीन में लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने तत्कालीन समाज में वैचारिक क्रान्ति की। भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के अवसर पर यह आशा करना अनुचित न होगा कि जैन समाज अपनी ओर से 'अमल' के जरिये श्रमण-संस्कृति के प्रचार, प्रसार का पूर्ण प्रयत्न करेगा।

महावीर-वाणी की सार्वकालिक एवं सार्वत्रिक उपयोगिता

डॉ० उम्मेदमल मुनोत

☐

डॉ० उम्मेदमल जी मुनोत (लखनऊ) महावीर निर्वाण समिति, उ० प्र० सरकार के सदस्य हैं। आप वर्तमान भौतिक अन्धतम वातावरण में समाज में आध्यात्मिकता एवं नैतिकता लाने एवं युवकों में धर्मक्रान्ति लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। आप श्री अमरभारती के पुराने पाठक तथा युगलक्षी विचारक हैं।—सं० ●

वैदिक परम्परा में बताया गया है कि शब्द ब्रह्म[1] है, वह अजर-अमर है। इसका अभिप्राय यह है कि शब्द का विनाश नहीं होता, वाणी सदैव अमर रहती है। तब प्रश्न हो सकता है कि जब शब्द का विनाश नहीं होता, वाणी सदैव अमर रहती है, तब तो कोई भी शब्द क्यों न हो, कोई भी वाणी क्यों न हो, चाहे वह महान् पुरुषों की हो अथवा अधमजनों की, भगवान् की हो, अथवा पामर-प्राणियों की, दोनों ही अमर होने के नाते परस्पर टकराती रहेंगी, उनका कोलाहल मचा ही रहेगा। फिर वर्तमान में उससे हमें क्या लाभ ? भारतीय संस्कृति में एक बहुत बड़ी बात कही गई है कि पाप पर पुण्य की, असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की, शैतान पर इन्सान की और दानव पर देव की सदैव विजय हुआ करती है। 'सत्यमेव जयते' भारतीय संस्कृति का पावन सिद्धान्तवाक्य है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि देव और दानव दोनों की वाणियों का शब्दशः विनाश नहीं होता, किन्तु जय-पराजय की दृष्टि से दुष्ट दानव की या पामरप्राणी की वाणी सर्वकाल और सर्वक्षेत्र में जन-कल्याणकारी न होने से लोक में अमरता प्राप्त नहीं कर सकती, जबकि महान् आत्माओं की वाणी, जोकि मुख्यतः सर्वक्षेत्र और सर्वकाल में लोक-कल्याणार्थ ही निःसृत हुआ करती है, लोक में मर्यादित, प्रतिष्ठित एवं अमर होती है।

---

१. 'शब्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'—उपनिषद्।

भगवान् महावीर की वाणी, भी उस युग में उत्पीड़न के बीच सार्वजनिक सर्वक्षेत्रीय कल्याणस्वरूप निस्सृत हुई थी, अतः वह युगान्तरकारी एवं अजर-अमर है। भगवान् महावीर की वाणी का, उनके अमृतोपम संदेश का शब्द-शब्द एवं अक्षर-अक्षर प्रत्येक युग में और प्रत्येक क्षेत्र में लोक-कल्याण-कारक है। कोटिशः समस्याओं के जाल में उलझे मानवों के लिये प्राणदायी है। चाहे हम इसे आध्यात्मिक या दार्शनिक रूप में लें अथवा भौतिक या जागतिक रूप में; यह सर्वतोभावेन सर्वज्ञत्व-मर्यादा-समन्विता वाणी है। किसी युगविशेष के लिये नहीं, अपितु युगों-युगों के लिये समानरूप से उपादेय है।

इसे स्पष्ट करने के लिये हमें भगवान् के मंगलमय उपदेशों की गहराई में गोते लगाना होगा, उसके मर्म को समझना होगा, उसका युग-सापेक्ष एवं समीचीनता की दृष्टि से विश्लेषण करना होगा। इस लोक में भगवान् महावीर का आविर्भाव (उत्तार) आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व हुआ था। तब की और अब की मान्यताओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीतियों, जीवन-स्तरीय समस्याओं, युगीन परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर है। आधुनिक युग की भिन्न समस्याएँ हैं, भिन्न मापदण्ड हैं, आचार-विचार में भिन्नता है, फिर भगवान् महावीर के उन प्राचीनतम सिद्धान्तों का आज के युग में क्या कुछ महत्व हो सकता है? वे हमें किस भाँति समस्याओं के दलदल से बाहर निकाल सकते हैं?

यहाँ विचारणीय यह है कि मानव का बाह्य आवरण बदल जाने से मानव नहीं बदल जाता। मानव अन्ततः मानव ही रहता है। ठीक उसी प्रकार समस्याओं के बाहरी कलेवर बदल जाने से समस्याएँ बदल जाती हैं, ऐसा नहीं समझा जाता। भले ही समस्याओं को सोचने, समझने और जीवन में देखने की दृष्टि में परिवर्तन आ जाये, किन्तु मानव की समस्याएँ यथावत् बनी हुई हैं। उसके रहन-सहन, आचार-विचार के तौर-तरीके चाहे बदल गये हैं, किन्तु मानव की मौलिक समस्याएँ—भोजन, वस्त्र, आवास एवं शिक्षा—जिस प्रकार प्राचीन काल में थी; आधुनिक काल में भी वैसी ही हैं। अलबत्ता, क्रमशः बढ़ती हुई मँहगाई, औद्योगिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में राष्ट्रों की बेतहाशा भागती हुई होड़ अवश्य बढ़ गई है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज की कशमकश स्थिति में भगवान् महावीर की वाणी का मूल्य और भी बढ़ गया है। तब एक महावीर थे, आज समस्त मानवों को महावीर बनने का समय आ गया है। इसी में लोक-कल्याण है, अन्य में नहीं।

भगवान् महावीर के लोक-कल्याणार्थ जो उपदेश थे—उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—इन पंच-महाव्रतों (और गृहस्थ के लिए ५ अणुव्रतों) के जीवनव्यवहार में सक्रिय परिपालन पर मुख्यरूप से बल देना होगा। और इन्हीं पाँच व्रतों के सिद्धान्तों में, चाहे समरसतावाद हो, समतावाद हो, सर्वोदयवाद हो अथवा आधुनिक समाजवाद हो—सबका स्वतः समावेश हो जाता है।

यहाँ हम भगवान् की वाणी का इन पंचव्रतों के परिप्रेक्ष्य में युगसापेक्ष विवेचन करेंगे।

अहिंसा—अहिंसा के विषय में भगवान् महावीर का कथन है—किसी भी जीव को त्रास (कष्ट) नहीं देना चाहिये।[२] सभी सचेतन प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है, सुख सबको ही अच्छा लगता है और दुःख बुरा। वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय। अतः किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये।[३] परपीड़ा में लगे हुए जीव एक तो अंधकार की ओर जाते हैं,[४] और दूसरे, इस प्रकार वैर की परम्परा चल पड़ती है। वैर-वृत्ति वाला व्यक्ति सदैव वैर ही करता रहता है। वह एक के बाद एक किये जाने वाले वैर से वैर को बढ़ाते रहने में ही दिलचस्पी रखता है।[५] जो भय और वैर से उपरत हैं, युक्त है, वे किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करते।[६] मानव-जाति की जितनी भी ध्वंसमूलक विकृतियाँ हैं जैसे—वैर, वैमनस्य, कलह, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, दुःसंकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दम्भ, लोभ, लालच, शोषण-दमन आदि—इन सबों को दूर करने का अहिंसा का व्यापक सिद्धान्त है कि क्रोध को क्रोध से नहीं, क्षमा से जीतो। दंभ को दंभ से नहीं, सरलता और निश्छलता से जीतो। लोभ को लोभ से नहीं, संतोष से जीतो, उदारता से जीतो। इसी प्रकार भय को अभय से, घृणा को प्रेम से जीतना चाहिये। अहिंसा प्रकाश की अन्धकार पर, प्रेम की घृणा पर, सद्‌भाव की वैर पर तथा अच्छाई की बुराई पर विजय का अमोघ अस्त्र है। यह वही पथ है, जिस पर चल कर मानव, मानव को मानव समझ सकता हैं। इसके साथ ही यह विश्व के समग्र-चेतन्य को एक धरातल पर ला खड़ी करती है। अहिंसा समग्र प्राणियों में एकता एवं समानता स्थापित करती है।

अहिंसा का जितना बड़ा महत्व प्राचीनकाल में था, उतना ही, बल्कि उससे कहीं ज्यादा महत्व आज के युग में है; आज की परिस्थितियों में हैं। आज आवश्यकताएँ अनन्तमुखी हो चली हैं, जबकि उनकी पूर्ति के साधन सीमित हो चले हैं। ऐसी स्थिति में आज के बदले हुए युग में भगवान् महावीर की अहिंसा सम्मत वाणी का महत्व और

---

२. न य वित्तासए परं।—उत्तराध्ययन २/२

३. (क) सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दूह-पडिकुला पियजीविणो, जीविउकामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं, नाइवाएज्ज कंचन। —आचारांग १/२/३

(ख) सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयति णं॥
—दशवैकालिक ६/११

४. तमाओ ते तंमं जंति मंदा आरंभनिस्सिया। —सूत्रकृतांग १/१/१/१२

५. वेराइं कुव्वइ वेरी, तओ वेरेंहि रज्जति। —सूत्रकृतांग १/८/७

६. न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए। —उत्तराध्ययन ६/७

भी बढ़ जाता है। अहिंसा का यह व्यापक सिद्धान्त सार्वकालिक है। यह प्राचीन युग में भी आवश्यक था, वर्तमान में उससे भी बढ़कर आवश्यक है, और भविष्य में इससे भी ज्यादा आवश्यक रहेगा।

मानवजीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों की, और समस्त राष्ट्रों की समस्याओं, झगड़ों, प्रश्नों एवं मसलों को स्थायी रूप से हल करने के लिए अहिंसा अमोघ साधन है।

सत्य—सत्य जीवन का बहुत बड़ा आधार है। इसे भगवान् महावीर ने 'तं सच्चं खु भगवं' कहा है। इसकी प्राप्ति के लिये व्यक्ति को आत्मा की गहराई में उतरना पड़ता है। सत्य का ऐसा आचरण करने वाला आत्मस्थ व्यक्ति साक्षात् निर्विकार निरानन्द परमात्मस्वरूप हो जाता है। उसे किसी भी प्रकार का राग-द्वेष, हर्ष-विषाद अपने बाहुपाश में आबद्ध नहीं कर पाता।

सत्य की धुरी पर यह जड़-चेतनमय विश्व स्थित है। इसकी प्रक्रिया में थोड़ा-सा भी जब व्यतिक्रम हो जाता है, तो भीषण संहार शुरू हो जाता है। यह सत्य है कि विश्व के समस्त नियम एवं विधान सत्य पर ही प्रतिष्ठित हैं।

भगवान् महावीर के दर्शन में सबसे बड़ी क्रान्ति, सत्य के विषय में यह रही है कि वे वाणी के सत्य की अपेक्षा मन के सत्य को अधिक महत्त्व देते थे। जब तक मन में सत्य की प्रतिष्ठा नहीं हो जाती, मन सत्य के प्रति आग्रहशील नहीं बन जाता, उसमें झूठ, छल, कपट-भरे होते हैं—तब तक वाणी का सत्य, सत्य नहीं माना जा सकता। सत्य का प्रथम सोपान मानसिक पवित्रता और दूसरा वचन की पवित्रता है। इन दोनों से संयुक्त आचरण का व्यक्ति सत्य का सच्चा पुजारी होता है। उसका प्रत्येक आचरण कल्याणकारी होता है।

उदारता और क्षमा सत्य के आचरण के ही दो पहलू हैं। इस प्रकार विनम्र-भाव से विश्व की सेवा करने वाला व्यक्ति सत्य का सच्चा साधक है। सत्य का ऐसा आचरण करने वाला व्यक्ति सत्य के उज्ज्वलतम प्रकाश से उद्भासित होता हुआ, सत्य के वास्तविक लोक में पहुँच जाता है। सत्य की इस विराट् भूमि पर पहुँच कर साध्य स्वयं सत्यमय किंवा सत्यस्वरूप बन जाता है।

ऊपर के इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भगवान् महावीर के सत्य के अर्थ को किसी दर्शन के विगूढ़ पर्याय में न देख कर विश्व-कल्याणक व्यवहारक्षम पर्याय में देखा और उसे जनमानस में प्रतिष्ठित किया जाय। अतएव भगवान् महावीर की इस सत्य की शाश्वत् वाणी की उपादेयता सार्वयुगीन है, अनन्तकाल-पर्यन्त लोकोपकारी रहेगी।

अस्तेय—कोई भी वस्तु, चाहे वह सजीव हो अथवा निर्जीव, उसके स्वामी

के आदेश के बिना उसे कदापि नहीं लेना चाहिये। दाँत कुरेदने का तिनका भी बिना आज्ञा के नहीं लिया जा सकता।[७]

चोरी के बहुत से कारण हैं; जिनमें चार कारण मुख्य हैं। इनमें प्रथम कारण है—बेरोजगारी। काम-धन्धा नहीं मिलने से, बेकार हो जाने से और अपना जीवन नहीं चला पाने से कितने ही व्यक्ति चोरी करना शुरू कर देते हैं। इनमें जो सुसभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य होते हैं, वे तो मरण पसन्द कर सकते हैं, किन्तु चोरी का आचरण नहीं अपना सकते। किन्तु ऐसे व्यक्ति स्वल्प ही होते हैं।

चोरी अपव्यय करना भी सिखाती है। अनेक मनुष्य विवाह, मृतभोज, अथवा अन्य यज्ञादि में अपना पूर्ण शान-शौकत दिखाने के लिये बेशुमार धन, कर्ज ले कर खर्च कर डालते हैं, जिसे बाद में, अपनी सीमित आमदनी से चुका नहीं पाने के कारण चोरी का रास्ता अपनाते हैं।

कुछ लोग कुशिक्षा, कुसंस्कार एवं कुसंगति के कारण भी चोरी करने लग जाते हैं। अतएव अस्तेय का महत्व भी सार्वकालिक एवं जीवनव्यवहार में शाश्वत है। इसका महत्व कदापि कम नहीं हो सकता।

ब्रह्मचर्य—"ब्रह्म" का अर्थ है—आत्मा का शुद्ध भाव, परमात्मभाव और 'चर्य' का अर्थ है—चलना, गति करना, आचरण करना। आत्मा को विकारी भावों से हटा कर शुद्ध परिणति में केन्द्रित करना—ब्रह्मचर्य का पालना करना है। आत्मा की शुद्ध परिणति ही परमात्म-ज्योति है, परब्रह्म है, और इसे प्राप्त करने की साधना का नाम ही ब्रह्मचर्य है तथा इस प्रकार की साधना करने वाले का नाम है—ब्रह्मचारी।

कतिपय व्यक्ति ब्रह्मचर्य का अर्थ स्त्री-संसर्ग से दूर होना—बताते हैं। किन्तु जैनधर्म ब्रह्मचर्य का इतना सीमित अर्थ नहीं लेता। ब्रह्मचारी होने का अर्थ है कि स्त्री का स्पर्श करने से मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह कागज पर छपे सुन्दर रमणी के चित्र को स्पर्श करने से नहीं होता। अंतर्मन में सच्ची निर्विकारता हो तो स्पर्श करने पर भी विकार पैदा नहीं होता। अन्तर्मन की निर्विकार दशा ही वस्तुतः सच्चा ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य किसी प्रकार का बाहरी दबाव या बंधन नहीं, अपितु मन का संयम है। जैनागमों में इस संयम को सर्वोपरि महत्व देते हुए असीम कामनाओं को सीमित करने हेतु विवाह को स्वीकार किया है। इसमें कहा है—विवाह पूर्ण संयम की ओर अग्रसर होने का महत्वपूर्ण चरण है और पाशविक जीवन से निकल कर नीतिपूर्ण मर्यादित मानव-जीवन को अंगीकार करने का साधन है। किन्तु इसमें वेश्या-गमन,

---

७. चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहु।
दंत-सोहणमेत्तं पि उग्गहंसि अजाइया॥

एवं परदारसेवन के लिये कोई स्थान नहीं है बल्कि मैथुनसेवन[८] को अधर्म का मूल और बड़े-बड़े दोषों को बढ़ाने वाला कहा है। इस रूप में भगवान महावीर ने जन-चेतना के समक्ष ब्रह्मचर्य का एक महान् आदर्श उपस्थित किया है, जोकि नैतिकता पर सर्वांशतः आधारित है। इसके बिना मानव का जीवन तेजोहीन, ओजहीन, कांतिहीन एवं एक प्रकार से निष्प्राण हो जाएगा। अतः भगवान् महावीर की ब्रह्मचर्य-सम्मतवाणी भी सार्वकालिक है, इसमें कोई संशय नहीं।

अपरिग्रह—किसी भी वस्तु के प्रति मूर्च्छा का भाव ही परिग्रह का मूल कारण है। परिग्रह का अर्थ है—संग्रह (Hoarding) और अपरिग्रह का अर्थ है-त्याग, किसी वस्तु का अनावश्यक संग्रह न करके उसका जन-कल्याणहेतु वितरण कर देना। कारण यह भी मनुष्य को अहंकार एवं मोहरूपी अंधेरे अथाह भंवर में डुबो देने वाला होता है। यह अर्थ (सम्पत्ति) अनित्य है—चंचल है, बड़े-बड़े अनर्थों का जनक है।[९] धन की परिग्रह-वृत्ति काम, क्रोध, मान और लोभ की उद्भाविका है। धर्मरूपी कल्पवृक्ष को जला देने वाली है। यह न्याय, क्षमा, सन्तोष, नम्रता आदि सद्गुणों को खा जाने वाला कीड़ा है। परिग्रह बोधिबीज (सम्यक्त्व) का विनाशक है और संयम, संवर तथा ब्रह्मचर्य का घातक है। चिन्ता और शोकरूप सागर को बढ़ाने वाला, तृष्णारूपी विष-बेल को सींचने वाला, कूट-कपट का भण्डार और क्लेश का आगार है।

ज्ञानी पुरुष संयमसाधक उपकरणों को लेने और रखने में कहीं भी किसी प्रकार का भी ममत्व नहीं करते। और तो क्या, अपने शरीर तक के प्रति भी ममत्वभाव नहीं रखते।[१०] जो पुरुष सम्पूर्ण कामों (इच्छाकामों और मदनकामों) का त्याग कर ममत्वरहित व अहंकार रहित निस्पृह जीवन बिताता है, वह स्थितप्रज्ञ है।[११] वही अखण्ड शान्ति को प्राप्त करके ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। अतः अपरिग्रह एक महान् व्रत है, जिसका आज के युग में जनकल्याण की दृष्टि से और भी अधिक महत्व है; क्योंकि वर्तमान युग में परिग्रहलालसा बहुत बढ़ी हुई है।

भगवान् महावीर ने अपरिग्रह के विषय में एक बहुत ही बड़ी बात कही है कि अपरिग्रह किसी वस्तु के त्याग का नाम नहीं, अपितु किसी वस्तु में निहित ममत्व-मूर्च्छा के त्याग को अपरिग्रह कहते हैं। जड़चेतन, प्राप्त-अप्राप्त दृष्ट-अदृष्ट,

---

८. मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्गं निग्गंथा वज्जयंति णं॥ दशवैकालिक

९. अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।—शंकराचार्य

१०. अवि अप्पणोवि देहंमि।—दशवैकालिक
नायरंति ममाइयं॥

११. विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति॥—गीता, २, ७.

श्रुत-अश्रुत वस्तु के प्रति ममता, लालसा, तृष्णा व कामना बनी रहती है। तब तक बाह्यत्याग सही माने में त्याग नहीं कहा जा सकता। क्योंकि किसी परिस्थिति विशेष में विवश हो कर भी किसी वस्तु का त्याग किया जा सकता है। किन्तु उसके प्रति निहित ममत्व का त्याग नहीं हो पाता। यही ममत्व संत्रास का कारण है।[१२] यदि लोग वस्तु के अनावश्यक संग्रह को रोकना चाहते हैं, उसका उन्मूलन करना चाहते हैं, तो वस्तु के त्याग से पूर्व वस्तु में निहित ममत्व के त्याग को अपनाना होगा और ऐसा किये बिना अपरिग्रह का पालन न हो पायेगा, इसी कारण भगवान् महावीर ने गृहस्थश्रावकों के लिए परिग्रह-परिमाणव्रत बताया गया है। विश्व के बहुसंख्यक अभावग्रस्त प्राणी त्राण पा सकते हैं।

उपसंहार—ऊपर मैंने भगवान् महावीर के सार्वजनीन, सार्वभौम वाणियों का विहंगम विवेचन किया है। उस विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान् महावीर की वाणियों की शाश्वत महत्व है, चाहे हम उसे आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में देखें, चाहे सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखें अथवा सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में देखें ! युग बदल जाए, युग की मान्यताओं एवं मूल्यों में परिवर्तन आ जाये; किन्तु भगवान् महावीर की वाणी का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा।

जहाँ तक आज के बदलते सामाजिक मूल्यों के बीच भगवान् महावीर की वाणी की भूमिका का प्रश्न है, आज के युग के लिये तो भगवान् महावीर की वाणी कल्पवृक्ष की भाँति महत्वपूर्ण है। भगवान महावीर ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा, जिसका सिर्फ तत्कालीन परिस्थितियों में ही महत्व हो, बल्कि उन्होंने जो कुछ भी कहा उसका महत्व सार्वकालिक है।

इसी कारण उनकी वाणी का और उनके कार्यों का युगों-युगों तक, असंख्य पीढ़ियों तक स्थायी महत्व है। जिस प्रकार हर अन्धकार के लिये प्रकाश का मूल्य सदैव एक समान होता है, ठीक उसी प्रकार आगे आने वाली पीढ़ियाँ जब भी अन्धकार के साये में ग्रस्त हो पड़ती हैं, इन महापुरुषों की दिव्यप्रभापूर्ण वाणियाँ ही, उनके लिये प्रकाशस्तम्भ बनती है, उनका मार्ग प्रशस्त करती है।

आज के संत्रास, कुण्ठा एवं अगणित अभावों से ग्रस्त युग के बीच भगवान् महावीर वाणी का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। आज की इस घुटनभरी परिस्थिति में भगवान महावीर की वाणी त्राण का अमोघ अस्त्र है। अत: आज के युग के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि यह भगवान महावीर की वाणियों को जीवन व्यवहार में अपना कर विश्वबन्धुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम् एवं समता किंवा समाजवादी आदर्श सिद्धान्त को सफल बनाएँ। इसके बिना वर्तमान युग का कल्याण सम्भव नहीं।

---

१२. वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते।

भगवान् महावीर के कुछ दिव्य उपदेश

हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, व्यावर

भगवान् महावीर ने कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष के विभिन्न भागों में विहार कर ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश दिया। उन्होंने अपने उपदेशों में पुरुषार्थ पर ही सबसे अधिक जोर दिया है। उनका स्पष्ट कथन था कि आत्म-विकास की सर्वोच्च अवस्था का नाम ही ईश्वर है और इसलिए प्रत्येक प्राणी अपने को सांसारिक बन्धनों से मुक्त और अपने आपको आत्मिक गुणों से युक्त कर नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा वन सकता है। इसी सिलसिले में उन्होंने बताया कि उक्त प्रकार के परमात्मा या परमेश्वर को संसार की सृष्टि या संहार करने के प्रपंचों में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। जो यह मानते हैं कि कोई एक अनादि-निधन ईश्वर है, और वही जगत का कर्त्ता, हर्त्ता एवं व्यवस्थापक है, उसके सम्बन्ध में भगवान् महावीर ने बताया कि प्रथम तो ऐसा कोई ईश्वर किसी भी युक्ति से सिद्ध ही नहीं होता है। फिर यदि थोड़ी देर के लिए वैसे ईश्वर की कल्पना भी कर ली जाय तो वह दयालु है या क्रूर? यदि ईश्वर दयालु है, सर्वज्ञ है, तो फिर उसकी सृष्टि में अन्याय और उत्पीड़न क्यों होता है? क्यों सब प्राणी सुख और शान्ति से नहीं रहते? फिर यही क्यों न माना जाय कि मनुष्य अपने-अपने कर्मों का फल भोगता है, जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है। ईश्वर को कर्त्ता मानने से हम दैववादी वन जाते हैं। अच्छा होता है, तो ईश्वर करता है, बुरा होता है, तो ईश्वर करता है, आदि विचार मनुष्य को पुरुषार्थहीन वना कर जनहित से विमुख कर देते हैं। अतएव भगवान् महावीर ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ॥

आत्मा ही अपने दुखों का कर्त्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही शत्रु है।

इसलिए दूसरे को तुम्हारा भला या वुरा करने वाला मानना ही मिथ्यात्व है, अज्ञान है। तुम्हें दूसरे को सुख-दुख देने वाला नहीं मान कर अपनी भली-बुरी प्रवृत्तियों को ही सुख-दुःख का देने वाला मानना चाहिये। इसके लिये उन्होंने समस्त प्राणिमात्र को सम्वोधन करके कहा—

सकती। जैसे किसी बीहड़ जंगल में आग लग जाने पर चारों ओर भागता हुआ अंधा पुरुष जल कर विनाश को प्राप्त होता है और पंगु-लंगड़ा आदमी बचने का मार्ग देखते हुए भी मारा जाता है।

भगवान महावीर ने दोनों प्रकार के लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञः न ह्येकचक्रेण रथःप्रयाति।
अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ।

ज्ञान और क्रिया का संयोग ही सिद्धि का साधक होता है, क्योंकि एक चक्र से रथ कभी नहीं चल सकता। यदि दावाग्नि में चलते हुए वे अन्धे और लंगड़े दोनों पुरुष मिल जाते हैं, और अन्धा, जिसे कि दीखता नहीं, किन्तु चलने की शक्ति है, वह यदि चलने की शक्ति से रहित, किन्तु दृष्टि-सम्पन्न पंगु को अपने कंधे पर बिठा लेता है तो वे दोनों दावाग्नि से निकल कर अपने प्राण बचा लेते हैं। क्योंकि अन्धे के कन्धे पर बैठा पंगु मनुष्य चलने में समर्थ अन्धे को बचने का सुरक्षित मार्ग बतलाता जाता है और अन्धा उस निरापद मार्ग पर चलता जाता है और इस प्रकार दोनों नगर को पहुँच जाते हैं और दोनों बच जाते हैं।

इस प्रकार परस्पर में समन्वय करने से जैसे अंध और पंगु की जीवन-रक्षा हुई, उसी प्रकार भगवान् महावीर के इस समन्वयवाद ने सर्व दिशाओं में फैल कर उलझी हुई असंख्य समस्याओं को सुलझाने और परस्पर में सौहार्दभाव बढ़ाने में लोकोत्तर कार्य किया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने परस्पर विरोधी अनेक धर्मों का समन्वय किया। उनके इस सर्व धर्मसमभावी समन्वय के जनक अनेकान्तवाद से प्रभावित हो कर एक महान आचार्य ने कहा है—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स॥

जिसके बिना लोक का दुनियादारी-व्यवहार भी अच्छी तरह नहीं चल सकता, उस लोक के अद्वितीय गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार है।

भगवान् महावीर ने धर्म के व्यवहारिक रूप अहिंसावाद का उपदेश देते हुए कहा—

सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पिय-वहा।
पियजीविणो जीविउकामा णातिवाएज्ज किंचण॥

सर्व प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है, सब ही सुख की इच्छा करते हैं, और कोई दुःख नहीं चाहता। मरना सबको अप्रिय है और सब जीने की कामना करते हैं। अतएव किसी भी प्राणी को जरा भी दुःख न दो और न उन्हें सताओ।

उच्च-नीच की प्रचलित मान्यता के विरुद्ध भगवान् महावीर ने कहा—

जम्म-मत्तेण उच्चो वा णीचो वा ण वि को हवे।
सुहासुहकम्मकारी जो उच्चो णीचो य सो हवे २॥

ऊँची जाति या उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से कोई उच्च नहीं हो जाता है। जो अच्छे कार्य करता है, वह उच्च है और जो बुरे कार्य करता है, वह नीच है।

इसी प्रकार वर्णवाद का विरोध करते हुए भी उन्होंने कहा किसी वर्ण-विशेष में जन्म लेने मात्र से मनुष्य उस वर्ण का नहीं माना जा सकता। किन्तु—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किये कर्म से होता है।

भगवान् महावीर ने केवल जाति या वर्ण का भेद करने वालों को ही नहीं, किन्तु साधु संस्था के सदस्यों तक को फटकारा—

ण वि मुंडिएण समणो ण ओंकारेण बंभणो।
ण मुणी रण्णवासेण ण कुसचीरेण तापसो॥

सिर मुण्डा लेने मात्र से कोई श्रमण या साधु नहीं कहला सकता, ओंकार के उच्चारण करने से कोई ब्राह्मण नहीं माना जा सकता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं बन जाता, और न कुशा (डाभ) से बने वस्त्र पहिनने से कोई तपस्वी कहला सकता है। किन्तु—

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
णाणेणम्य मुणी होइ, तवेण होइ तापसो॥

जो प्राणिमात्र पर साम्यभाव रखता है, वह श्रमण या साधु कहलाता है, जो ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। जो ज्ञानवान है, वह मुनि है और जो इन्द्रिय-दमन एवं कषाय-निग्रह करता है, वह तपस्वी है।

अन्त में भगवान् महावीर ने जाति-कुल-मदान्ध लोगों से कहा—

कासु समाहि करहु को अंचउ, छोपु अछोपु भणिवि को वंचउ।
हल सहि कलह केण सम्माणउ, जहि-जहि जोवहु तहि अप्पाणउ॥

संसार के जाति-कुल-मदान्ध हे भोले प्राणियो, तुम किसे छूत या बड़ा मान कर पूजते हो और किसे अछूत मान कर अपमानित करते हो? किसे मित्र मान कर सम्मानित करते हो और शत्रु मान कर किसके साथ कलह करते हो? हे देवानांप्रिय मेरे भव्यो, जहां-जहां भी मैं देखता हूं, वहां-वहां सब मुझे आत्मित्व ही-अपनापन ही दिखाई देता है।

भगवान् महावीर के समय में एक ओर लोग धन-वैभव का संग्रह कर अपने को बड़ा मानने लगे थे और अहर्निश उसके उपार्जन में लग रहे थे। दूसरी ओर गरीब लोग आजीविका के लिए मारे-मारे फिर रहे थे। गरीबों की सन्तानें गाय-भैंसों के समान बाजारों में बेची जाने लगी थीं और धनिक लोग उन्हें खरीद कर और अपना दासी-दास बना कर उन पर मनमाना जुल्म और अत्याचार करते थे। भगवान् महावीर ने लोगों की इस प्रकार दिन पर दिन बढ़ती हुई भोगलालसा और धन-तृष्णा की मनोतृप्ति को देख कर कहा—

जह इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदी-सहस्सेहिं।
तह जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि॥

जिस प्रकार अग्नि इन्धन से तृप्त नहीं होती है, और जिस प्रकार समुद्र हजारों नदियों को पा कर भी नहीं अघाता है, उसी प्रकार तीन लोक की सम्पदा के मिल जाने पर भी जीव की इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो सकती हैं।

इसलिए हे संसारी प्राणियों, यदि तुम आत्मा के वास्तविक सुख को प्राप्त करना चाहते हो, तो समस्त परिग्रह का परित्याग करो। क्योंकि—

सव्वग्गंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहदि॥

सर्व प्रकार के परिग्रह से विमुक्त होने पर शान्त एवं प्रसन्नचित्त साधु जो निराकुलता-जनित अनुपम आनन्द प्राप्त करता है, वह सुख अतुलवैभव के धारक चक्रवर्ती को नहीं मिल सकता है।

यदि तुम सर्व परिग्रह छोड़ने में अपने को असमर्थ पाते हो, तो कमसे कम जितने में तुम्हारा जीवन-निर्वाह चल सकता है, उतने को रख कर शेष के संग्रह की तृष्णा का तो परित्याग करो। इस प्रकार भगवान् महावीर ने संसार में विषमता को दूर करने और समता का प्रसार करने के लिए अपरिग्रहवाद का उपदेश दिया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने लगातार ३० वर्षों तक अपने दिव्य उपदेशों के द्वारा उस समय फैले हुए अज्ञान और अधर्म को दूर कर सद्ज्ञान और सद्धर्म का प्रसार किया। अन्त में आज से २५०० वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातः-कालीन पुण्यवेला में उन्होंने पावा से निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् महावीर के अमृतमय उपदेशों का ही यह प्रभाव था कि आज भारतवर्ष से याज्ञिकी हिंसा सदा के लिए बंद हो गई, लोगों से छुआछूत का भूत भगा और समन्वयकारक अनेकान्त-रूप सूर्य का उदय हुआ। और इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि बड़े-बड़े वैदिक विद्वानों ने अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार किया।

महावीर के उपदेश का स्वरूप-दर्शन

—मिट्ठालाल मुरड़िया 'साहित्यरत्न'

□

उपदेश देने की आवश्यकता उस समय उपस्थित होती है, जब व्यक्ति अपने सामने प्रत्यक्षरूप से अन्याय, अत्याचार, शोषण, पाखण्ड, संकीर्णता, अन्धविश्वास, हिंसा, धोखेबाजी, स्वार्थसिद्धि और लूटपाट का नग्न नृत्य देखता है तो उसकी अन्तरात्मा तड़फ उठती है। उस हितोपदेश में जनता का कल्याण निहित होता है।

जिस उपदेश से जीवन बदलता है, ऐसा प्रभावशाली उपदेश लोकनायक या महामानव ही दे सकता है। शासकों के उपदेश आतंक से मनवाये और पलवाये जाते हैं, किन्तु वीरात्माओं के उपदेश बिना किसी भय से दिल पर अधिकार करते हैं, मानस बदल देते हैं। उससे भोगी, त्यागी बन जाते हैं, रागी, विरागी हो जाते हैं और अन्यायी, न्यायी हो जाते हैं।

उपदेश क्या है ? उपदेश से क्या होता है ? उपदेश किसे और कहाँ देना चाहिए ? उपदेश का अर्थ है—हित वचन, अच्छी बात और नसीहत। उपदेश शान्ति और संतोष का च्यवनप्रास है, जिससे लाभ ही लाभ होता है। उपदेश चित्त की वह अन्तरालवृत्ति है, जिसमें स्वार्थ, पद, प्रतिष्ठा, लालच और मोह का कोई भाव नहीं रहता है। यह तो निस्वार्थ भाव से लोकहित के लिए अन्तर के स्रोत से फूटता है। उपदेश जीवन का आनन्द है, महामानवों का प्रसाद है, त्यागियों की साधना है। उपदेश मानस की गहरी अनुभूति का उत्स है। उपदेश चलते, फिरते, खाते, पीते उठते, बैठते और सोते हुए और कठिन से कठिन स्थिति में भी दिया जा सकता है। उपदेश से ज्ञानज्योति जगती है। उपदेश से उन्माद और राग-द्वेष हटता है। उपदेश महात्माओं के गहरे अनुभवों का जीवनदीप होता है; जो निरन्तर जलता रहता है। श्रद्धावान पात्र ही उपदेश का अधिकारी होता है।

कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दे कर माया-मोह के सभी पर्दे दो-टुक कर दिये थे, शिष्य, गुरु के उपदेश से अपना सर्वस्व दे देता है, आचार्य और उपाध्याय का उपदेश सुन कर सुश्रावक धर्ममय जीवन व्यतीत कर धन्य हो जाता है। उपदेशों से देश का, समाज का और धर्म का बहुत भला हुआ है। उपदेश दे-देकर सन्तों ने लाखों व्यक्तियों का जीवन-निर्माण किया है। उपदेश से उन्माद उखड़ता है, क्रोध हटता है, द्वेष दूर होता है, मोह-माया मिटती है और अभिमान टूटता है। महावीर ने अपने उपदेशों से जनसामान्य में दया, करुणा, सत्य, सन्तोष, विवेक और धैर्य के भाव भर दिये थे।

महावीर ने उपदेशों से जनता का कल्याण किया है, लोकमानस ऊँचा उठा कर संकीर्णता दूर की है। सत्य-असत्य, दुःख-सुख और हानि-लाभ का ज्ञान कराया है। देशवासियों की नींद उड़ा कर उनकी आत्मा जगाई है।

महावीर के उपदेश और उनके विचारकण आज भी नभोमण्डल में लहरा कर तरंगित हो रहे हैं। वे हमें बुराइयों से बचा कर, मार्गदर्शन दे रहे हैं। अणुबम विनाश और हा-हाकार के कारण बनते हैं तो महावीर के उपदेश शान्ति और सन्तोष का सन्देश देते हैं।

जब हम विवेचन की दृष्टि से महावीर की शिक्षाओं के मुख्य विषय पर विचार करते हैं, तब हमें पता चलता है कि महावीर समानता के हिमायती थे, समता के रक्षक थे, समन्वय के उद्घोषक थे, तितिक्षा के साधक थे, विवेक और शान्ति के दूत थे, कष्टसहिष्णुता के उपासक थे, सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के महाव्रती थे, सौजन्य के बन्धु थे, धर्म के भ्राता थे और इन सबके ऊपर वे वीतरागी थे। रागों के सभी बन्धन तोड़ चुके थे, काम क्रोध की सभी ग्रन्थियाँ दो-टुक कर चुके थे। इसीलिए उनका चित्त सत्यसाधना में रमा, तपस्या में जमा और कष्ट सहिष्णुता में उनका जाग्रत मानस आगे बढ़ कर आनन्दमय हो गया। उनका सारत्व सत्, चित् और आनन्द में गतिशील हो गया। उनकी साधना का सारा कौशल श्रेय से गतिशील हो कर प्रेय बन गया।

महावीर की उदारता और व्यापकता का पता हमें तब चलता है, जब उन्होंने म्लेच्छों, चोरों, डाकुओं, मछुओं, और कुम्हारों को अपने धर्म संघ में दीक्षित कर उनके जाति और कुल को गौरवान्वित किया।

साधनावस्था में उपदेश देते-देते वे चलते रहे, बड़े-बड़े गाँवों और नगरों को पार करते रहे, नदी-नालों को लांघते रहे। आपत्तियों और कष्टों को झेलते रहे। सबसे अधिक कष्ट उन्हें बंगाल में उठाना पड़ा; फिर भी वे निर्भीक हो कर घूम-घूम कर अपने उपदेशों की झड़ी लगाते रहे। क्या बंगाल ? क्या विहार ? क्या उत्तरप्रदेश ?

क्या साकेत ? क्या बनारस ? क्या श्रावस्ती ? और क्या कौशाम्बी। इस बृहद् भ्रमण में वे जितना उपदेश दे सकते थे, जितना कल्याण कर सकते थे, किया। महावीर ने कहा—'धर्म उत्कृष्ट मंगल है, व्यक्ति को युद्ध स्वयं अपने से करना चाहिए, परिग्रह कम करना चाहिए, व्यक्ति को प्रतिक्षण जागृत रहना चाहिए, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की उपलब्धि से ही परमपद प्राप्त होता है। एक के अभाव में दूसरे की पूर्ति अधूरी रहती है। तीनों ही आवश्यक हैं।

महावीर को उपदेश देने की क्यों आवश्यकता पड़ी ? क्या उस समय महावीर की कोटि के कोई महात्मा नहीं थे ? चिह्न से पहिचाने जाने वाले बहुत से व्यक्ति थे। किन्तु कोई मोह-माया में लिप्त था, कोई दर्द में चूर था। कोई धन-ऐश्वर्य में आसक्त था। कोई ऐशो-आराम में मग्न था, महावीर इन सभी प्रक्रियाओं को पूर्णरूप से त्याग चुके थे। उन्हें न उधो का लेना था और न माधो का देना था। उन्हें न शत्रु से कोई द्वेष था और न मित्रों से कोई अनुराग। जो था, वह सच था। महावीर राग-द्वेष को त्याग कर पूर्ण वीतरागी हो गये थे। उन्हें किसी वस्तु की कोई कामना नहीं थी। इसीलिए अनेक महात्माओं के होते हुए भी महावीर का ही प्रभाव पड़ा। कोटि-कोटि जनता के अगुआ महावीर ही बने।

महावीर ने जाति-पाँति और छुआछूत की परम्परा को तोड़ा। समानता के आधार पर समन्वय का उपदेश दिया। महावीर ने कहा-जो राग-द्वेष को जीतता है वही मानवता की, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँचता है। यह सर्वोच्च भूमि वीतरागता और सर्वज्ञता है।

महावीर अपने जीवननिर्माण के लिए अथवा अपने सुख दुःखों के लिए स्वयं को ही जिम्मेवार मानते थे, किसी अन्य शक्ति को नहीं। आत्मबल और आत्मसाधना की अन्तिम परिस्थिति पर विश्वास करते थे। इसीलिए उन्होंने कहा कि आत्म-विकास और चारित्र्य (आनन्दमय स्थित प्रज्ञता) की पराकाष्ठा ही वीरत्व है, परमात्मत्व है, परमेश्वरत्व है और ब्रह्मत्व है।

महावीर ने कहा—जो लालसा और तृष्णा का त्याग नहीं कर सकता है, वह साधना की परमभूमि का निर्वाह नहीं कर सकता है। मोह, माया, लोभ राग और आसक्ति व्यक्ति को कभी नहीं छोड़ती है। व्यक्ति स्वतन्त्र होता हुआ भी इनके बन्धनों से परतन्त्र हो जाता है। व्यक्ति घर, महल, पत्नी, वैभव सब कुछ त्याग सकता है; मगर मोह और राग-द्वेष, अभिमान और लालसा नहीं छोड़ सकता है। किन्तु महावीर के मार्ग में इन दुर्गुणों ने कभी व्यवधान उपस्थित नहीं किया। यह सच है कि तृष्णा और आशा कभी समाप्त नहीं होती है। ज्यों-ज्यों इनकी पूर्ति होती जाती है, त्यों-त्यों ये बढ़ती जाती है। इनका न कोई आदि है, न मध्य है और न कोई अन्त है। ये तो अनन्त हैं।

जिस महावीर ने परिग्रह को पाप कहा, उसी महावीर के उपासक सुवर्ण से लदने में ही अपना गौरव समझते है। परिग्रह पर परिग्रह बढ़ाते जाते हैं। धन जोड़-जोड़ कर तिजोरी में भरते जाते हैं और फिर महावीर की जय बोलते हैं जिस महावीर ने अहिंसा के लिए प्राणोत्सर्ग किया, इसी के उपासक अहिंसा को लेन-देन की, व्यवसाय की और व्यवहार की वस्तु नहीं समझते हैं। जिस महावीर ने नारीजाति के उत्थान के लिए सर्वप्रथम हिमाकत की थी, उसी के उपासकों ने नारीजाति को सोने से लाद कर उसे चलती-फिरती तिजोरी बना रखा है। उसे कहीं भी जाना हो तो सोने की रक्षा के लिए एक व्यक्ति साथ चाहिए। महावीर का सर्वांगीण जीवन सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह में ही व्याप्त था। शिव के लिए साधनारत रहे और सुन्दरम् उनका चरम लक्ष्य था। इसीलिए वे अपने लक्ष्य में सफल हुए।

महावीर ने अहिंसा से जनता का महान् कल्याण किया है। हिंसा न करना, किसी का दिल नहीं दुखाना और किसी को चोट नहीं पहुँचाना ही अहिंसा नहीं है; बल्कि अहिंसा का क्षेत्र तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह हिंसा के किसी अंश को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं कर सकती है। हिंसा, लूटपाट, कटुवचन, कुदृष्टि, घृणा, भेदभाव और संकीर्णता के साथ अहिंसा का कोई सामञ्जस्य नहीं है।

आप व्रत कर लें, उपवास कर लें, नेता बन जावें, अपनी ख्याति का प्रदर्शन करते फिरें, माला पहिन कर जुलूस निकलवा लें और अपने ज्ञान की धाक जमा लें। किन्तु अगर आपका दिल पवित्र नहीं है, भेदभाव, संकीर्णता और स्वार्थ नहीं छोड़ सकते हैं तो सत्य और अहिंसा जीवन में कैसे उतर सकती है? बाजार में वस्तु नहीं है, आपके पास उसका स्टाक है; किन्तु नियत भाव पर आप देना नहीं चाहते हैं। अवसर का लाभ उठा कर एक-एक के पाँच लेते हैं तो यह सरासर अन्याय है; धोखा है! यह आपके भाग्य और पुण्य के प्रताप का फल नहीं है, यह तो आपके लालच और बुद्धि के चक्कर का ही अन्तर है।

महावीर की २५ वीं निर्वाणशती के इस पुनीत प्रसंग पर हम उनकी शिक्षाओं को जीवन में उतार कर व्यवहार में लावें। हमारे पड़ौसी, हमारे मित्र और हमारे हमराही हमारी उदारता और व्यापकता का लाभ उठा कर जैनत्व को जान सकें, महावीर को पहचान सकें और उनकी शिक्षाओं का दैनिक जीवन में उपयोग कर सकें।

तीर्थंकर महावीर की अनेकान्तमयी वाणी और उसका प्रभाव

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

□

महावीर स्वामी स्वयं तीर्थङ्कर बने और उन्होंने दूसरों को भी तीर्थङ्कर बनने की प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने धर्मसाधकों के समाज को साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध संघ के रूप में सुगठित किया। इन्हें ही चतुर्विध तीर्थ कहा गया। तीर्थ से तात्पर्य है संसार-सागर से पार उतरने के लिए धर्ममय संघ अथवा आध्यात्मिक साधना करने वाला एक धर्ममय संगठन। संसार-सागर से तिराने का कारण होने से इसे तीर्थ कहा जाता है। इसलिए चतुर्विध संघ की वह साधना जो मानव के अन्तरतम में उत्पन्न हो कर, उसके जीवन में विकास को प्राप्त कर मोक्ष के रूप में पर्यवसित होती है, तीर्थकल्प है। यह साधना जिस किसी के हृदय में उमंगित हो रही है, वही तीर्थ है और इस साधना को सिद्ध करने वाला तीर्थङ्कर है।

अनेकान्तमयी दिव्यध्वनि—तीर्थङ्कर की वाणी दिव्यध्वनि कहलाती है। वह अनेकान्तमयी होती है। उनकी सिद्धान्त की प्ररूपणा साधना के अनुरूप होती है। इस प्रकार जो ज्ञान भवसागर को पार करने में मार्गदर्शक बना है, वही तीर्थ है। कषायों को जीतने का मार्ग तीर्थ है और यह मार्ग शाश्वत है। हमारी साधना ही तीर्थ है, हमारा निर्मल आत्मज्ञान ही तीर्थ है, हमारी निर्मल चैतन्य आत्मा ही तीर्थ है। यह ऐसा तीर्थ है जहाँ जाति, सम्प्रदाय, लिंग आदि से ऊपर उठ कर केवल विशुद्ध आत्मतत्त्व का निरूपण एवं उसकी प्राप्ति ही साध्य बन जाती है। ऐसी साधना का अनुभवयुक्त ज्ञान ही सच्चा तीर्थ है और वह है—द्वादशांग सप्तभंगात्मक तीर्थङ्कर की दिव्यध्वनि में व्यक्त धर्मोपदेश।

दीर्घप्रज्ञ महावीर—महावीर को आगमों में दीर्घप्रज्ञ कहा गया है। वे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एवं अपरिग्रहरूपी महान् आदर्शों के प्रतीक थे। इन महाव्रतों की अखण्ड साधना से उन्होंने जीवन का बुद्धिगम्य मार्ग निर्धारित किया था और भौतिक शरीर के प्रलोभनों से ऊपर उठ कर आध्यात्मभावों की शाश्वत विजय स्थापित की थी। उनकी त्रिगुप्ति (मन, वाणी और कर्म) की साधना उच्च एवं अनन्त जीवन के लिए थी। उन्होंने अष्टकर्मों के जड़ बन्धन को नष्ट किया और

आत्मा (चैतन्य) के प्रकाश में अपने जीवन को उज्ज्वल बनाया। उनके जीवन में श्री-सम्पन्न सूर्योदय हुआ।

श्री सूर्योदय से प्रकाशित महावीर—महावीर स्वामी का जीवन उस श्री सूर्योदय' से प्रकाशित हो उठा। उनकी धर्मसभाओं में वह प्रकाश विकीर्ण हुआ और वहाँ आए हुए प्रत्येक प्राणी के हृदय में द्वेष, वैर, क्रोध; हिंसा की भावना जाग्रत नहीं होती थी। अतः सिंह, गाय, चीता, हरिण, बिल्ली, चूहा, सर्प, नेवला आदि जातिविरोधी जीव शान्त व निर्भय हो कर साथ-साथ बैठते थे। समवसरण में असंख्य भव्यजीव तीर्थङ्कर महावीर का दिव्य उपदेश सुनने के लिए बड़ी उत्कंठा और उत्साह से आते थे और यथास्थान बैठ कर उनकी दिव्यवाणी सुनते थे। उनकी धर्मसभा में मानव-मानव में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, सभी को समानता से बैठने का अधिकार था।

प्रथम देशना एवं उसकी भाषा—महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि श्रावण वदी प्रतिपदा को खिरी। यह दिन 'वीर शासन के उदय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दिन को शुभ मान कर जैनधर्मप्रेमी वर्ष का प्रारम्भ मानते हैं।

'नंदीश्वर भक्ति' में लिखा है—

सर्वार्द्धमागधीया भाषा; मैत्री च सर्वजनताविषया।

तीर्थङ्कर का उपदेश साधारण जनता की भाषा में होता था। प्रत्येक श्रोता उसे सुगमता से समझ लेता था। उस उपदेश में समस्त तात्विक बातों का विवेचन था, समस्त जगत् का विवरण था, इतिहास का कथन था तथा आत्मा के हितकर, अहितकर, संसार-भ्रमण, कर्म-बन्धन, कर्म-मोचन, धर्म, अधर्म, गृहस्थ-धर्म, मुनि-धर्म, जीव-परिणमन, अजीव-परिणमन, की विशद व्याख्या थी। 'पशुओं को मार कर यज्ञ करना महान् पाप है, उसे धर्म समझना भूल है'—इस विषय को तीर्थङ्कर महावीर ने अच्छे प्रभावशाली ढंग से समझाया। जयधवला में लिखा है—

दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती?
गणिंदाभावादो। सोहम्मिंदेण चेव
गणिंदो किण्ण दो इदो? ण,
काललब्धीए विणा असहेज्जस्स
देविंदस्य तड्ढोयण सत्तीए अभावादो।'

वीरवाणी साधारण जनता की भाषा में खिरी क्योंकि—

बालस्त्री मन्द मूर्खाणां नृणां चारित्र्यकांक्षिणाम्।
प्रतिवोधनाय तत्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः॥

प्रभाव—तीर्थङ्कर महावीर के मर्मस्पर्शी उपदेश को सुन कर जनता को धर्म के वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ और पशु-यज्ञों के विरोध में एक व्यापक लहर फैल गई। विपुलाचल पर प्रथम उपदेश हुआ। वहाँ से जहाँ भी महावीर स्वामी का मंगलमय विहार हुआ, वहाँ के शासक, मंत्री, सेनापति, पुरोहित, विद्वान एवं सामान्यजन उनके अनुयायी भक्त बनते गये। जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार महावीर के उपदेश से अज्ञान, भ्रम, अधर्म, अन्याय, हिंसा-कृत्य आदि पापाचार. साधारण जनक्षेत्र से दूर होता गया एवं निरपराध मूक पशु-जगत् को संरक्षण मिला।

प्रतिष्ठापाठ में तीर्थङ्कर महावीर के मंगल-विहार एवं समवशरण के सम्बन्ध में लिखा है—

इच्छा—विरहितः सोऽपि भव्योपुण्यदयेरितः।
विहारमकरोद् देशानार्यान् धर्मोपदेशयन्।
काश्यां काश्मीरदेशे कुरुषु च मगधे कौशले कामरूपे।
कच्छे काले कलिंगे जनपदमहिते जांगलान्ते कुरादौ।
किष्किन्धे मल्लदेशे सुकृतिजनमनस्तोषदे धर्मवृष्टिम्।
कुर्वन् शास्ता जिनेन्द्रो विहरति नियतं तं य ज्ञेऽहं त्रिकालम्।
पांचाले केरले वाऽमृतपदमिहिरोभद्रचेदिदशार्ण—
वंगांगान्ध्रोलिकोशीनर-मलयविदर्भेषु गौड़े सुसह्ये
शीतांशुरश्मिंजालाऽमृतमिव सभां धर्मपीयूषधारां।
सिंचन योगाभिरामः परिणमयति च स्वान्त-शुद्धि जनानाम्॥

उपसंहार : निर्वाण—अन्त में उन्होंने पावानगर में सरोवरों के मध्य उन्नतभूमि महामणि तले दो दिन योगनिरोध करके अन्तिम गुणस्थान प्राप्त किया और संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट

एक धर्मपथ : दो राही

जिनेशमुनिजी शास्त्री, आगरा

□

अनन्तकाल से प्राणी संसार में मोह और अज्ञान के कारण इधर से उधर चारों गतियों में परिभ्रमण कर रहा है। मोह का आवरण ही सबसे भयंकर और सघन है। उसको तोड़े बिना या उसका क्षय और क्षयोपशम किए बिना कोई भी व्यक्ति अपने जीवन का सही विकास कर नहीं सकता। अज्ञान ही जीव को संसार में आसक्त बनाता है। गीता में कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा है—अज्ञान से आवृत ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान से ही व्यक्ति संसार में आसक्त बनता है—

"अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

जीवन का लक्ष्य :

भ० महावीर ने अपने उपदेश में मानवजीवन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही कि जब तक व्यक्ति को अपने स्वरूप का बोध नहीं होगा, तब तक वह अपने लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ सकेगा। चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो जाय, सर्वदर्शनों, ज्ञान-विज्ञानों की सर्वशाखाओं में भी पारंगत क्यों न बन जाय। जब तक सम्बोधि (अपने आप को जानने-समझने का बोध) नहीं हो जाती, तब तक सब अधूरे हैं। अद्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य शंकर ने कहा था कि ब्रह्म के स्वरूप का बोध होने पर ही मुक्ति होती है। सांख्य-दर्शन भी यही कहता है—पुरुष और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला साधक ही बन्धनमुक्त होता है। भगवान् महावीर ने भी इस बात पर जोर दे कर कहा—कि जो "संबुज्झह किं बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुलहा।" अर्थात्—अरे भव्यजीवो ! अपने आप को जानो, समझो, सम्बोध क्यों नहीं पा रहे हो ? इस लोक में यदि तुमने अपने आप को जाना-समझा नहीं, तो परलोक में तो सम्बोधि बहुत दुर्लभ है।' भ० महावीर के पास गृहस्थ श्रावक बनने आता

---

१. 'दंसणमूलो धम्मो'

या साधु बनने आता वे सबसे पहले सम्यक्‌दृष्टि-सम्बोधि प्राप्त करने का ही उपदेश देते। कोई भी साधक सम्यक्‌दृष्टि के बिना आगे बढ़ नहीं सकता। इसे ही धर्मपथ का मूल कहा है।

विकास-पथ :

जैन-आगम के अनुसार विकास की सीढ़ी चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाती है। वहाँ पहुँच कर साधक भेदविज्ञान के द्वारा यह जान लेता है कि मेरा स्वरूप कर्म-नोकर्म से सर्वथा भिन्न है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन; जड़ पदार्थ हैं, मैं इनसे सर्वथा भिन्न हूँ। अज्ञान एवं मोह के उदय के कारण जीव जो यह मान रहा था कि यह शरीर मेरा है, परिवार मेरा है, घर मेरा है, धन-वैभव एवं अन्य सुख-साधन मेरे अपने हैं। दृष्टि के बदलने पर पर-पदार्थों में रही हुई अपनत्व बुद्धि नहीं रहती। स्व और पर के स्वरूप को और दोनों के भेद तथा संयोग-वियोग के कारण को वह जान लेता है। अपनी दृष्टि को बाहर से हटा कर अपने अन्दर केन्द्रित करने का प्रयत्न करता है। संसार में अपने साथ घटने वाली घटनाओं में कर्त्ता बन कर नहीं, द्रष्टा बन कर रहने का प्रयास करता है। अज्ञान का आवरण हट जाने से उसके सामने लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। अब उसे मार्ग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम एवं सन्देह नहीं रह जाता है। त्यागपथ पर भले ही वह बढ़ नहीं पाता हो, उस पर गति करने का संकल्प तो जागृत हो ही जाता है। यह दृष्टि ही उसके साधन-पथ को प्रशस्त एवं सम्यक् बनाती है। और सम्यक्‌दृष्टि का प्राप्त होना ही जीवन में सब-कुछ प्राप्त कर लेना है।

साधना का पथ :

दृष्टि के सम्यक् होते ही गति भी सम्यक् हो जाती है। विचार की सम्यक् पर्याय होते ही आचार की सम्यक् परिणति हो जाती है, साधना का मार्ग प्रशस्त होता है और उस पर चल करके साधक अपने साध्य को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में पर में स्वबुद्धि का होना, उनमें ममत्वभाव रखना ही मिथ्यात्व है, पाप है। जो पदार्थ अपने नहीं हैं, उन्हें अपना समझना अथवा अपने स्वरूप का सही बोध नहीं होना ही अज्ञान है। इसलिए निश्चय-दृष्टि से अपने ही द्वारा अपने स्वरूप का बोध होना, सम्यक्-ज्ञान है, उस पर श्रद्धा एवं विश्वास होना, सम्यक्-दर्शन है और बाहर से हट कर अपने स्वरूप में स्थित होना अथवा शारीरिक क्रियाओं एवं व्यवहार के चलते हुए भी उन क्रियाओं में न रह कर अपने में रहना ही सम्यक्-चारित्र है। पदार्थों का अस्तित्व अनादिकाल से रहा है और अनन्त भविष्य में भी रहेगा। पदार्थों का रहना या होना कोई पाप नहीं है, परन्तु उनमें ममत्वभाव रखना, उनमें ममता और आसक्ति रखना पाप है। पदार्थों में आसक्ति नहीं रखना और वीतराग भाव में स्थिर रहना ही निश्चयदृष्टि से पूर्ण चरित्र है।

वह सब व्यवहार और क्रिया-काण्ड सम्यक् कहा गया है, जो वीतरागभाव में स्थिर होने में अथवा स्व-स्वरूप में रमण करने में सहायक होता है। इस अपेक्षा से पंच महाव्रत, समिति-गुप्ति एवं अणुव्रतों को सम्यक्-आचार कहा है। क्योंकि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना साधक को विषमभाव से हटा कर समभाव की ओर ले जाती है।

अणुव्रत और महाव्रत :

वैसे देखें तो लक्ष्य और धर्मपथ की दृष्टि से गृहस्थ और साधु में कोई भेद नहीं है। सब का लक्ष्य एक है—कर्म-बन्धन से मुक्त होना। सब का धर्मपथ है—सम्यक्-दृष्टि। सम्यक्-दर्शन, श्रद्धा, निष्ठा एवं विश्वास का ही एक रूप है। उसके बिना कोई भी साधक कितना ही बड़ा क्यों न हो, सम्यक्-चारित्र या साधना के पथ पर नहीं बढ़ सकता। इसलिए दृष्टि का परिवर्तन होना और सम्यक्त्व को प्राप्त करना ही संसारसागर से पार होने का मार्ग है। सभी साधक एक ही धर्म पथ के पथिक हैं। अन्तर राह का नहीं, राह पर चलने की गति का है। एक मन्द गति से चलता है, तो दूसरा तीव्र गति से और तीसरा तीव्रतम वेग से बढ़ रहा है। इसी दृष्टि से आगम में मोक्षमार्ग के साधकों को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक देशव्रत को स्वीकार करने वाला आगारी श्रावक (गृहस्थ) और दूसरा सर्वव्रत स्वीकार करने वाला अनगार-साधु।

भावपूर्वक किया गया कोई भी त्याग छोटा नहीं है। साधक की कुछ सीमाएँ होती हैं। कुछ साधक सम्पूर्ण रूप से हिंसा, असत्य, अस्तेय, विषय-वासना-अब्रह्मचर्य और परिग्रह का परित्याग करके अध्यात्म-साधना में संलग्न हो जाते हैं। कुछ गृहस्थ के दायित्व का पालन करते हुए साधना-पथ पर गतिशील रहते हैं। वे भी दोषों का त्याग करते हैं, एक देश से अथवा कुछ अंश में। उन्हें अपने जीवननिर्वाह के साथ परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों को निभाने के लिए कुछ कार्य करने पड़ते हैं। इस अपेक्षा से साधु के व्रतों को महाव्रत और श्रावक (गृहस्थ) के व्रतों को अणुव्रत कहा गया है।

दोनों प्रकार के साधकों का लक्ष्य एक ही है। और साधना का मार्ग भी एक है—सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चरित्र की आराधना दोनों ही अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप अथवा अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार गति करते हैं। इनके मार्ग में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर है केवल गति का। पथ पर गतिशील साधक गन्तव्य स्थान पर पहुँचेगा अवश्य।

महावीर-निर्वाण

और सामाजिक क्रान्ति

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल,
एम०ए० पी० एच० डी० शास्त्री

☐

भगवान महावीर को १२ वर्ष की तप:साधना एवं कैवल्य के पश्चात ३० वर्ष तक देश के विभिन्न प्रदेशों में विहार करने के पश्चात् निर्वाण प्राप्त हुआ। ३० वर्ष तक सर्वज्ञ महावीर ने देश को विभिन्न क्रान्तियों के माध्यम में नवजीवन एवं नवीन दिशा प्रदान की। उन्होंने देश में अहिंसक क्रान्ति का सूत्रपात किया; इसके माध्यम से अहिंसा की प्राधान्यता को प्रतिष्ठित किया। मानवमात्र को ही नहीं, पशु-पक्षी को भी जीवन में अहिंसा उतारने पर बल दिया। अहिंसा को धर्म का रूप देकर उसके महत्व को प्रस्तुत किया और जीवन के प्रत्येक कार्य में उसकी आवश्यकता पर जोर दिया। सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति में भी मुख्यरूप से अहिंसा का ही पुट रहा। उनका अनेकान्त एवं अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति का ही तो दूसरा रूप है। अनेकान्त सिद्धान्त के माध्यम से उन्होंने सर्व-धर्म समभाव के सिद्धान्त का प्रचार किया। समाज में व्याप्त अशान्ति, साम्प्रदायिकता एवं पारस्परिक मनोमालिन्य को समाप्त किया, और सब में सह-अस्तित्व की भावना पैदा की। जन्मना जातिवाद का भगवान् महावीर ने डट कर विरोध किया था। चारों ही वर्णों के व्यक्तियों को उन्होंने अपने साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध संघ में स्थान दिया। और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को महाव्रत और अणुव्रत के रूप में धर्म को जीवन में उतारना आवश्यक बताया। कर्मों के अनुसार ही आपने व्यक्ति का मूल्यांकन करने का उपदेश दिया था। आपने समवसरण में मनुष्य-मात्र को ही नहीं, पशु-पक्षी तक को प्रवेश करने और बराबरी के स्थान का अधिकार दिया; वहां छूत-अछूत का, ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था। उनकी धर्मसभा में न कोई राजा था, न रंक। उनका समवसरण वर्गहीन था। उनकी धर्मसभा में जहां

राजा श्रेणिक था, वहाँ उनके राज्य का छोटे से छोटा मनुष्य भी उन्हीं के साथ बैठता था। यह प्रथम अवसर था। जब एक सर्वोच्च धर्माचार्य ने किसी शूद्र को गले लगाया हो; और उसे धार्मिक वाणी सुनने का अवसर प्रदान किया हो।

आज उनके २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर देश में उनके सिद्धान्तों की व सामाजिक क्रान्ति की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी उस युग में थी।

लेकिन यह सामाजिक क्रान्ति कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिये साधुओं को आगे आना पड़ेगा तथा श्रावक एवं श्राविकाओं को एक दिशा तक जीवन की उच्छृंखलताओं को त्यागना पड़ेगा।

सामाजिक क्रान्ति के लिये आज के युग का नारा होना चाहिये **'सब महावीर के अनुयायी एक हो जाओ।'** यह नारा हमारी सामाजिक क्रान्ति का एक अंग हो और इसके माध्यम से हम सारे जैनसमाज को एक सूत्र में बाँध सकें। यह नारा किसी राजनीति से प्रेरित नहीं हो, किन्तु शुद्ध सामाजिक क्रान्ति का सूत्र-पात करने वाला हो। यदि इस वर्ष समस्त जैन समाज अपने मनोमालिन्य एवं पारस्परिक झगड़ों को समाप्त कर भगवान् महावीर के उपदेशों को अपने जीवन में उतार कर औरों के समक्ष नजीर रख सके तभी जा कर हमारा महावीरनिर्वाणशताब्दिसमारोह मनाना सार्थक होगा।

आज देश भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट समाज का नव-निर्माण करना चाहता है, जिसमें कोई भी व्यक्ति देश एवं समाज के हितों की उपेक्षा नहीं कर सके। आज तो मानवमात्र को गले लगाने से पूर्ण अहिंसक समाज का निर्माण करने से, तथा ५ अणुव्रतों को जीवन में उतारने से ही उसकी रचना हो सकेगी। ऐसी सामाजिक क्रान्ति के लिये भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव वर्ष से अच्छा कौन-सा वर्ष होगा? यदि इस शताब्दिवर्ष में समस्त जैन अपने भेदों को भुला कर एक हो सके तथा अपना जीवन भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट वचनों के आधार पर निर्माण कर सके तो देश में सामाजिक क्रान्ति का पुनः सूत्रपात किया जा सकता है और हमारे देश की भी कायापलट की जा सकती है।

निर्वाण के पूर्व

महावीर के उद्गार

□

मुनि नरेन्द्रकुमार 'विशारद'
जालना

एक वार गणनायक गौतम स्वामी ने सविनय पूछा—"भन्ते ! जंबू-द्वीप के भरतखण्ड में इस समय अवसर्पिणी-काल चल रहा है। इस अवसर्पिणी-काल में भगवान् के मुखारविंद से प्रकथित अर्हद्धर्म कितने काल पर्यन्त गतिमान रहेगा ?"

समाधान के तौर पर साधनारत प्रभु महावीर ने कहा—'गौतम ! मेरे निर्वाण होने के पश्चात् भी इसी जम्बू-द्वीप के इस भरतखण्ड में प्रचलित अवसर्पिणी काल में विना व्यवधान के मेरे द्वारा व्यवस्थापित यह चतुर्विध संघ एवं धर्म इक्कीस हजार वर्ष तक गतिमान रहेगा। अर्थात् "दुषम" नामक इस पंचम काल की अंतिम घड़ियों तक जिनधर्म के प्रतिनिधि के रूप में एकभवावतारी 'दुपस्सह' नामक अनगार : फाल्गुनी साध्वी, 'जिनदास' श्रमणोपासक एवं 'नागश्री' नामक की श्रमणोपासिका विद्यमान रहेगी, जिनकी अन्तरात्मा रत्नत्रय से आलोकित रहेगी।

माना कि दुषम काल में मिथ्यावाद का अत्यधिक विस्तार एवं फैलाव रहेगा, इस कारण यदा-कदा वीच-वीच में चतुर्विध संघ में शिथिलता का आना स्वाभाविक है। तथापि संघ की व्यवस्था विश्रृंखलित नहीं होगी। वीतराग-प्ररूपित यह जिनधर्म भारतवर्ष में विलकुल लुप्त हो जाय; ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए।"[1]

---
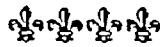
१. जंवूद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमी से ओसप्पिणीए—
देवाणुप्पियाणं केवतियं कालं तित्थे अणुसज्जिस्सति ?
गोयमा ! जम्बूद्दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए—
मम एगवीसं वासं सहस्साइं तित्थे अणुसज्जिस्सति ॥

(भगवतीसूत्र)

भगवान् महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण दिवस पर

समाज को बदलने वाले महावीर के क्रान्तिकारी उपदेश

प्रमोद मधुर, अम्बाला

□
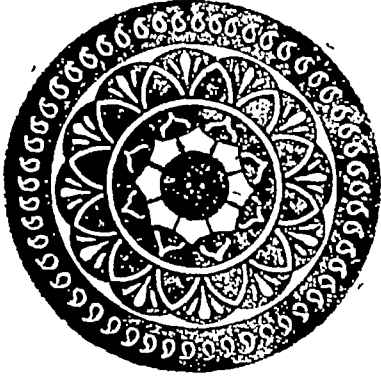
महात्मा गांधी ने भगवान महावीर को अहिंसा का लाल कह कर याद किया है। वह दिव्य आत्मा उस समय पृथ्वी पर आई, जबकि हर ओर पाखण्ड, छल-कपट तथा ऊँच-नीच की ऊबड़-खाबड़ घाटियां जन-जन में अपना अस्तित्व बनाये अडिग खड़ी थीं। महावीर ने इस चट्टान को चुनौती दी तथा इन्हीं ऊबड़-खाबड़ घाटियों में विचरण किया। नंगे पांव, भूखे और प्यासे रह कर वे अपने विचारों का उद्घोष करते रहे। उन्होंने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। वे पहले मनुष्य थे, जिन्होंने पण्डितों की भाषा को पाखण्ड बतलाया तथा जी भर कर भर्त्सना की। उनके विचारों की क्रान्ति ने ऐसी स्वर्णमयी धारा बहाई, जिसने सदैव के लिये भगवान् महावीर को अमर बना दिया। उन्होंने जो कुछ कहा—पहले स्वयं उसका मनन किया। अपने अनुभवों को उन्होंने जीवन में उतारा तथा वे इन्सान से भगवान् कहलाने लगे। यह घटना उस समय की है, जब पूँजीवाद पनप रहा था। हर ओर भय और क्रन्दन का वातावरण था। तभी भगवान् महावीर अभयहस्त ले कर अवतरित हुए कि सम्पूर्ण मानव-जाति एकमत होकर उनके ध्वज के नीचे आ गई। भगवान् महावीर का अपरिग्रहवाद आज भी उतना ही आधुनिक है, जितना उस समय था। महावीर ने कहा था—अपने उपयोग से अधिक वस्तुओं का संग्रह पाप है। व्यर्थ का दिखावा करना पाप है। अपने अधिकारों के लिये दूसरों के अधिकारों का हनन करना पाप है। वे शोषण के विरुद्ध लड़ने वाले प्रथम पुरुष थे। वे इन्द्रियजयी एवं स्थितप्रज्ञ पुरुष थे।

महावीर जान-बूझकर आजीवन खतरों में विचरे। उन्होंने संकटों को स्वयं ही न्यौता दिया। उनका कहना था कि स्वतन्त्रता भीख में प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त किया जा सके। भला, महावीर से बड़ा क्रान्तिकारी कौन होगा! उन्होंने स्पष्ट कहा "जीवहत्या घोर पाप है।"

मार्क्स ने भी राजनैतिक साम्यवाद को अपनाया, जबकि आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व में महावीर ने साम्ययोग (समतावाद) चुना था। दोनों में से महावीर इस माने में अधिक सफल रहे। दोनों के लक्ष्य एक होते हुए भी विचारों में भिन्नता थी। मार्क्स का मत था कि व्यक्ति परिस्थिति के बदलने से स्वयं सुधर जायेगा। वे परिस्थिति पर मनुष्य को निर्भर करते थे। मगर महावीर का कहना था कि व्यक्ति के बदलने से परिस्थितियां स्वयं ही बदल जायेंगी, अर्थात् मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं बल्कि वे उसकी दासी हैं। मनुष्य अपना व्यक्तित्व स्वयं बनाता है, हालात नहीं बनाते। जिस प्रकार कमल कीचड़ में रह कर भी पवित्र रहता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य यदि चाहे तो अपना भाग्य स्वयं बना सकता है। यह विचार कितने आधुनिक प्रतीत होते हैं? यही कारण था कि महावीर मार्क्स से इस व्यवस्था में अधिक सजग थे। मार्क्स के गुरु हीगेल की भी यही मान्यता थी कि क्रान्ति के स्रोत विचार हैं। उन्हें बदलने पर ही व्यक्ति बदलेगा तथा उसके साथ ही व्यवस्था एवं परिस्थितियाँ स्वयं ही बदल जावेंगी।

महावीर ने कहा—

दुप्परिच्चया इमे कामा नो सुजहा अधीर पुरिसेहिं
अह संति सुवया साहू जे तरंति अंतरं वणिया वा।'

अर्थात्—कामभोग मुश्किल से छूटते हैं। अधीर तो इन्हें सहसा छोड़ भी नहीं सकते। परन्तु जो महाव्रतों जैसे सुन्दर व्रतों का पालन करने वाले साधु पुरुष हैं, वे ही इस दुस्तर भोगसमुद्र को तैर कर पार होते हैं—जैसे व्यापारी वणिक समुद्र को।

महावीर शोषण को एक वृत्ति मानते थे, परिस्थिति नहीं; जबकि मार्क्स शोषण को परिस्थिति मान कर चला। यही कारण है कि उनके विचारों की अभिव्यक्ति में महावीर अधिक सफल रहे। महावीर ने श्रावक के जीवन की जो आदर्श परिकल्पना की थी; वह एक शोषण-रहित समाज के स्वरूप को अपने में निहित किये थी।

महावीर जैसा अहिंसक क्रान्तिकारी इतिहास में शायद ही कोई मिले। फिर भी इतिहास के भाल पर आज भी महावीर सारे निषेधों, मर्यादाओं को चूर-चूर करता हुआ नंगे पांव अभी विचर रहा है। महावीर ने भीतर के सारे जहरीले आवरण फाड़ कर समाज एवं राज्य की व्यवस्था को चुनौती दी। महावीर ने राजा की सुख-शय्या, भोग-विलास का परित्याग करके भयानक जंगलों में विचरण किया। राजसी ठाठबाट का त्याग करके वे वनों में भूखे विचरे। उन्होंने भूख का वरण किया तथा भोजन का अजस्र अमृतस्रोत भीतर ही पा लिया। महावीर ने अपनी हर समकालीन जड़ीभूत व्यवस्था को ऐसी तेजस्विता से ललकारा और तोड़ा कि भारत के पोषित चौराहे पर लोग पत्थर ले कर खड़े थे, मगर इस विचारशुद्ध नौजवान का हर कदम खामोश विप्लव और विस्फोट ले कर आया।

महावीर ने कहा—जानो और भोगो : भोगो और जानो। जो-जो त्याज्य है, अयोग्य है, वर्जित है, वह स्वयं ही छूट जायेगा। वाद में उन्होंने कहा—भोगो और भूल जाओ। भूलोगे नहीं तो भोग खंडित हो जायेगा। जो कुछ तुम भोग चुके, उसका पर्याय तो तभी विर्जित विसर्जित हो गया था।

महावीर ने कहा—

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते इमम्मि लोए अदुवा परत्था,
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव।

(उतरा० ४-५)

अर्थात्—प्रमादी पुरुष लोक अथवा परलोक में कहीं भी धन से अपना रक्षण नहीं कर सकता। मोही जीव का विवेकरूपी दीपक बुझ जाता है, जिससे न्यायमार्ग में देख कर भी प्रवृत्त नहीं होता।

तभी महावीर ने अपने प्रमुख शिष्य गौतम को बार-बार सम्बोधित किया है—इसी से कहता हूँ गौतम कि एक क्षण के लिये भी प्रमाद न कर। प्रशिक्षण अप्रमत्तभाव से विचरण कर अर्थात् मिथ्या के मद में आ कर स्वयं को अभिभूत न कर और हर पल जागरूक रह कर जीवनयापन कर।

महावीर कहते हैं कि वस्तु अपने आप में ठीक जैसी है, वैसी ही देखो और जानो। उसके उस स्वभाव की संगति में ही उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करो। क्या यह नितान्त आज के आदर्शवादी कहे जाने वाले मन की ही भाषा नहीं है? आज का आदमी, इन्द्रियों और मन से ग्रहण होने वाली वस्तु की सतही स्थिति को ही सत्य समझ बैठा है। युवा-वर्ग में विद्रोह—शब्द अतिप्रचलित है। यौवन मात्र देह की अवस्था नहीं, वह वस्तु का यथार्थ स्वभाव है। सत्य युवकोचित ऐसी ही पुरातनता, जड़ता, रूढ़िता के खिलाफ विद्रोह करता है। उसका अन्तर्मन चाहता है कि वह यथार्थ की बखियां उधेड़ कर स्वतन्त्र पथ का अनुसरण करे। महावीर ने ब्रह्मचर्य की निम्न परिभाषा दी—अपने और सर्व के अखण्ड भोग में जीओ। जो पहले स्वरूप में अभंग आत्मरक्षण करना सीख जायेगा, वही सर्व में सम्पूर्ण, अभंग, अटूट और रमण कर सकेगा।

यह हर्ष का विषय है कि आधुनिक इतिहासकारों ने महावीर को युगनायक माना है और केन्द्रीय सरकार ने महावीर का २५०० वां परिनिर्वाणदिवस केन्द्रीय स्तर पर मनाने का निश्चय किया है। यह राष्ट्रीय सरकार की उदारता है कि उन्होंने निर्वाण महोत्सव को अहिंसक दिन घोषित कर, उस दिव्यपुंज को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। यही नहीं, कई राज्यसरकारों ने नवम्बर, १९७४ से नवम्बर ७५ तक अहिंसक वर्ष घोषित करके, लोकनायक महावीर के पथ पर श्रद्धापुष्प समर्पित किये हैं। महावीर की शिक्षाएँ शोषणविहीन समाज की स्थापना करने में प्रेरणास्तम्भ बनेंगी।

महावीर भीतर-बाहर, आदर्श-यथार्थ और आचार-विचार की सारी दीवारों और पर्दों को तोड़ कर बेनकाब करने हेतु सड़कों पर नग्न निकल पड़े। युग के इस उन्मुक्त, अक्षुब्ध, निर्वाणप्राप्त एकाकी पुरुष को मैं कोटिशः नमस्कार करता हूँ।

——०——

—मदनलाल जैन, जालंधर

□

(१) करुणामूर्ति प्रभु महावीर इसी भारतवर्ष की पवित्र भूमि में अवितरित हुए थे। अपनी आत्मसाधना के फलस्वरूप उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। वे लोक में प्रकाशस्तम्भ, ज्ञानरूपी नेत्रों के दाता, धर्म के महान् उपदेशक, राग-द्वेष के विजेता, सर्वदर्शी, कल्याण कारक और अहिंसा, संयम व अपरिग्रह के प्रतीक थे। उन्होंने कठोर साधना और तपस्या करके लोककल्याण के लिए जो उपदेश दिये, उनकी उपादेयता एवं आवश्यकता जितनी उस समय थी; आज उससे भी कहीं अधिक है। आज विश्व में घोर हिंसा का जो तांडवनृत्य देखने में आ रहा है, व्यक्ति-व्यक्ति में जो वैमनस्य व कलह दिखाई देता है, उसके निराकरण के लिए भगवान् महावीर ने अहिंसा को ही एक मात्र उपाय बतलाया था।

(२) आपसी युद्ध से शत्रु नष्ट हो सकते हैं—परन्तु शत्रुता नष्ट नहीं होती है, अर्थात् हिंसा को हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता। आज से हजारों वर्ष पूर्व महावीर स्वामी ने संसार के सामने यह बात रखी थी। भगवान् महावीर ने जब जन्म लिया उस समय देश में मंत्रवाद, तंत्रवाद, हिंसक यज्ञों तथा अग्नितपों की कु-प्रथाओं का बोल-बाला था। इन सबको महावीर ने मिथ्या बतलाया और कहा कि धर्म का रहस्य सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा, और मैत्री भाव के साथ जीवन को व्यतीत करने में ही है। धर्म दीन-दुखियों की सेवा में है, धर्म अहिंसा में है। विश्व के जितने भी प्राणी हैं, उन सबको अपनी आत्मा के तुल्य जानो। इन्द्रियों का दमन तथा इच्छाओं का निरोध करो।

(३) आत्मा के साथ ही युद्ध करो। बाहरी शत्रुओं के साथ जूझने से क्या लाभ? आत्मा द्वारा आत्मा को ही जीतने वाला सुखी होता है। सभी प्राणियों में एक जैसी आत्मा है और सभी प्राणियों को अपना-अपना जीवन प्यारा है। इसलिये भय और वैर की भावना का परित्याग कर किसी भी प्राणी को न तो मारा जाय और न ही उसे किसी प्रकार का कष्ट दिया जाय।

(४) 'दूसरों के लिए दुःख सहो-अपने लिए दूसरों को दुःख मत दो' यही श्रेष्ठ धर्म है। अगर जुल्म करना पाप है—तो जुल्म को सहना भी महापाप है। इस

अमर संदेश अहिंसा से विश्वभर के प्राणियों को सुख का अनुभव कराया; धर्म के नाम पर मारे जाने वाले लाखों मूक पशुओं की जानें बचीं, और संसारी लोग भोग से त्याग की ओर झुके। महावीर ने नारा बुलन्द करते हुए कहा, "घृणा पाप से करो, पापी से घृणा मत करो, क्योंकि उसकी आत्मा पवित्र है। वह कभी भी पाप से रहित हो सकती है। अतः दूसरे के प्रति श्रद्धा सुमन बरसाओ, हनन की भावना मत रखो।" जो मनुष्य अपना हित चाहता है, वह पाप को बढ़ाने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों दोषों को सदैव के लिए छोड़ दे। सुख पाने का मार्ग है—सुख देना।

(५) भगवान् महावीर ने घोषणा करते हुए बताया कि तुम जो चाहो बन सकते हो, अपने भाग्य के विधाता तुम स्वयं ही हो, अन्धश्रद्धा (Blind faith) को छोड़ कर आगे बढ़ते चलो। स्त्रीजाति का सम्मान करना आप सबका परम कर्तव्य है। स्त्रीजाति का मान करना देश का मान करना है। भगवान् महावीर, जिन्होंने भौतिकवाद का त्याग कर आध्यात्मिकवाद को अपनाया, जीवन के बहुत ऊँचे आदर्श मानव के सामने रखे। उनकी अमर वाणी में न्याय, एकता और सब प्रकार के भेद-भाव को मिटाने के लिये एक विशेष प्रभाव था।

(६) महावीर ने भारत के विचार को उदारता और आचार को पवित्रता दी, नारीजाति के गौरव को बढ़ाया, इन्सान और इन्सान के भेद-भावों को मिटाया, उसे परमात्मपद की बुलन्दी तक पहुँचाया। ऐसे महान क्षमामूर्ति देवता को हमारा शत-शत वन्दन।
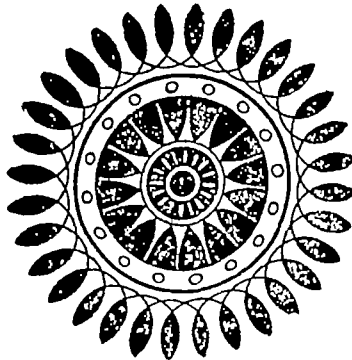
भगवान् महावीर की अनेकान्तमयी उपदेशशैली

श्रीमती रेखा जैन एम० ए० शोधछात्रा

□

भगवान् महावीर की उपदेशशैली अनेकान्तमयी होती थी। यदि विचारों में कहीं मतभेद होता तो उसका विरोध करके वे नहीं समझाते थे। वे मानते थे कि हर एक के पास सत्यांश होता है, किन्तु वह उसी के लिए पूर्णसत्य का दावा करता है। अतः हर एक से एक-एक सत्यांश ग्रहण करना और फिर पूर्णसत्य का संशोधन करना—ऐसी उनकी उपदेशशैली थी। हर एक से वे कहते थे—तुम्हारे कथन में भी सार है। तुम्हारे कथन में भी अमुक दृष्टि से सत्यांश है। इसीलिए महावीर का यह उपदेश है कि हर एक से सत्यांश ले कर पूर्ण सत्य की शोध करने का प्रयत्न करो। यह मत समझो कि हमारे पास ही पूरा सत्य है। जब हर कोई यह कहेगा कि मेरा सत्य ही सत्य है, तो उसमें से संघर्ष पैदा होंगे। इसलिए विरोध या संघर्ष वढ़ाने के वजाय, दूसरों के दृष्टिकोणों को भी समझो और उसमें निहित सत्य को अपनाओ। ठोस सत्य तभी हाथ आयगा, तभी वैचारिक अहिंसा प्रस्फुटित होगी, तभी विश्व में विविध वादों, मतों, पंथों, दर्शनों एवं समुदायों में होने वाले आपसी संघर्ष, वैमनस्य और विरोध समाप्त होंगे; विचारों में सन्तुलन आयेगा। प्रत्येक विषय पर अनेक दृष्टियों से सोचा जा सकता है। हो सकता है कि एक दृष्टि से वह एकरूप में प्रतीत हो और दूसरी दृष्टि से दूसरे रूप में। अतः विचारशील मनुष्य का काम है कि वह विषय का सभी ओर से परीक्षण करे और प्रत्येक पहलू से उसकी मर्यादा का पता लगावे किन्तु एक ही दृष्टि से प्रभावित हो कर उसी दृष्टि को सच मानने का आग्रह रखने में सन्तुलन की कमी होती है। दूसरे पक्ष की दृष्टि को समझने का प्रयत्न करना और उस पक्ष की दृष्टि का खण्डन करने का आग्रह रखने के वदले इस वात का पता लगाने की कोशिश करना कि किस दृष्टि से उसका कहना सच हो सकता है। इस तरह समन्वय की व्यापक दृष्टि से सत्यशोधन में इस वृत्ति का होना जरूरी है। यही सम्यग्दर्शन है। इसी से विश्वराज्य होगा।

साथ ही स्यादवाद का अर्थ यह ही नहीं कि मनुष्य किसी भी विषय पर किसी प्रकार का कोई निश्चय ही न करे, वल्कि उसका अर्थ यह है कि किसी मर्यादित सिद्धान्त को अमर्यादित समझने की भूल न की जाय। वहुत से विचारक और आचारक मर्यादा का अतिरेक करते हैं, या उसको अस्वीकार। फलस्वरूप परस्पर संघर्ष और मतभेद पैदा होते हैं।

भ० महावीर ने अनेकान्त का उपदेश दे कर संसार को समता के पथ पर लाने का प्रयास किया।

महावीर-निर्वाण के बाद अहिंसा-प्रचार

श्री अगरचन्द नाहटा

□

जैनधर्म अहिंसा-प्रधान है। भगवान् महावीर ने सब प्राणियों को अपने समान मानते हुए कहा किसी को भी कष्ट नहीं दिया जाय, मारा नहीं जाय, क्योंकि सभी प्राणी जीना चाहते हैं, सुख चाहते हैं, इस बात को विशेषरूप से प्रचारित किया। अतः भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष्य में जैन समाज और भारत सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि बढ़ती हुई हिंसा को रोका जाय और अहिंसा का अधिकाधिक प्रचार किया जाय, सारे विश्व में निर्वाण-महोत्सव के वर्ष को अहिंसा-वर्ष या 'प्राणि-हत्या-निषेध—वर्ष' घोषित करवाया जाय, जिससे विश्व के लोगों को यह मालूम हो कि भगवान् महावीर का मुख्य सिद्धान्त या उपदेश अहिंसा था। अतः यथाशक्य सब अहिंसाप्रेमी मानव इस ओर प्रयत्नशील हों।

महात्मा गान्धी के समय में अहिंसा का विश्वव्यापी प्रभाव बना था, सारे विश्व के लोग अहिंसा से स्वराज्य—प्राप्ति असम्भव मानते थे, उसे महात्मा गान्धी जैसे युग-पुरुष ने अपने जीवन में ही सम्भव कर दिखाया। हिंसात्मक बड़ी शक्ति के सामने उन्होंने अहिंसा और सत्य का जो आदर्श रखा और सफलता प्राप्त की, वह विश्व के इतिहास में—अद्भुत है। इससे अहिंसा का एक सुन्दर वातावरण बना था। यदि वह कायम रहता और उसे अधिक महत्व दे कर सुन्दर बनाया जाता तो भारत का बहुत अधिक गौरव बढ़ता, पर खेद है, गान्धीजी की भावना, स्वराज्य—प्राप्ति के बाद, उनके ही अनुयायियों में बनी नहीं रह सकी। भारतीय जनता बहुत जल्दी अहिंसा के चमत्कार और आदर्श को भूल गई। भारत सरकार ने भी हिंसा को बहुत बढ़ावा दिया। मांसाहार का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है, बड़े-बड़े यांत्रिक कारखाने हजारों-लाखों प्राणियों की हत्या के लिये खोले जा रहे हैं, मछली और अंडों की उत्पादनवृद्धि के लिये लाखों रुपये खर्च किये जा रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है

कि पाश्चात्य देशों में शाकाहार का प्रचार बढ़ता जा रहा है और भारत में मांसाहार का, जिससे जैनी भी नहीं बचे रह सके।

भगवान् महावीर के समय में यज्ञों में पशुबलि और मांसाहार का काफी प्रचार था। परन्तु जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रभाव से यज्ञ तो बंद हो गये, पर देवी-देवताओं के आगे पशुबलि अब तक भी चालू है। जैनाचार्यों ने एक बहुत बड़ा काम यह किया कि लाखों मांसाहारियों और शिकारियों को उपदेश दे कर जैन बना दिया। इससे करोड़ों प्राणियों को अभयदान मिला, जो जैनी नहीं भी बनें, वे भी अहिंसा-प्रेमी बन गये। मांसाहार एवं पशुबलि और शिकार को लाखों जैनेतर व्यक्तियों ने ही सदा के लिये छोड़ दिया। इस कार्य में—वैष्णवधर्म के प्रचार का भी काफी हाथ है, वैष्णवभक्त भी हिंसा का निषेध करते हैं। भगवान् बुद्ध ने तो एक थोड़ी-सी छूट दे दी कि बौद्ध अपने लिये मारे हुए प्राणियों का मांस नहीं लेते। स्वयं प्राणिवध नहीं करते, पर मांसाहारी लोग जो मांस का भोजन अपने लिये तैयार करते उसे वे ले लेते हैं। इसलिये बौद्धभिक्षु मांसाहार का निषेध नहीं कर पाए। और विदेशों में जहाँ-जहाँ बौद्धधर्म का प्रचार हुआ, वहाँ मांसाहार जिस रूप में प्रचलित था, चलता ही रहा। जैनों और वैष्णवों ने मांसाहार-निषेध का प्रचार बहुत अच्छे रूप में किया, फलतः राजस्थान, गुजरात आदि कई प्रदेशों में तो अहिंसा जन-जीवन में प्रतिष्ठित हो गई। मुसलमानों और निम्नजातियों में मांसाहार चालू रहा।

जैनाचार्यों का हिन्दू-शासकों पर ही नहीं, मुसलमान बादशाहों पर भी अच्छा प्रभाव रहा। क्योंकि विद्वत्ता और प्रचार दोनों बातों में वे बहुत श्रेष्ठ थे। सम्राट् अकबर जैसे ने तो अपने समस्त राज्य में करीब ६ महीने की अमारि उद्घोषणा करवा दी थी, उसने इसके लिए कई फरमान भेज कर अपने अधीन प्रान्तों में प्रचारित किया कि अमुक-अमुक दिन कोई भी जीवहिंसा नहीं करें। खंभात की खाड़ी व समुद्र आदि की मछलियों को भी पकड़ने का निषेध किया गया। यह जैनाचार्यों के महान् प्रभाव का ही सुपरिणाम था। सन्त-संप्रदायों पर भी जैनधर्म की अहिंसा का बहुत प्रभाव रहा है, यह उन संप्रदाय के साहित्य से और प्रचारित नियमों से भली-भाँति स्पष्ट है। जैनाचार्यों ने सप्त कुव्यसन के निषेध पर बहुत बल दिया, जिसमें मांस-मदिरा, शिकार, जुआ, पर-स्त्री-गमन, वैश्यागमन और चोरी को कुव्यसन बतलाते हुए जैनमात्र को तो इन कुव्यसनों से दूर रहने का उपदेश दिया गया। इससे जैनाचार की बहुत अधिक प्रतिष्ठा बढ़ी। सर्वसाधारण से जैनगृहस्थों का आचार बहुत ऊँचा था, तो मुनियों की तो बात ही क्या? भगवान् महावीर और उनके अनुयायी जैनसाधु-साध्वियों ने अहिंसा को जिस रूप में अपनाया और प्रचार किया, वह सारे विश्व के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। उस गौरव को बनाये रखना, बहुत ही जरूरी है।

मानवहृदय में सद्-भावनाओं का स्रोत निरन्तर प्रवाहित रहता है। आवश्यकता है, उस ओर ध्यान दे कर सुप्त शक्तियों को जागृत करने की। यदि ठीक से

प्रभावशाली व्यक्ति समझावें तो हृदयपरिवर्तन होने में देर नहीं लगती, घोर पापी और हिंसक भी धर्मात्मा और अहिंसक बन सकते हैं। सदा से महापुरुषों ने यही काम किया है और उसका परिणाम भी बहुत अच्छा रहा। कोई कारण नहीं कि सत्प्रयत्न निष्फल हो। इस युग में भी हमारे सामने ऐसे अनेक दृष्टांत हैं, जिनमें से कुछ की चर्चा यहाँ पर कर देना आवश्यक समझता हूँ।

महामना विनोबा भावे और जयप्रकाशजी के प्रयत्न से मध्यप्रदेश के अनेक कुख्यात डाकुओं ने आत्म-समर्पण करते हुए सात्विक जीवन बिताने का निर्णय किया और वैसा ही वे कर भी रहे हैं, इधर समीरमुनिजी के उपदेश से हजारों खटीकों ने जैनधर्म को अपना लिया, जिनके घरों में निरन्तर पशुहत्या होती और मांस पकता व बिकता था; वे आज पूरे शाकाहारी बन गये हैं। आचार्य नानालालजी के उपदेश से बलाईजाति वालों ने हजारों की संख्या में अहिंसा धर्म अपना लिया है, गुजरात के बोडेली क्षेत्र में हजारों क्षत्रिय परमारों ने मांस-भक्षण और शिकार आदि छोड़ कर अहिंसाधर्म को अपनाया है। आचार्य तुलसी आदि के उपदेश से हजारों व्यक्ति आज भी दुर्व्यसनों से मुक्त हो रहे हैं, हरिजन आदि बहुत से लोग सात्विक संस्कारों से प्रभावित हो रहे हैं। मुनि जनकविजयजी पंजाब-हरियाणा में मद्यमांसनिषेध का बड़ा अच्छा काम कर रहे हैं, अब भी बहुत से व्यक्ति अहिंसाधर्म को अपनाने के लिये तैयार-से हैं, त्यागी मुनियों के उपदेश की अपेक्षा है।

कुछ वर्ष पहले बम्बई में चित्रभानुजी ने वहाँ के नगरपालिका के अध्यक्ष और सदस्यों को प्रभावित करके वर्ष में कुछ दिन पशु-हत्या बन्द करवा दी थी, मध्यकाल में जैनों के प्रयत्न से कई राज्यों और नगरों में 'अगतों' का पालन किया जाता था। उन दिनों पशु-हत्या तो दूर, लोहार आदि भट्टियां भी नहीं जलाते थे। पर्युषण आदि में तो १० दिन तक पशुहत्या बहुत से स्थानों में बन्द थी। आज भी प्रयत्न किया जाय तो अनेक राज्यों में वर्षभर में २०-३० दिन कसाई-वाड़े बन्द करवाये जा सकते हैं, क्योंकि अनेक राज्यों के नेता, मन्त्री और सदस्य इसके समर्थक मिल जायेंगे। लाखों हिन्दू भी इस पवित्र कार्य में साथ देंगे, बहुत से मुसलमानों का सहयोग मिल सकता है, क्योंकि उन सब के हृदय में 'पशु-पक्षी-हत्या महान् पाप है' यह संस्कार तो बना हुआ ही है। बम्बई से प्रकाशित 'जिन संदेश' में एक सिन्धी की आत्मकथा छपी थी, उसमें जो बहुत बड़ा मांसाहारी था और मांस बेचता था, वह जैन मुनियों के उपदेश से कैसे पक्का जैन बन गया, इसका प्रसंग छपा था, भारत के कई प्रान्तों में इन सिन्धियों के कारण पशुहत्या और मांसाहार बढ़ा है। यदि जैन मुनि मांसाहारी व्यक्तियों के घर-घर में घूमें तो हजारों लाखों व्यक्ति अवश्य ही मांसाहार छोड़ देंगे, इससे लाखों प्राणियों को सहज ही अभय दान मिलेगा।

शिकार के दुर्व्यसन से भी प्रतिवर्ष लाखों पशु-पक्षी मारे जाते हैं। कई पशु-

पक्षियों की तो जातियां ही समाप्त हो रही हैं। अतः वन-संरक्षक-विभाग उन पशु-पक्षियों की हिंसा नहीं की जाय, इस तरह का प्रचार कर रहा है।

अभी-अभी 'प्रबुद्धजीवन, में इलेस्ट्रेटेड वीकली से—एक समाचार खुशवंशसिंह ने उद्धृत किया है कि गुजरात के मुख्यप्रधान चिमन भाई पटेल से उनके मित्र मिले, और मुख्यमन्त्री से कहा कि भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण-महोत्सव आ रहा है। इस उपलक्ष्य में आप गुजरात सरकार से सन् १९७४ का वर्ष 'अहिंसावर्ष, के रूप में घोषित करें, बहुत से व्यक्ति जो बन्दूकों आदि से पशु-पक्षियों का शिकार करते हैं, उन पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, रेस्टोरों में शिकार की बानगी के रूप में तीतर-हिरन आदि का मांस परोसा जाता है, उस पर भी प्रतिबन्ध लगाया जाय। गुजराती लोग बहुत बड़े अंश में निर्मांसाहारी ही हैं। जैनधर्म का वहां पर काफी प्रभाव है। गान्धीजी भी वहीं के थे। अतः हिंसा-निवारण के सम्बन्ध में गुजरात सरकार पहल करें। उसका अनुकरण अन्य राज्य भी करेंगे, अपने मित्र की इस शुभ-प्रेरणा से उन्होंने अपने साथियों से परामर्श करके १९७४ के वर्ष में शिकार पर प्रतिबन्ध की योजना स्वीकृत की है, एक व्यक्ति की थोड़ी-सी प्रेरणा से यह काफी अच्छा काम हो गया, पशुबलि तो वहां बन्द हो ही गई है। हमारे आचार्यों, मुनियों और प्रभावशाली श्रावकों को अपने सम्पर्क और प्रभाव का उपयोग करके सब प्रान्तों और व्यक्तियों से पशु-पक्षी-हत्या पर प्रतिबन्ध लगवा देना चाहिये और १९७४ का वर्ष विश्वभर में 'अहिंसा वर्ष' के रूप में मान्य करवाने का प्रयत्न करें। कुछ स्थानों में सम्भव है इस कार्य में पूरी सफलता नहीं मिलेगी। पर जितनी भी मिल सके, उसके लिये तो पूरा प्रयत्न होना ही चाहिये। अभी से सारा जैनसंघ इस कार्य में पूरी शक्ति लगाये, तो अवश्य ही महावीर को यह सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित होगी। इससे करोड़ों प्राणियों की रक्षा होगी। लाखों व्यक्ति मांस-मदिरा आदि छोड़ कर आत्म-कल्याण के भागी बनेंगे।

मृत्युंजयी महावीर का
निर्वाण के सन्दर्भ में सन्देश

सुरेश 'सरल' जबलपुर

□

तुम्हारे कलुषित कार्यकलाप, करायेंगे जब तुम्हें विलाप।
तुम्हारे मन के सारे पुण्य, न भरमा पायेंगे सन्ताप ॥

तुम्हारे मधुर-मधुर व्यवहार
तुम्हारे वचनों का व्यापार
धरा रह जायेगा उस रोज
मृत्यु का जब होगा आहार।

तुम्हारे गोपनीय वे काम
तुम्हारे बहुचर्चित श्री नाम
एक दिन उध्दृत होंगे सहज
किसी के नाम, किसी के काम।

तुम्हारी दुनियाँ के सब लोग
दीन या भोग रहे जो भोग
सभी को एक धार बहना
तटों का त्याग हृदय से लोभ।

तुम्हारे रिश्तों के सब नाप
अरे नप जावेंगे चुपचाप
न होगा कोई किसी का मीत
समझ जायेगा सब जग आप।

दैहिक बन ठन में तल्लीन, तुम्हें क्या देगी दुनिया दीन।
तुम्हें होगा तब प्राणाधार एक पल प्रभु-वन्दन में लीन ॥

वीरायतन
चतुर्थ खण्ड
श्री अमर भारती : भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक

में, प्राचीन मौलिक संस्कृति की भावना को ध्यान में रखते हुए युगानुसारी चिन्तन के आलोक में, जीवन के समस्त पहलुओं को स्पर्श करने वाली विचारपद्धति के आधार पर वीरायतन का कार्य होगा।

लगभग आठ-दस वर्ष से निर्वाण-महोत्सव के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी। समितियों के निर्माण की चहल-पहल भी हो रही थी, पर कुछ हुआ नहीं था। ऐसे समय में **वीरायतन योजना**, जो जन-कल्याणी महत्वपूर्ण योजना है, एतदर्थ सर्वप्रथम स्पष्ट रूप-रेखा के साथ जनता के समक्ष आई है। यह अपने आप में एक सर्वांगीण स्थायी रचनात्मक योजना हैं। यही कारण है कि जैन तथा जैनेतर जनता में इसे आदर, आकर्षण तथा सहयोग मिला है, मिल रहा है।

वीरायतन का उद्देश्य

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक विकास, अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न।

आध्यात्मिक विकास

- सभी धर्म-परम्पराओं का समन्वयात्मक शैली से उच्च स्तरीय अध्ययन।
- प्राचीन योग और आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के आधार पर ध्यान और समाधि के प्रभावकारी प्रयोग।
- मनोविश्लेषण के आधार पर अन्तर्वृत्तियों का संशोधन।
- आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विकास हेतु प्रभावशाली योग्य प्रचारक, शिक्षक एवं साधकों के लिए ट्रेनिंग कालेज।
- व्रत, नियम, तप, उपासना एवं योग-साधना के लिए अद्यतन-साधन-सम्पन्न एक विराट् साधनाकेन्द्र।

सामाजिक विकास :

- प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश आदि भाषाओं के महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथों अद्यतन पद्धति से अनुसंधान, संपादन, संशोधन तथा प्रकाशन।
- सर्वसाधारण जनता के हितार्थ सरल सुबोध नैतिक एवं सांस्कृतिक साहित्य तथा चिकित्सा-केन्द्रों का निर्माण।
- केन्द्रीय स्तर का विशाल ज्ञान-मन्दिर, ग्रन्थालय।
- भारत की सांस्कृतिक जीवनधारा के अनुकूल बालक-बालिकाओं को संस्कारी शिक्षण देने के लिए छात्रावास एवं आदर्श विद्याकेन्द्रों की उपयुक्त व्यवस्था, जहाँ बालक-बालिकाएँ प्रारम्भ से ही निर्मल एवं मुक्त वातावरण में जीवनोपयोगी शिक्षा के साथ उच्च संस्कार प्राप्त कर सकें।

- भ्रष्टाचार, दुर्व्यसन, मांस-मद्य, पशुबलि तथा अन्धविश्वास आदि का धार्मिक, सामाजिक एवं राजकीय स्तर पर निराकरण।
- जैन-अजैन परम्पराओं में परस्पर सौहार्द, प्रेम, सद्भाव एवं सहयोग-भावना का प्रसार।
- साधुओं एवं साध्वियों को अतीत के साथ वर्तमान तथा भविष्य को भली-भांति स्पर्श करने वाले शिक्षण और प्रशिक्षण देने की योग्य व्यवस्था।
- धर्म तथा समाज के अपेक्षानुकूल एक ऐसे प्रभावशाली प्रशिक्षणप्राप्त त्यागीवर्ग का गठन, जो साधु और गृहस्थ के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी बन सके और जो स्वयं के जीवन में धार्मिक विचार एवं आचार का विकास करने के साथ-साथ यत्रतत्र देश-विदेश में भी धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों का प्रभावोत्पादक प्रचार करने में सक्षम हो।
- प्रशासन, शिक्षण तथा व्यापार आदि क्षेत्रों से अवकाशप्राप्त (रिटायर्ड) लोगों के लिये एक ऐसे सेवा-साधना-केन्द्र का निर्माण, जहाँ निवृत्त जीवनसम्बन्धी उचित शान्तिलाभ के साथ, वे समाज को भी अपने परिपक्व ज्ञान एवं अनुभव का न्यायोचित लाभ दे सकें।
- सर्वसाधारण जनता को स्वाश्रयी जीवन-यात्रा के लिये समयानुकूल शिल्प एवं कला आदि का प्रशिक्षण।

राष्ट्रीय विकास :

- प्रान्तीयता, जातीयता एवं साम्प्रदायिकता आदि से सम्बन्धित संकीर्णता एवं उत्तेजना के विरुद्ध आध्यात्मिक तथा नैतिक स्तर का विवेकपूर्ण शान्ति-अभियान।
- समग्रराष्ट्र में भावनात्मक एकता के लिये अखण्ड सांस्कृतिक मूल्यों की प्रस्थापना।
- राष्ट्र के मध्य एवं निम्नवर्ग में व्याप्त अभाव, गरीबी और बेकारी के निरसन हेतु रचनात्मक प्रयत्न।
- कारागार (जेल) तथा प्राणदण्ड आदि से सम्बन्धित जघन्य अपराधों की मनोवृत्ति को बदलने का प्रयास।

जागतिक विकास :

- विश्वहित की दृष्टि से किए जाने वाले वैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि अनुसन्धानों के प्रचार-प्रसार में सक्रिय सहयोग।
- लोकतन्त्र के व्यापक अर्थ में स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के लिये जन-भावना का निर्माण।
- युद्ध तथा अनियन्त्रित शस्त्रनिर्माण आदि जनसंहारक प्रवृत्तियों पर योग्य

प्रतिबन्ध के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सक्रिय प्रयत्न तथा प्रसंगवश ऐसा ही अन्य भी कुछ !

वीरायतन की २१ कार्यधाराएँ :

वीरायतन की संभावित मुख्य २१ कार्य-धाराएँ हैं। चिन्तन चल रहा है। स्वप्न लम्बे देखे जा रहे हैं। समाज में यदि कोई नया विभ्रम न खड़ा हुआ और मुक्त सहयोग मिलता रहा, तो बहुत कुछ करने के संकल्प हैं।

(१) प्राथमिक पाठशाला
(२) स्कूल लड़कों के लिए
(३) स्कूल लड़कियों के लिए
(४) कॉलेज लड़कों के लिये
(५) कॉलेज लड़कियों के लिये
(६) छात्रावास लड़कों के लिये
(७) छात्रावास लड़कियों के लिये
(८) प्राकृत यूनिवर्सिटी
(९) साधना-केन्द्र
(१०) स्वाध्याय-मन्दिर (पुस्तकालय)
(११) आगम-प्रकाशन
(१२) जीवनोपयोगी सुगमसाहित्य प्रकाशन-केन्द्र
(१३) शोध-संस्थान
(१४) आगम-मन्दिर
(१५) पुरातत्व-संग्रहालय
(१६) निवृत्ति-आश्रम
(१७) धर्मपरम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन
(१८) गोसदन (मूक प्राणिरक्षा केन्द्र)
(१९) उद्योगकेन्द्र
(२०) कलाकेन्द्र
(२१) चिकित्सालय (हॉस्पिटल)

कार्य-विस्तार के साथ संस्था को और भी विकसित किया जा सकेगा। उपरि-निर्दिष्ट कार्यक्रम में समयानुसार उचित संशोधन भी संभव है।

स्कूल, कॉलेज या छात्रावास आदि अब तक के घिसे-पिटे पुराने संस्करण नहीं होंगे, अपितु पुराने और नये के संगम पर कुछ नया ही सृजनात्मक रूप लेंगे। वर्तमान शिक्षणपद्धति के दोषों से बच कर एक सचेतन सांस्कृतिक चेतना जगाना ही उक्त शिक्षणसंस्थाओं का मूल उद्देश्य होगा। इसके लिये समय पर देश के मूर्द्धन्य शिक्षा-शास्त्रियों से सम्पर्क साधा जाएगा।

कार्य-संचालन पद्धति की रूपरेखा :

कार्य-संचालन के सम्बन्ध में काफी गहराई से सोचा जा रहा है। क्या करना है, यह तो निश्चित हो गया है, परन्तु कैसे करना है, यह अभी विचारमंथन की स्थिति में है। हम चाहते हैं, वह केवल आदर्श-मात्र ही न रहे, अपितु ठोस व्यावहारिक रूप लें। काट-छांट हो रही है। फिर भी ऐसा कुछ निश्चित हो रहा है कि एक केन्द्रीय संघ होगा, जिसमें भारत के विभिन्न स्थानों के प्रमुख व्यक्ति होंगे। संस्था के संविधान के अनुसार यह संघ कार्य-संचालन करेगा। वीरायतन के अन्तरंग स्थिति एवं कार्य-नीति निश्चित करने का दायित्व भी इसी संघ का होगा। संस्थाओं पर नियन्त्रण, निरीक्षण और अन्तिम निर्देशन एवं आर्थिक प्रवन्ध आदि केन्द्रीय संघ के अधीन होंगे। सुविधानुसार स्वतन्त्र तदर्थ कार्यवाहक समितियां भी कार्य करेंगी।

वीरायतन का केन्द्र : राजगृह में :

वीरायतन के लिए स्थान भगवान् महावीर से सर्वाधिक सम्बन्धित पुरातन मगध और आज के विहारप्रदेश में स्थित 'राजगृह' को चुना है। राजगृह भगवान् महावीर की तपोभूमि, साधनाभूमि और धर्मप्रचारकभूमि है। श्री इन्द्रभूमि गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, अन्य सभी गणधर, अतिमुक्तकुमार, शालिभद्र, धन्ना, स्कन्दक अनेक साधकों की यह निर्वाणभूमि हैं।

ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक कई दृष्टियों से राजगृह को वीरायतन के लिए उपयुक्त समझा गया है। वहीं इसका प्रमुख स्थान रहेगा।

वीरायतन की भूमि का दृश्य

एक भव्य योजना, अभियान एवं आह्वान

—अजित मुनि 'निर्मल' इन्दौर

□

पानी की कुछ संचित बूँदों से उसकी विराट्ता का मूल्यांकन किया जा सकता है। इसी प्रकार योजना की कार्यान्वितिरूप बिन्दुओं से उसकी विराट्ता एवं व्यापकता का विहंगावलोकन किया जा सकता है; बशर्ते कि उस योजना की प्रक्रिया तथा उसकी ऊर्जा के स्रोत उत्तम हों। इसी तथ्य-सूत्र के संदर्भ में एक सर्वांगीण सर्वक्षेत्रस्पर्शी व्यापक योजना को विराट्रूप देने हेतु हम सबको विचार करना है और निष्ठा के साथ जुटना है।

योजना की व्यापकता एवं कार्यान्विति

भ० महावीर के २५०० वें वार्षिकी पर्व पर समग्र जैन-समाजकीय एवं राजकीय स्तर पर अनेकविध योजनाएँ बनी हैं और उन पर यथाशक्ति रचनात्मक कार्य भी हो रहे हैं। किन्तु ठोस उपलब्धि की ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया है। भव्य योजना वही जो समाज में आमूलचूल परिवर्तन कर दे, समाज का कायाकल्प कर दे।

राष्ट्रसंत श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म० ने विश्व के सभी वर्गों के लिए बटबीज के रूप में वीरायतन योजना की अमरपीठ का श्रीगणेश किया है। वीरायतन बालिका संघ ने इस योजना को अधिकाधिक प्रचारित-प्रसारित करने में अब तक भगीरथ पुरुषार्थ किया है, इसके फलस्वरूप वीरायतन-योजना ने बालक, युवक, वृद्ध, बालिका, युवती एवं महिला आदि सभी वर्ग के लोगों के हृदय में स्थान पा लिया है, सबने इसका सम्मान किया है, परन्तु अभी इसे विश्वजनीन रूप देना शेष है, जिसके लिये हम सभी को अपनी-अपनी कर्तव्य-सीमा में दायित्व लेकर कार्यरत होना पड़ेगा। वैसे तो राजगृही की तीर्थंकरीय भूमि पर साध्वीगण द्वारा वीरायतन-वटवृक्ष का सिंचनकार्य प्रारम्भ हो चुका है, मगर इतने भर से कार्य परिणत नहीं हो जाता है। अभी तो पथ बनाते चलना है। मार्ग लम्बा है। लक्ष्य पर पहुँच कर ही हमें दम लेना है। तभी वीरायतन का वटवीज विराट्ता में पल्लवित होगा और उसका लाभ सर्वांगीण, सार्वदेशिक एवं सार्वजनीन होगा।

अभियानक्रम एवं आह्वान

वैसे तो उपाध्यायजी म० ने अपने व्यापक चिन्तन का नवनीत 'वीरायतन योजना' के रूप में दिया है और श्री अमरभारती ने इस योजना का प्रारूप आम जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। किन्तु फिलहाल तो इस योजना को मूर्तरूप देने के लिए कुछ साधु-साध्वियाँ, कुछ श्रावक-श्राविकाएँ, वीरायतन बालिका संघ एवं श्री अमरभारती व सम्मति ज्ञानपीठ आदि जुटे हुए हैं। अतः मेरी राय में लक्ष्य तक पहुँचने में अभियानक्रम प्रथमतः इस प्रकार हो—

(१) सम्मतिज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य के अल्पमूल्यीय संस्करणों का वृहद् जत्था जन-जन के हाथों में पहुँचाने का संकल्प किया जाए।

(२) उपाध्यायश्रीजी के प्रवचनों एवं विचारों के विशेष प्रकाशनों का मुद्रण हो, एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य का पुनर्मुद्रण हो।

(३) ज्ञानपीठ के माध्यम से लोकभोग्य व संस्कारप्रेरक साहित्यमाला की नयी सिरीज प्रकाशित की जाए।

(४) वीरायतन योजना में उल्लिखित तमाम सेवाकार्यों का व्यवस्थित ढंग से संचालन किया जाए।

इन और ऐसे अभियानों में सक्रियता लाने के लिये निम्नलिखित वर्गों को खासतौर से हमारा आह्वान है—

(१) स्वपर-कल्याण-साधना के लिये उद्यत साधु-साध्वी लगन के साथ अपना उत्तरदायित्व संभा लें।

(२) अपनी आत्मसाधना के साथ-साथ समाज-कल्याण एवं प्रचार-प्रसार के लिये आजीवन समर्पणकर्ता भाई-बहन या व्रतबद्ध जनसेवक-सेविका तैयार हों।

(३) प्रबुद्ध विचारक युवक-युवतियाँ इसे सफल बनाने में तन्मयता के साथ जुट पड़ें।

(४) समाज के उदार धर्मप्रेमी भाई-बहन मुक्तहस्त से 'सम्मतिज्ञानपीठ-प्रकाशन कोष' और 'वीरायतन-कोष' में दान दें।

(५) वीरायतनयोजना की प्रत्येक गतिविधि एवं कार्यकलापों की जानकारी देने हेतु प्रबल माध्यम—'श्री अमरभारती' को प्राणप्रण से चिरंजीवी रखने हेतु अर्थदातावर्ग को सचेष्ट होना है। वर्तमान में छपाई एवं कागजों की भीषण मंहगाई एवं दुर्लभता कहीं हमारे उपर्युक्त शुभ अभियान में बाधक न बन जाए।

आशा है, इस धर्म-संस्कारमय जीवननिर्माणयज्ञ में अपनी पूर्णतः आहुति दे कर इस योजना के प्रत्येक अंग को सुदृढ़ बनाएँ। इस धर्मकार्य में अपनी अपेक्षित सहयोग-सेवाएँ तत्परता के साथ दे कर भगवान् महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दें। तभी सबके जीवन का वैचारिक आचारिक दृष्टि से सुन्दर निर्माण होगा, इसके माध्यम से।

—:o:—

वीरायतन

—कु० सुधा जैन एम० ए० बी० एड०
वाराणसी

तीर्थंकर महावीर का निर्वाण २५०० वर्ष पूर्व हुआ था और उसी निर्वाण की स्मृति में हम लोग प्रतिवर्ष दीपावली-पर्व मनाते हैं। चौदस की रात और अमावस की प्रभात बेला में ही महावीर के ज्ञान-पुंज का उर्ध्व-गमन हो गया था और उसी स्मृति में जनता ने ज्ञान-पुंज के स्थान पर दीप-पुंज जलाया था। दीप-पुंज दीपावली पर्व के रूप में प्रचलित हुआ, जिसे देश के प्रत्येक भाग के व्यक्ति अपने-अपने सम्प्रदाय के देवताओं और नेताओं से सम्बन्धित बतलाने लगे व मनाने लगे। भगवान् महावीर के इसी निर्वाण को—ज्ञान-पुन्ज को स्थायी रूप देने के लिये ही 'वीरायतन' की स्थापना की गयी है। 'वीरायतन' एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य की आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक विकास, अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर बनाई गई है। महावीर का काल इतिहास का एक क्रांतिकाल था, उसी तरह 'वीरायतन' भी एक महान् दृष्टि और उच्च आदर्श को लेकर स्थापित किया गया है, जिसमें जाति-पाति, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और साम्प्रदायिकता तथा राष्ट्रीयता बाधक नहीं है। सभी मानव समानरूप से इस संस्था द्वारा अपना आध्यात्मिक, मानसिक और सांस्कृतिक विकास स्वतन्त्ररूप में कर सकते हैं।

भगवान् महावीर ने करुणा से भी ऊपर मैत्री को स्थान दिया था, क्योंकि करुणा करते समय जिसके प्रति करुणा की जा रही है, उसके प्रति कुछ हीनता की भावना और करुणा करने वाले के मन में स्वयं के प्रति उच्चता की भावना का
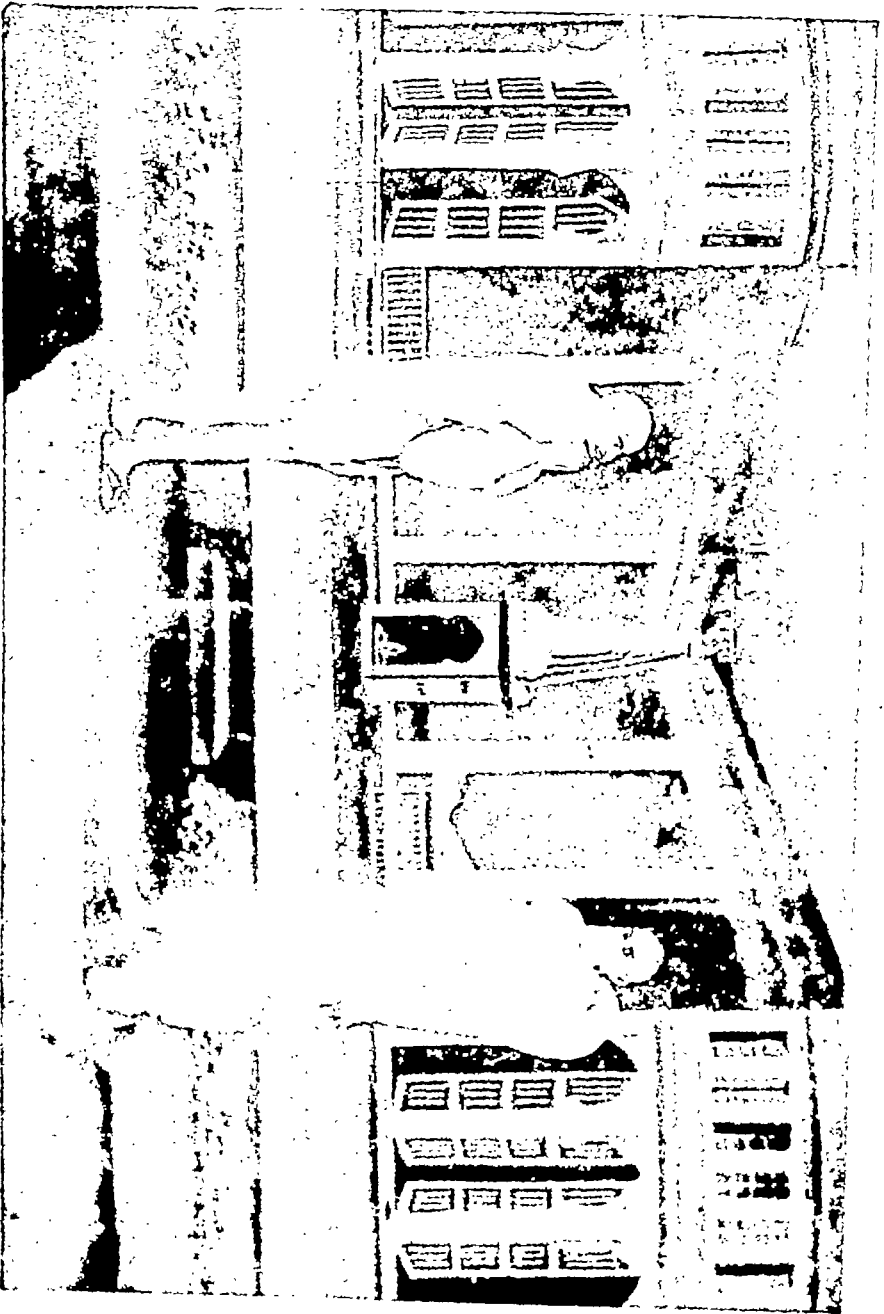
देहली (हरिजन आश्रम) में गांधीजी ने कविश्री अमरमुनिजी से ऐतिहासिक भेंट की।

उदय होता है, किन्तु मैत्री एक ऐसा रिश्ता है; जहाँ पर दोनों पक्ष में कहीं भी उच्चता-हीनता का स्थान नहीं रहता, वहाँ कृष्ण-सुदामा दोनों के मन में एक ही भाव रहता है। वीरायतन का उद्देश्य भी इसी मैत्री-भाव से ओत-प्रोत है।

मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति उसकी बौद्धिक उन्नति पर आधारित है। बौद्धिक उन्नति ज्ञान से सम्बन्धित है और ज्ञान हमें विभिन्न विषयों की पुस्तकों और विभिन्न व्यक्तियों के सत्संग से प्राप्त होता है। ज्ञान की उपासना के द्वारा ही मानव अपनी नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति करता है, सुसंस्कृत होता है तथा समाज और देश का कल्याण करता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए, 'वीरायतन' का निर्माण किया गया है।

जब तीर्थंकर को केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है उसके बाद लोक-कल्याण की भावना से ही तीर्थंकर समवसरण में उपदेश देते हैं। यही कारण है कि स्व-कल्याणसाधना के साथ-साथ परकल्याण की साधना में प्रवृत्त होता है। उच्चकोटि का साधक स्व और पर का भेद भूल कर सर्वभूतात्मभूत बन जाता है, तब उसकी दृष्टि से परकल्याण भी स्वकल्याण हो जाता है। इसीलिये महावीर, बुद्ध, राम-कृष्ण परमहंस सभी ने आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण के लिये देश-विदेश भ्रमण किया और अपने उपदेशों द्वारा जनता को आत्म-कल्याण करने की प्रेरणा प्रदान की। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर **वीरायतन** में साधनाकेन्द्र का निर्माण किया है।

देश में नाना प्रकार के भ्रष्टाचार फैले हैं। पहले तो केवल दूध में ही पानी की मिलावट की जाती थी, किन्तु अब तो अन्य खाद्य-पदार्थों में थोड़े से पैसों के लिये ऐसी-ऐसी वस्तुओं की मिलावट कर देते हैं, जो कभी-कभी प्राणघातक सिद्ध होती है। कहने को भारत स्वतन्त्र राष्ट्र है किन्तु देश हित का चिन्तन जनता में नाम-मात्र का ही दिखाई देता है। स्कूल-कॉलिज, विश्व-विद्यालय, नगर-पालिका, न्याय-पालिका आदि सभी जगहों में राजनीति बिखरी पड़ी है। सात्त्विकता और नैतिकता को अपनाने वाले निरे सीधे व बेवकूफ हैं। उपरोक्त भावनाओं के पनपने का कारण है सांस्कृतिक-शिक्षा का अभाव। शिक्षा में विज्ञान ने संस्कृति को नगण्य ही नहीं किया, वरन् उसका एक प्रकार से बहिष्कार ही कर दिया है। देश की उन्नति के लिये मानव में सांस्कृतिक-शिक्षा की विशेष आवश्यकता है और वीरायतन योजना में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

गांधीजी ने कहा था—पापी से नहीं, पाप से घृणा करो।' किन्तु आज तो उल्टा हो रहा है। सभी लोग पाप से नहीं, बल्कि पापी से घृणा करते हैं। कारण बिलकुल स्पष्ट है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं बहुत अधिक छल-कपट, हिंसा-चोरी आदि करता है केवल उनके करने के तरीकों में अन्तर रहता है और जिसका भेद खुल गया वही पापी, नहीं तो शेष जीव अपने को पुण्यात्मा ही समझते हैं और जैन के

छूटे हुए व्यक्ति को ऐसी घृणा की निगाहों से देखते हैं। मानो वह सातवें नरक से हो कर आया हो और उससे दुर्गन्ध आ रही हो। ऐसा सोचते समय मानव का दृष्टिकोण कितना सीमित हो जाता है। कारागार तो एक ऐसा चिकित्सालय है, जिसमें पापी की असामाजिक और अनैतिक आदतों को छुड़ा कर उसके स्थान पर उसे नैतिक और सामाजिक आदतों का अभ्यासी बनाया जाता है। 'पापी से नहीं, बल्कि पाप से घृणा करने का स्रोत ही वीरायतन है।

शिल्प व चित्रकला में भी हमारा देश भारत बहुत आगे बढ़ा हुआ था, जिसका प्रमाण अजन्ता, ऐलोरा, एलीफेण्टा व बादामी की गुफाएँ हैं। वीरायतन में इन दोनों ही कलाओं के माध्यम द्वारा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास है।

वर्तमान युग में युवा-वर्ग द्वारा प्रबुद्ध और अवकाशप्राप्त वर्ग कितना उपेक्षित और अवहेलित है। इसका अनुभव प्रत्येक समाज कर रहा है। वीरायतन में ऐसे अवकाशप्राप्त वर्ग के लिये ध्यान दे कर उन्हें एक सम्माननीय पद देने का निश्चय किया गया है, जोकि निश्चित रूप से वीरायतन का एक सराहनीय और प्रशंसनीय कार्य है।

'वीरायतन' अपने इन्हीं उद्देश्यों के साथ लोकतंत्र के व्यापक अर्थ में स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के लिये जन-भावना का निर्माण कर उसको सदैव सींचता रहे, जिससे वह भावना उत्तरोतर विकसित होती हुई ऊँची होकर अपनी छाया में सभी देश के लोगों को विश्राम दे सके, यही मेरी शुभकामना है।

वीरायतन-भूमि पर वीरायतन वालिकासंघ की वालिकाएँ

—o—
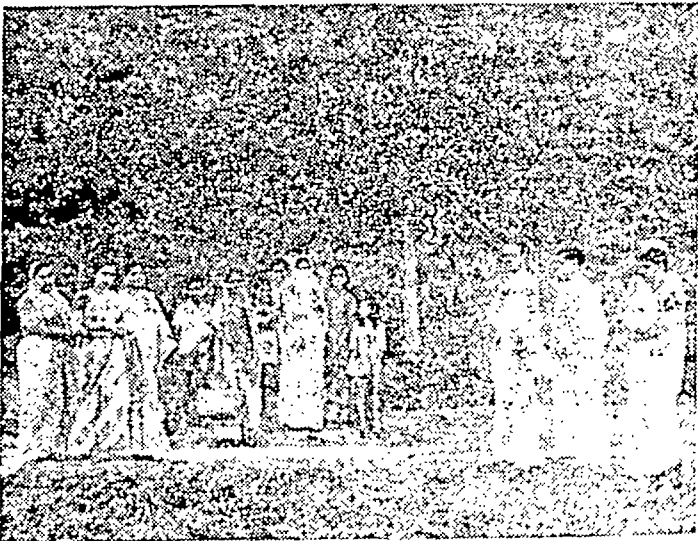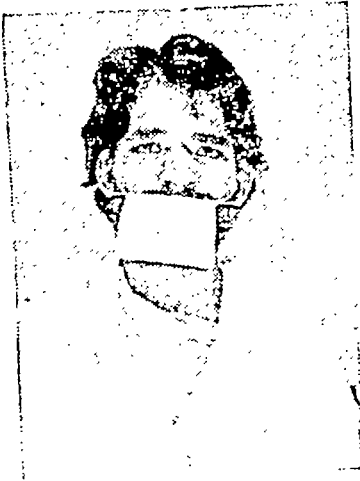
वीरायतन के अरुणोदय से

—खुशालमुनि, राजगृह

□

मैंने देखा, इक्षुदण्ड में सिर से पैर तक रस ही रस छलक रहा है ! मधुर, अतिमधुर !

मैंने देखा, उड़ते जुगनू को, अनन्त गगन के अन्धकार में एक झिलमिलाती प्रकाश ज्योति की रेखा खिंच जाती ।

मैंने देखा, एक सरिता को, जो बहती ही जा रही थी, अपनी जलराशि को लिए गन्तव्य लक्ष्य की ओर ।

इक्षुदण्ड में जब-जब गांठ आई, तब-तब नीरस, शुष्क और कड़वा ! जुगनू ने जब-जब उड़ना बन्द कर दिया, अन्धकार और अन्धकार !! एक भयावना भयंकर वातावरण छा जाता । जल ने ज्यों ही बन्द कर दिया बहना, एक घिनौना, गन्दा तलैया का रूप ! मैं जब जीवन पर चिन्तन करता हूँ, लगता है जीवन कितना मंगलमय है ! जीवन के सारे रूप सामने आ जाते हैं—ज्योतिर्मय ! अमृतमय ! सुगन्धमय ! संगीतमय ! किन्तु जीवन के इक्षु में ये ग्रन्थियाँ कहाँ से आईं ? प्रारम्भिक जीवन का रूप चाहे वह जुगनू जैसा लघु क्यों न हो, उसमें प्रकाश है, ज्योति है तो यह अन्धकार कहाँ से छा गया ? जीवन एक उत्स है । वह बहता है, निर्मल और पवित्र है । किन्तु, यह क्या ! वह रुक गया है, बन्द हो गया है । ये सारी विकृत स्थितियाँ कहाँ से पैदा हुईं ?

जीवन मूलरूप में शुद्ध है । उसमें शक्ति है—प्रस्फुटित होने की, किन्तु ज्यों ही वह श्वास लेने लगता है कि आसपास का वातावरण उसे जीने नहीं देता । उसके चारों ओर अहं खड़े हो जाते हैं । परिवार और समाज के अहं, सभ्यता और संस्कृति के अहं, मतों और पंथों के अहं ! यही कारण है कि यह अहंता की पृष्ठभूमि, घृणा

और द्वेष की ज्वालाएँ जीवनबीज को अंकुरित एवं पल्लवित नहीं होने देतीं। इस अहंता, घृणा और द्वेष की विषमता का उपशमन कर हम समत्व और मैत्रीभाव से किस प्रकार रह सकते हैं ? कैसे शांति से जीवन यापन कर सकते हैं ? इसका उत्तर होगा—धर्म एक ही ऐसा तत्व है, जिसके आधार पर सौहार्द और समभाव, प्रेम और मैत्री के सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

पर हजारों वर्षों से हम देखते हैं कि जो धर्म-सम्प्रदाएँ हैं, उनमें भी द्वन्द्व, विग्रह और संघर्ष होते आए हैं। जो संसार की आग बुझाने के लिए ज्ञान का पानी लेकर चले थे, लगता है उनमें भी आग लग गयी है। धर्मगुरु और धार्मिक स्थल आज भी अन्धविश्वासों, घृणा, द्वेष और राजनीति के अखाड़े बने हुए हैं। प्रश्न होता है, कौनसा धर्म श्रेष्ठ और सत्य है ? क्या जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त, यहूदी, पारसी, ईसाई और मुस्लिम ये ही धर्म हैं ? नहीं, ये सब धर्म नहीं, अपितु धर्म के शरीर हैं, सम्प्रदाय और पन्थ हैं। पन्थ और सम्प्रदाय धर्मरूपी आत्मा के शरीर हैं, स्वयं धर्म नहीं। धर्म के पन्थरूपी शरीर भी नये-नये जन्म लेते रहे हैं और पुराने जीर्ण-शीर्ण हो कर काल के प्रवाह में विलीन होते रहे हैं। वृक्ष की पुरानी शाखाएँ टूटती रहती हैं और नयी-नयी शाखाएँ फूटती जाती हैं। किन्तु वृक्ष इस परिवर्तन में भी स्थिर रहता है। शरीर बदलते रहते हैं, आत्मा स्थिर रहती है। सम्प्रदाएँ बदलती रहती हैं, धर्म स्थिर रहता है।

इस विशाल और विराट् विश्व में, व्यक्ति, जाति समाज और राष्ट्र में जो द्वन्द्व एवं संघर्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं इन सबका मूल कारण एक दूसरे को तुच्छ, हीन एवं नगण्य समझने की मनोवृत्ति है। जब हम दूसरों के व्यक्तित्व को ऊपर-ऊपर से केवल व्यवहारपक्ष से ही देखते हैं तो ऊँच-नीच का वैविध्य दिखाई देता है, अच्छे बुरे विकल्पों का मायाजाल फैला हुआ प्रतीत होता है, इस स्थिति में पारस्परिक घृणा और वैर के विषदंश से कैसे बचा जा सकता है ? जहाँ एकता और समता का निवास है, वहाँ विषमता, घृणा और वैर पनप नहीं सकते। यह भेद और वैषम्य तो औपचारिक और आरोपित हैं; वह शुद्ध सार्वभौम ज्ञानचेतना के शुद्ध परिणमन से दूर किया जा सकता है। जब हम विषमता को मौलिक मानने से इन्कार कर देते हैं, तब विषमता अपने आप में मर जाती है। महावीर का आध्यात्म-दर्शन इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की शुद्धता और स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकार की घोषणा करता है और समस्त चैतन्य-जगत् में मैत्रीभाव की, समभाव की स्थापना करता है।

जैनदर्शन समभाव और मैत्री का मौलिक दर्शन हैं। अहिंसा जैनदर्शन का प्राण है, किन्तु अहिंसा का दूसरा पहलू है—अनेकान्त और स्याद्वाद। अनेकान्त का अर्थ है—मन की अहिंसा। दूसरे के दृष्टिकोण समझने की भावना एवं विचार को अनेकान्तदर्शन कहते हैं। जब अनेकान्त वाणी का रूप लेता है, भाषा का रूप लेता है, तब स्याद्वाद बन जाता है। अनेकान्त विचार है और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम

है स्याद्वाद। स्याद्वाद का अर्थ है—विभिन्न दृष्टिकोणों का बिना किसी पक्षपात के तटस्थबुद्धि से समन्वय करना। दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता और आदर-भावना के बिना अहिंसा पूर्ण हो नहीं सकती। एकान्तदृष्टि में सदा आग्रह रहता है। और आग्रह घृणा, द्वेष और द्वन्द्व का केन्द्रबिन्दु है। जैन-धर्म का मूल तत्व है—समदृष्टि या समता। जैनधर्म की साधना में सामायिक एक मुख्य अंग है। समत्व-मूलक जो भी विचार और आचार है, वह सामायिक में आ जाता है। इस समता के अनेक रूप हैं—आचार की समता अहिंसा बनती है, विचार की समता अनेकान्त बनता है, समाज की समता अपरिग्रह बनता है और भाषा की समता स्याद्वाद बनता है।

मानव का स्वस्थ एवं व्यापक दृष्टिकोण ही उसे सत्य की ओर ले जाता है। व्यष्टि, समष्टि, और परमेष्टि; यह जीवनविकास की क्रमपद्धति है। जैनदर्शन की सत्योन्मुखी अनेकान्तदृष्टि, जैनधर्म का सर्वसहिष्णु अहिंसासिद्धान्त और जैन-परम्परा का चिरागत समन्वयवाद ये तीनों मिल कर एक ही काम करते हैं और वह यह है कि व्यक्ति अपनी क्षुद्रसीमा में कैद न हो जाए। समष्टि व्यक्ति के विकास-मार्ग में चट्टान बन कर उसके विकास को अवरुद्ध न करे, अपितु एक दूसरे से समझौता कर दोनों परमेष्टि के रूप में परिणत हो जाएँ। अस्तु, महावीर निर्वाणशताब्दी हमारे सामने है। अब समय आ गया है कि हम इस शुभंकर, सर्वहितकर विशाल दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार करने हेतु व्यक्ति, समाज एवं विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों में किस प्रकार प्रेम, मैत्री और समभाव के सूत्र जोड़ें, जिससे मानवजाति शांति की साँस ले सके। प्रेम, मैत्री और समता के सूत्र जोड़ने के लिए हम सभी के बीच आज **वीरायतन** संस्थान खड़ा हो रहा है। उसका आकार-प्रकार दृष्टि के समक्ष आ रहा है।

क्या, वीरायतन का स्थल? हाँ, यह है वीरायतन का स्थल, ऐतिहासिक धार्मिक, सांस्कृतिक नगर राजगृह में। प्रकृति के प्रांगण में लहलहाती हरीभरी पर्वत शृंखलाओं की गोद में। झरनों का मधुर कलकल-छलछल निनाद! लताओं से लिपटे तरुगण, विहंगों का नृत्यपूर्ण कलरव! विपुलाचल और वैभारगिरि आदि पर्वतमालाओं पर विभिन्न धर्मावलम्बियों के गगनचुम्बी धवलमन्दिरों के शिखर! ये बहारें, ये निखारें—ये सब एक साथ ही वीरायतन का सौन्दर्य बढ़ा रहे हैं। आज भी इन नीरव पर्वतों से, मन्दिरों से, निर्झरों के निनादों से, विहगों के कलरवों से एवं इस धर्म-भूमि, साधनाभूमि एवं सत्क्रान्ति की तपोभूमि से अतीत की वह महावीरध्वनि गूँज रही है।

वीरायतन! कितना महिमामय! कितना अद्भुत!! काल-प्रवाह में एक नूतन हलचल! एक नयी तरंग! इतिहास में एक नयी क्रान्ति घटित होने का स्वप्न और सम्भावना! स्वप्न देख रहे थे हम वीरायतन का। हाँ, उस स्वप्न के प्रकाश-

पुञ्ज की प्रथम किरण उतर चुकी है, राजगृही के वैभारगिरी की तलहटी में। इस पहली किरण में सबने देखा, स्थूलरूप से वीरायतन को। किन्तु सूक्ष्मरूप अब हम देखेंगे।

अब अपेक्षा है—वीरायतन के उद्‌भावक प्रेरणास्रोतों से, जिनके आधार पर वीरायतन-कल्पवृक्ष का सिंचन होने वाला है, लहलहाने वाला है, वे जीर्ण-शीर्ण पत्तों को झकझोर कर कूड़े-कर्कट के बोझिल गट्‌ठर को दूर फेंक कर एक स्वच्छ सुखद समाज का निर्माण करें, ताकि प्रगति का नूतन प्रभात आ सके और अपेक्षा है, उन सहयोगियों से जिन्हें वीरायतन में तन-मन-धन से सेवा का स्वर्ण अवसर प्राप्त होने वाला है।

आइए, हम सब वीरायतन में प्रेम, मैत्री और समभाव के दीपों को प्रज्ज्वलित करने के लिए और अभिनव सत्य-क्रान्ति के स्वप्न पूर्ण करने के लिए जुट जाएँ।

"राजगृही के भव्य क्षितिज पर,
एक नया सूरज आया।
वीरायतन की पुण्य भूमिपर
मंगलमय जागरण लाया।"
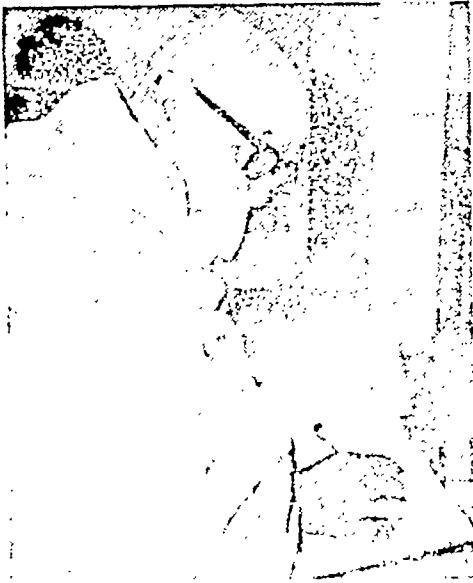
वीरायतन का स्वप्नद्रष्टा : उपाध्याय अमरमुनि

—रामनारायन जैन, झांसी

□

वीरायतन-योजना कविरत्न उपाध्याय श्री अमरमुनिजी द्वारा राजगृह में आरम्भ की जा चुकी है। कविजी महाराज ने सन् १९६२ में राजगृह में चातुर्मास किया था और वहां की गुफाओं में तपस्या भी की थी, जिसके कारण कविजी के मन में राजगृह में कुछ करने की प्रेरणा जगी और तभी से इस ओर निरन्तर लगे रहे। आज भी वे सक्रिय हैं। कविजी महाराज की वीरायतन योजना आज साकार रूप ले रही है और योजना की ओर भारत की जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। मुख्यतः जैन समाज का इस योजना की ओर विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है।

राजगृह की अपनी विशेषताएँ हैं। राजगृह अपनी ऐतिहासिक धार्मिक परंपरा के लिये जगत्-प्रसिद्ध है। यह महावीर स्वामी की तपोभूमि, साधनाभूमि व धर्म-प्रचारभूमि रही है। यहाँ भगवान् महावीर के अनेकों चातुर्मास हुए हैं। महावीर स्वामी के अलावा अन्य बहुत से साधक जैसे इन्द्रभूमि, गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी धन्ना-शालिभद्र इत्यादि की निर्वाणभूमि है। महावीरस्वामी की अनेक शिष्य शिष्याएँ भी राजगृह से सम्बन्धित रही हैं। दिगम्बर-परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर की सर्वप्रथम धर्मदेशना भी राजगृह में ही हुई थी। राजगृह बौद्ध-परम्परा का भी मुख्य केन्द्र रहा है। वैष्णव-परम्परा का भी केन्द्र रह चुका है।

राजगृह का प्राकृतिक सौन्दर्य भी देखने योग्य है। विपुलाचल; वैभारगिरि आदि अनेक पर्वत, सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र इत्यादि ऐतिहासिक गुफाओं, निरन्तर बहने वाले

गर्म जल के झरने, जिनका उल्लेख जैन आगमों, बौद्ध त्रिपिटक और वैदिक पुराणों में मिलता है, से राजगृह का महत्व जाना जा सकता है। राजगृह के पास में पावापुरी है, जो भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि है। इस प्रकार राजगृह में तीन धाराओं का समावेश है, जिसे त्रिवेणी कहा जा सकता है।

कविजी की वीरायतन-योजना एक वृहत् योजना है, जिसके द्वारा मानव-समाज का कल्याण होगा। केवल जैन ही लाभ उठा सकें, ऐसी बात नहीं है। कवि जी के जितने विचार विशाल हैं, हृदय भी उतना विशाल है। उनके हृदय में मानव के प्रति प्रेम व निष्ठा है। वह भगवान् महावीर की वाणी को साकार रूप देना चाहते हैं। वीरायतन-योजना के अन्तर्गत मानव-समाज की सब प्रकार की सेवा हो, सबको लाभ हो। जो दुखित-व्यथित एवं त्रस्त हों, ऐसे मनुष्यों को सांत्वना मिले। समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी रूप में लाभ उठाता रहे और भगवान् महावीर की जय जयकार करता रहे। कविजी भगवान् महावीर की धरोहर कुछ व्यक्तियों की सम्पत्ति न मान कर आम जनता की करना चाहते हैं। भगवान् महावीर के अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह जैसे विश्वमंगलकारी सिद्धान्तों को अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर गीत गा लेने और उसमें अपनी सफलता मान लेने से क्या २५०० वां निर्वाण दिवस सफल होगा।

निश्चय ही आज वीरायतन जैसे अध्यात्मसाधनाकेन्द्र की आवश्यकता है, जहाँ हर एक अशान्त मन को सांत्वना मिल सके और वह भगवान् महावीर की वाणी को अपने जीवन में उतार सके तथा हर मानव अपना जीवन सार्थक कर सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कविजी की वीरायतनयोजना भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करेगी ही। वीरायतनयोजना मानवसमाज का मार्गदर्शन करेगी और सदैव भगवान् महावीर की वाणी का जयघोष होता रहेगा। कविजी ने वीरायतन योजना का जो स्वप्न संजोया है, साकार होगा और मानवसमाज उससे प्रेरणा लेगा, तब न शोषितवर्ग होगा, न शोषक होगा। एक वर्गहीनसमाज की रचना होगी और सही रूप में समाजवाद का अभ्युदय वीरायतन द्वारा होगा। इससे भारत की जनता लाभ उठायेगी व प्रेरणा लेगी। परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उपाध्याय अमरमुनिजी ने जो स्वप्न संजोया है, वह वास्तविक रूप धारण करे।

—o—

प्रकृति के सुरम्य क्रीड़ास्थल कैलाश में उन्मुक्त प्राकृतिक आनन्द में विभोर
श्री अमरमुनिजी ।

वीरायतन के स्वप्नद्रष्टा

—रामस्वरूप जैन, आगरा

□

वीरायतन के स्वप्नद्रष्टा, 'उपाध्याय श्रीअमरमुनि'।
'नमो उवज्झायाणं' जग में जैनसंत श्रीअमरमुनि ॥

वर्द्धमान ने आत्मज्योति से जन-जीवन को ध्वनित किया।
सत्य, अहिंसा, आत्मज्ञान का, अमरदीप प्रज्ज्वलित किया ॥
दीन-दुखी जीवों को अपनी करुणा से उपकृत किया।
सर्वभूतात्मभूत-दृष्टि से, अखिल जगत जागृत किया ॥

त्रिशलानन्दन के सपनों को आ, कविजी ने साकार किया।
राजगृह के अंचल में वीरायतन को आकार दिया ॥
शतशत वन्दन है, अभिनन्दन भागीरथ प्रयास किया।
पुलकित है चेतनस्वरूप मन, अभिनव एक प्रकाश दिया ॥

महावीर निर्वाण शताब्दी पर्व पे, श्रद्धासुमन समर्पित।
हे वीर आपके चरणों में, शुभ भावांजलि सादर अर्पित ॥
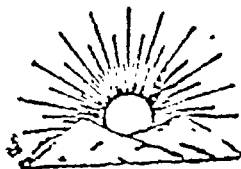
राजगृह और वीरायतन

—साध्वी श्रीचन्दना दर्शनाचार्या

□

[जैनजगत् की तेजस्विनी आर्या तथा वीरायतन कार्यक्रम की प्राणवाहिका साध्वी चन्दनाजी से आज कौन अपरिचित है?—सं०]

वर्तमान युग में कोई भी सिद्धान्त या वाद तब तक जनजीवन तक नहीं पहुँचता, जब तक कि उसका व्यवहार में प्रयोग न हो जाय। सिद्धान्तों या आदर्शों का पता भी आम जनता को तभी लगता है, जब वह उन्हें व्यवहार के धरातल पर उतरते हुए देखती है। जो सिद्धान्त, आदर्श या वाद व्यवहार की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, उन्हें जनता उपेक्षा की दृष्टि से देखती है या कुछ वर्षों बाद सर्वथा भूल जाती है। श्रमणसंस्कृति अतिप्राचीनकाल से भारतीय जनजीवन में घुलीमिली हुई थी, परन्तु बीच-बीच में दुष्काल, भूकम्प, या राज्यपरिवर्तन आदि थपेड़ों के कारण वह धुंधली होने लगी। होते-होते उसे जनता इतनी विस्मृत हो गई कि जिस प्रान्त व जनपद में वह बहुत अधिक पल्लवित-पुष्पित हुई थी, वहाँ भी लोगों के दिलदिमागों से वह लुप्त-सी होने लगी।

मगधदेश, जिसे श्रमणसंस्कृति को पल्लवित-पुष्पित करने का गौरव प्राप्त है; राजगृह, जिसे जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों संस्कृतियों के प्रचार-प्रसार का मौका मिला है, आज वहाँ न तो लोग श्रमणसंस्कृति को जानते हैं, न भगवान् महावीर या तथागत बुद्ध के ही प्रकाशमय जीवन के विषय में उन्हें कुछ परिचय है; क्योंकि उधर जैनश्रमणों और श्रमणियों का परिभ्रमण (विहार) बहुत ही कम हो गया। कोई साधुसाध्वी सम्मेतशिखर या राजगृही-पावापुरी आदि तीर्थयात्रा के लिए जाते, वे वहाँ

उन तीर्थों के अवलोकन के बाद शीघ्र ही वहाँ से लौट जाते, इससे न तो वहाँ की स्थानीय जनता से उनका कोई सम्पर्क होता और न धर्म या संस्कृति के सम्बन्ध में उन्हें कोई उपदेश अथवा प्रेरणा ही उसे दी जाती। सिद्धान्तों या वादों का प्रयोग तो वर्षों उसी प्रदेश में विचरण करने पर ही हो सकता है। जनता के जीवन में किसी सिद्धान्त को सामूहिक रूप से उतरवाने के लिए वर्षों तक लगातार प्रयत्न करना पड़ता है। तब जा कर वह धर्म या संस्कृति, सिद्धान्त या वाद जनता के जीवन-संस्कार के रूप में सुदृढ़ होते हैं। मध्ययुग में विहारप्रदेश में तो वह एक तरह से अज्ञात और अनेक कठिनाइयों से युक्त बन गया था। यही कारण था—भगवान् महावीर के धर्मसिद्धान्तों या श्रमणसंस्कृति को विहार की जनता द्वारा विस्मृत होने का।

यों तो बीच-बीच में किसी-किसी साधु द्वारा व्यक्तिगत छुटपुट प्रयत्न सराक जाति में धर्म प्रचार-प्रसार के हेतु होते रहे। पर वे इतने अपर्याप्त थे कि उनसे विहार की जनता तो क्या, सराक जाति के ही सभी लोग परिचित नहीं हो पाए।

सन् १९६२ में राष्ट्रसंत कविरत्न उपाध्याय श्री अमर मुनिजी का श्रमण-संस्कृति के ऐतिहासिक गढ़, भगवान् महावीर आदि अनेक महाश्रमणों की तपोभूमि, साधनाभूमि और विहारभूमि—राजगृह में चातुर्मास हुआ। चातुर्मासकाल में ध्यान, तप और मौन की अनेक साधनाएँ कीं। उसी दौरान उनकी दृष्टि में राजगृह नगर भगवान् महावीर के धर्मसिद्धान्तों एवं श्रमणसंस्कृति को जनजीवन में संस्कार-बद्ध करने हेतु सभी दृष्टियों से प्रयोगक्षेत्र के योग्य जच गया। उस समय से ही उपाध्यायश्रीजी म० को कुछ ऐसा मानसिक आभास होने लगा कि इस क्षेत्र में कुछ करना चाहिए।

राजगृह : वीरायतन के लिए प्रयोगक्षेत्र

राजगृह को वीरायतन की प्रयोगभूमि बनाने के कई कारण थे। पहला कारण तो यह है कि राजगृह पुरातन मगध और उसमें भी वैशाली, पावापुरी, नालंदा आदि क्षेत्रों के निकट होने के कारण भगवान् महावीर के जीवन से सर्वाधिक सम्बन्धित रहा है। वैशाली और उसके अन्तर्गत क्षत्रियकुंड (कुंडग्राम), जो भगवान् महावीर की जन्मभूमि है, वह भी राजगृह के पास ही है, भगवान् महावीर ने प्राचीन राजगृही के अन्तर्गत नालंदापाड़ा में सर्वाधिक चातुर्मास किए थे।

दिगम्बरपरम्परा के अनुसार तो भगवान महावीर की सर्वप्रथम धर्म—देशना भी राजगृह के विपुलाचल पर हुई थी। राजगृह में भगवान् महावीर का कई बार कई निमित्तों से पदार्पण हुआ है; यहाँ के कण-कण में भगवान् महावीर के वे विचार-बीज प्रसुप्त हैं। वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुफा में तथा अन्य गुफाओं में भगवान महावीर ने कई बार तपश्चर्या भी की है, इसलिए यह उनकी तपोभूमि भी रही है। धर्मप्रचारभूमि तो थी ही। भगवान् महावीर का निर्वाण और देहसंस्कार भी राजगृह

के निकट पावापुरी में हुआ था; जो एक तरह से प्राचीन राजगृह का ही एक अंग है। इसलिए इसे निर्वाणभूमि भी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

दूसरा कारण यह था कि इन्द्रभूति गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी व अन्य सभी गणधरों ने वैभारगिरि पर तथा अतिमुक्तककुमार, शालिभद्र, धन्ना, स्कन्दक, आदि ने विपुलाचल पर निर्वाण प्राप्त किया था। अन्तकृद्दशांग सूत्र में तो राजगृह के विपुलाचल पर्वत से मुक्त होने वाले साधकों के वर्णन में 'जाव विउले सिद्धे' की एक झड़ी लग गई है। इस प्रकार राजगृह अनेक साधुसाध्वियों का सिद्धक्षेत्र; निर्वाण-भूमि, साधनाभूमि और तपोभूमि रहा है।

सन् १९६२ में उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी भगवान् ने राजगृह वर्षावास के समय यहाँ की सप्तपर्णी गुफा में ध्यान साधना की थी।

सन्१९६७ में महान तपोधन पू० श्रीजगजीवनजी महाराज ने ४५ दिन का दीर्घ अनशनपूर्वक संथारा (समाधिमरण) यहीं उदयगिरि पर्वत की तलहटी में किया था, जो इस युग में राजगृह के इतिहास की एक विशिष्ट घटना है। प्राचीन पारसीक देश (वर्तमान में ईरान) का राजकुमार आर्द्रक राजगृह में ही आ कर भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुआ था। नियतिवादी गोशालक तथा अजितकेशकम्बली आदि महावीर बुद्ध-युगीन धर्मप्रवर्तकों के धर्मप्रचार का मुख्य केन्द्र राजगृह ही था। कर्मयोग के महान् उपदेष्टा श्रीकृष्ण भी राजगृह को पावन कर चुके हैं।

राजगृह के अन्तर्गत वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुफा तथा अन्य गुफाओं में तथागत बुद्ध ने भी ध्यानयोगसाधना तथा तपश्चर्या काफी समय तक की थी। उन्होंने अपने जीवन के अनेक वर्ष यहाँ व्यतीत किये थे।

बौद्धधर्म की महायानशाखा का उदभव सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र के अनुसार राज-गृह है। जैनइतिहास की दृष्टि से बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी का जन्म, दीक्षा और कैवल्य भी राजगृह में हुआ था। सुप्रसिद्ध शालिभद्र, अन्तिमकेवली जम्बू-कुमार, महामात्य अभयकुमार, राजकुमार मेघ आदि भी राजगृह के ही थे।

इसी प्रकार मगधसम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, महाशतक श्रावक, सेवाव्रती नंदिषेण, महारानी चेलणा, रोहिणी, सुलसा आदि भगवान् महावीर के सैकड़ों अनन्य धर्मशिष्य और शिष्याएँ राजगृह से ही सम्बन्धित थे। अनाथीमुनि भी यहीं ध्यान-मुद्रा में रहे थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी राजगृह प्राचीनकाल से लेकर आज तक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के वाद बौद्धों की प्रथम संगीति यहीं पर आयोजित की गई थी, जिसमें भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द भी उपस्थित थे।

मुस्लिम फकीर मखदूम शाह ने इसी स्थल को साधना और तपस्या के लिए उपयुक्त समझा था।

कुछ इतिहासकारों के मत से जीसस क्राइस्ट (ईसा मसीह) भी छह वर्ष तक राजगृह में रहे थे और भारतीय साधना का शिक्षण प्राप्त किया था।

राजगृह के पास ही जैनपरम्परा के अनुसार राजगृह का ही एक पाटक (उपनगर) नालन्दा है, जो जैन और बौद्ध संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। नालन्दा में लगभग सात सौ वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय रूप में विश्वविद्यालय चलता रहा है; जहाँ ह्वेनसांग जैसे हजारों विदेशी युवक शिक्षण लेने आते रहे हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण १२ वर्ष एक विद्यार्थी और शिक्षक के रूप में यहाँ व्यतीत किए थे। इसी नालंदा में प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु सारिपुत्र का जन्म हुआ था। भगवान् महावीर के प्रमुख गणधर गौतम नालंदा के पास के ही थे। जैन परम्परा का इतिहास तो यहाँ के कण-कण में बिखरा पड़ा है, आवश्यकता है, उसे संकलित और व्यवस्थित करने की।

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से विहार दर्शनीय माना जाता है। राजगृह की प्राकृतिक छवि भी मनमोहक है। यहाँ विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि और वैभारगिरि ये पांच सुरम्यपर्वत हैं, जिनकी चित्ताकर्षक छटा मन को लुभाने वाली है। सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र आदि अनेक गुफाएँ, सतत वहने वाले गरम पानी के ऐतिहासिक झरने (निर्झर) हैं; जो आज भी पर्यटकों एवं तीर्थयात्रियों के लिए आकर्षणकेन्द्र बने हुए हैं। इनका उल्लेख जैन भगवतीसूत्र, बौद्ध त्रिपिटक तथा वैदिक पुराणों में मिलता है।

तीर्थयात्रा की दृष्टि से भी राजगृह जैन, बौद्ध और वैदिक धर्मों के अलावा इस्लाम और सिक्खसम्प्रदाय का भी 'पवित्र' तीर्थस्थान है। राजगृह में बौद्धों और जैनों के तो कई मन्दिर बने हुए हैं। वैष्णवों तथा अन्य सम्प्रदायों के भी मन्दिर, गुरुद्वारा या सत्संगभवन आदि है। यहाँ के महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थान हैं—विपुलाचल आदि पंच पर्वत, वेणुवन, करन्द सरोवर, सप्तधारा, गर्मजल के झरने, सप्तपर्णी गुफा, स्वर्णभंडार, मणियारमठ, जरासन्ध का अखाड़ा, बिम्बसार का कारागार, रत्नगिरि और गृध्रकूटपर्वत तथा जीवक आम्रवन आदि। गृध्रकूटपर्वत पर जापान के बौद्धसंघ के महान् आचार्य श्रीफूजी गुरुजी की प्रेरणा से एक अतिभव्य विश्व-शान्तिस्तूप का निर्माण हुआ है। पर्वत पर जाने के लिए आकाशीय विद्युत्रज्जुपथ (चियरलिफ्ट) परियोजना भी चालू की गई है। यहाँ के अनेक प्राचीन स्मारक दर्शनीय हैं।

दक्षिण पूर्वी एशिया के तथा भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से हजारों पर्यटक बोधगया, राजगृह, पावा, नालंदा आदि प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा के लिए प्रतिवर्ष आते रहते हैं। राजगृह से ४० मील स्थित बोधगया तो सारे संसार के बौद्धों का

सबसे महान् केन्द्र है, जहाँ भगवान् बुद्ध को परमबोधि प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार समस्त जैन भी राजगृह के समीप ही प्रसिद्ध तीर्थ पावापुरी (भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि) है, जहाँ जैनों के विशालकाय मन्दिर और विशाल धर्मशालाएँ हैं। यहाँ संगमरमर से निर्मित जलमन्दिर भी बड़ा आकर्षक है, जहाँ मध्य में भव्यकमल-सरोवर है। दीपावलीपर्व पर प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है। क्षत्रियकुण्ड (भ० म० की जन्मभूमि), सम्मेतशिखर (अनेक तीर्थंकरों की, खासतौर से भ० पार्श्वनाथ की साधनाभूमि एवं निर्वाणभूमि) एवं राजगृह (साधना और देशनाभूमि) आदि जैन तीर्थों की यात्रा पर प्रतिवर्ष आते रहते हैं। वैदिक परम्परा की दृष्टि से भी राजगृह के समीप गयातीर्थ है, जहाँ विष्णुपद मन्दिर है। राजगृह में भी प्रतिवर्ष वैष्णवमेला लगता है। प्रसिद्ध वैद्यनाथधाम में शिवमन्दिर है, इसलिए यहाँ वैदिक यात्री भी प्रति-वर्ष आते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी राजगृह बहुत उत्तम स्थान है। यहाँ की आबहवा बहुत ही अच्छी है, पर्वतों एवं झरनों के कारण यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक है। पर्वतों से घिरा हुआ यह नगर देश भर में शीतकालीन आरोग्य-स्थल के रूप में प्रसिद्ध है।

राजनैतिक दृष्टि से भी राजगृह का प्राचीनकाल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। राजगृह, जिसे आज राजगिर कहते हैं, मगध की प्राचीन राजधानी रहा है। मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार एवं अजातशत्रु कोणिक के समय मगध की सम्पूर्ण समृद्धि राजगृह में केन्द्रित थी। पाटलिपुत्र की नींव पड़ने से बहुत पहले ही यह नगर अत्यन्त समृद्ध तथा उत्कर्ष के शिखर पर था।

इसी प्रकार संसारभर में उत्कृष्ट गणतन्त्रीय राज्य-प्रणाली की नींव वैशाली में डाली गई थी, जो राजगृह के अत्यन्त निकट है।

भौगोलिक दृष्टि से भी राजगृह का महत्त्व कम नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से बिहार मुख्यत: दो भागों में विभक्त है—उत्तरी बिहार और दक्षिणी बिहार। एक ओर है—गंगा की तराई और दूसरी ओर है—छोटा नागपुर का पठार। गंगा यहाँ की मुख्य नदी है; जो हिन्दू धर्म में बहुत पवित्र नदी के रूप में प्रसिद्ध है। इस राज्य में यह नदी पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग ३५० मील में प्रवाहित होती है। बिहार की राजधानी पटना राजगृह से लगभग ६४ मील है। राजगृह से २५ किलोमीटर पर मुस्लिमधर्म का तीर्थ बिहारशरीफ है। और बिहार शरीफ से १२ किलोमीटर आगे तथा राजगृह से १३ किलोमीटर पीछे नालंदा है, जो बौद्ध विश्वविद्यालय के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्थल है।

इन सब दृष्टियों से 'वीरायतन' के लिए अन्य स्थानों की अपेक्षा राजगृह ही सबसे उपयुक्त स्थान जचा। प्राचीन युग में जिस प्रकार महावीर और बुद्ध ने अपना

कार्यक्षेत्र राजगृह को चुना था, उसी प्रकार वर्तमान युग के महामनीषी राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी एवं उनकी प्रेरणा से मैंने भी वीरायतन के लिए राजगृह को चुना है।

राजगृह में वीरायतन का स्थान

वर्तमान राजगृहनगर से कुछ दूरी पर ही वीरायतन का अत्यन्त सुरम्य, चित्ताकर्षक और प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर स्थान है; जहाँ अभी निर्माण कार्य चालू है। वीरायतनस्थल वैभारगिरि की तलहटी में राजगृह के प्राचीन आकर्षककेन्द्र-गर्मपानी के कुण्ड के निकट से चार फर्लांग दूर है। वीरायतन के स्थल से दक्षिण की ओर वैभारगिरिपर्वत है, जो काफी दूर तक लम्बा चला गया है। इन सुरम्य एवं हरे-भरे पर्वतों की यह शृंखला 'गया' तक पहुँच गई है।

वैभारगिरि की उपत्यका में सप्तपर्णी गुफा के ठीक नीचे भगवान् महावीर के समवसरण-स्थान के रूप में उद्‌भावित गुणशीलक चैत्य-उद्यान है, जहाँ वनविभाग अधिकारियों के सहयोग से एक सुन्दर उपवन बनाने की योजना प्रारम्भ हो चुकी है। यह गुणशीलक चैत्य-उद्यान पहाड़ के बराबर में चलता हुआ काफी लम्बे क्षेत्र में है। वनविभाग के पथ को पार करते ही वीरायतन की भूमि प्रारम्भ हो जाती है, जो दक्षिण से उत्तर की ओर और पूर्व से पश्चिम की ओर पर्याप्त व्यास में फैली हुई है। अभी तक वीरायतन की ओर से वहाँ पाँच भवनों का निर्माणकार्य सम्पन्न हो चुका है। इनके अतिरिक्त वहाँ एक आगममन्दिर तथा दो उपाश्रयों का निर्माण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है। वीरायतन की सीमा से कुछ दूरी पर एक छोटी-सी टेकरी है, जहाँ पर तथागत बुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन दिया था। वीरायतन की सीमा से लगा हुआ 'कार्यानन्द' ग्राम है, जो पश्चिम की ओर है। उत्तर की ओर कुछ-कुछ फासले पर सबलपुर एवं वस्तीपुर आदि छोटे-बड़े मिला कर लगभग ७-८ ग्राम हैं। वीरायतन की भूमि और इन गांवों के मध्य में दूर-दूर तक खेतों की हरियाली दर्शकों के चित्त को सहज ही आकर्षित कर लेती है। वीरायतन से पूर्व दिशा की ओर कुछ ही दूरी पर गर्मजल के कुण्ड हैं। बिहार सरकार की योजना के अनुसार वीरायतन के उत्तरी भाग और पूर्वी भाग में नूतन राजगृहनगर बसाने की योजना विचाराधीन है। सरकारी सूत्रों के अनुसार सरकार उसे शीघ्र ही क्रियान्वित करना चाहती है।

इस प्रकार प्राकृतिक दृष्टि से और भौगोलिक दृष्टि से वीरायतन की भूमि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और निकट भविष्य में भी वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

वीरायतन योजना : उद्देश्य और सहयोग

वीरायतन-योजना—अपने आप में एक सर्वांगीण, जन-कल्याणी, स्थायी एवं विराट् रचनात्मक योजना है। इस विराट् योजना के अन्तर्गत मानव-जीवन के सभी

सबसे महान् केन्द्र है, जहाँ भगवान् बुद्ध को परमबोधि प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार समस्त जैन भी राजगृह के समीप ही प्रसिद्ध तीर्थ पावापुरी (भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि) है, जहाँ जैनों के विशालकाय मन्दिर और विशाल धर्मशालाएँ हैं। यहाँ संगमरमर से निर्मित जलमन्दिर भी बड़ा आकर्षक है, जहाँ मध्य में भव्यकमल-सरोवर है। दीपावलीपर्व पर प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है। क्षत्रियकुण्ड (भ० म० की जन्मभूमि), सम्मेतशिखर (अनेक तीर्थंकरों की, खासतौर से भ० पार्श्वनाथ की साधनाभूमि एवं निर्वाणभूमि) एवं राजगृह (साधना और देशनाभूमि) आदि जैन तीर्थों की यात्रा पर प्रतिवर्ष आते रहते हैं। वैदिक परम्परा की दृष्टि से भी राजगृह के समीप गयातीर्थ है, जहाँ विष्णुपद मन्दिर है। राजगृह में भी प्रतिवर्ष वैष्णवमेला लगता है। प्रसिद्ध वैद्यनाथधाम में शिवमन्दिर है, इसलिए यहाँ वैदिक यात्री भी प्रतिवर्ष आते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी राजगृह बहुत उत्तम स्थान है। यहाँ की आबहवा बहुत ही अच्छी है, पर्वतों एवं झरनों के कारण यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक है। पर्वतों से घिरा हुआ यह नगर देश भर में शीतकालीन आरोग्य-स्थल के रूप में प्रसिद्ध है।

राजनैतिक दृष्टि से भी राजगृह का प्राचीनकाल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। राजगृह, जिसे आज राजगिर कहते हैं, मगध की प्राचीन राजधानी रहा है। मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार एवं अजातशत्रु कोणिक के समय मगध की सम्पूर्ण समृद्धि राजगृह में केन्द्रित थी। पाटलिपुत्र की नींव पड़ने से बहुत पहले ही यह नगर अत्यन्त समृद्ध तथा उत्कर्ष के शिखर पर था।

इसी प्रकार संसारभर में उत्कृष्ट गणतन्त्रीय राज्य-प्रणाली की नींव वैशाली में डाली गई थी, जो राजगृह के अत्यन्त निकट है।

भौगोलिक दृष्टि से भी राजगृह का महत्त्व कम नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से बिहार मुख्यत: दो भागों में विभक्त है—उत्तरी बिहार और दक्षिणी बिहार। एक ओर है—गंगा की तराई और दूसरी ओर है—छोटा नागपुर का पठार। गंगा यहाँ की मुख्य नदी है; जो हिन्दू धर्म में बहुत पवित्र नदी के रूप में प्रसिद्ध है। इस राज्य में यह नदी पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग ३५० मील में प्रवाहित होती है। बिहार की राजधानी पटना राजगृह से लगभग ६४ मील है। राजगृह से २५ किलोमीटर पर मुस्लिमधर्म का तीर्थ बिहारशरीफ है। और बिहार शरीफ से १२ किलोमीटर आगे तथा राजगृह से १३ किलोमीटर पीछे नालंदा है, जो बौद्ध विश्वविद्यालय के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्थल है।

इन सब दृष्टियों से 'वीरायतन' के लिए अन्य स्थानों की अपेक्षा राजगृह ही सबसे उपयुक्त स्थान जचा। प्राचीन युग में जिस प्रकार महावीर और बुद्ध ने अपना

कार्यक्षेत्र राजगृह को चुना था, उसी प्रकार वर्तमान युग के महामनीषी राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी एवं उनकी प्रेरणा से मैंने भी वीरायतन के लिए राजगृह को चुना है।

राजगृह में वीरायतन का स्थान

वर्तमान राजगृहनगर से कुछ दूरी पर ही **वीरायतन** का अत्यन्त सुरम्य, चित्ताकर्षक और प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर स्थान है; जहाँ अभी निर्माण कार्य चालू है। **वीरायतनस्थल** वैभारगिरि की तलहटी में राजगृह के प्राचीन आकर्षककेन्द्र-गर्मपानी के कुण्ड के निकट से चार फर्लांग दूर है। वीरायतन के स्थल से दक्षिण की ओर **वैभारगिरिपर्वत** है, जो काफी दूर तक लम्बा चला गया है। इन सुरम्य एवं हरे-भरे पर्वतों की यह शृंखला 'गया' तक पहुँच गई है।

वैभारगिरि की उपत्यका में **सप्तपर्णी** गुफा के ठीक नीचे भगवान् महावीर के समवसरण-स्थान के रूप में उद्‌भावित **गुणशीलक चैत्य-उद्यान** है, जहाँ वनविभाग अधिकारियों के सहयोग से एक सुन्दर उपवन बनाने की योजना प्रारम्भ हो चुकी है। यह **गुणशीलक चैत्य-उद्यान** पहाड़ के बराबर में चलता हुआ काफी लम्बे क्षेत्र में है। वनविभाग के पथ को पार करते ही वीरायतन की भूमि प्रारम्भ हो जाती है, जो दक्षिण से उत्तर की ओर और पूर्व से पश्चिम की ओर पर्याप्त व्यास में फैली हुई है। अभी तक वीरायतन की ओर से वहाँ पाँच भवनों का निर्माणकार्य सम्पन्न हो चुका है। इनके अतिरिक्त वहाँ एक **आगममन्दिर** तथा दो **उपाश्रयों** का निर्माण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है। वीरायतन की सीमा से कुछ दूरी पर एक छोटी-सी **टेकरी** है, जहाँ पर तथागत बुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन दिया था। वीरायतन की सीमा से लगा हुआ **'कार्यानन्द'** ग्राम है, जो पश्चिम की ओर है। उत्तर की ओर कुछ-कुछ फासले पर **सवलपुर** एवं **बस्तीपुर** आदि छोटे-बड़े मिला कर लगभग ७-८ ग्राम हैं। वीरायतन की भूमि और इन गाँवों के मध्य में दूर-दूर तक खेतों की हरियाली दर्शकों के चित्त को सहज ही आकर्षित कर लेती है। वीरायतन से पूर्व दिशा की ओर कुछ ही दूरी पर गर्मजल के कुण्ड हैं। विहार सरकार की योजना के अनुसार वीरायतन के उत्तरी भाग और पूर्वी भाग में नूतन राजगृहनगर बसाने की योजना विचाराधीन है। सरकारी सूत्रों के अनुसार सरकार उसे शीघ्र ही क्रियान्वित करना चाहती है।

इस प्रकार प्राकृतिक दृष्टि से और भौगोलिक दृष्टि से वीरायतन की भूमि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और निकट भविष्य में ही वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

वीरायतन योजना : उद्देश्य और सहयोग

वीरायतन-योजना—अपने आप में एक सर्वांगीण, जन-कल्याणी, स्थायी एवं विराट् रचनात्मक योजना है। इस विराट् योजना के अन्तर्गत मानवजीवन के सभी

क्षेत्रों में नीति, धर्म और अध्यात्म की दृष्टि से समाजनिर्माण मुख्य रहेगा। इसे आचाररूप में परिणत करने से पूर्व वैचारिक दृष्टि से भारतीय-संस्कृति, भारतीय धर्म, भारतीय-दर्शन, साहित्य और परम्पराओं का गम्भीर अनुशीलन और परिशीलन करना-कराना आवश्यक होगा। भारत धर्म प्रधान और अध्यात्मप्रधान देश रहा है, वस्तुतः यही भारतीय-संस्कृति की मुख्य विशेषता रही है। बिना किसी पक्षपात के सभी धर्मों के सत्य तथा तथ्य का संकलन करके समन्वयात्मक पद्धति से उसे जन-चेतना के समक्ष प्रस्तुत करना भी वीरायतन का एक उद्देश्य रहेगा। भारत के वैदिक एवं अवैदिक आदि समग्र दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन करना, भारत की विभिन्न संस्कृतियों में समन्वयसूत्र की खोज करना, भारत की विभिन्न परम्पराओं में अनेकान्त के आधार पर सामञ्जस्य प्राप्त करना वीरायतन का प्रारम्भ से अन्त तक लक्ष्य रहेगा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ अन्य उपयोजनाएँ भी क्रियान्वित करने का संकल्प चल रहा है।

इन समस्त योजनाओं में वीरायतन के इनेगिने कार्यकर्ताओं का सहयोग ही अपेक्षित नहीं है, अपितु सर्व-साधारण जनता का सहयोग भी उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इस योजना में जैनसमाज का सहयोग तो प्रारम्भ से ही मिलता रहा है और अन्त तक मिलता रहेगा। वास्तव में वीरायतन-योजना केवल जैनों के लिए नहीं, सभी धर्मों और संस्कृतियों के अनुयायियों के लिए है। यही कारण है कि इस योजना को जैनजैनेतर जनता में जो आदर, आकर्षण और सहयोग मिल रहा है, वह अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। खासकर विचारशील प्रबुद्ध जनता तो इस पर मंत्रमुग्ध है। भारत के सभी प्रान्तों से, यहाँ तक कि विदेशों से भी प्रभु महावीर के धर्मप्रेमी भक्तों द्वारा योजना के लिए भावभक्तिपूर्ण सन्देश मिल रहे हैं। साथ ही आर्थिक सहयोग भी मिला है, कई महानुभावों ने आर्थिक सहयोग के लिए वचन भी दिये हैं। परन्तु अभी तो इसमें काफी सहयोग की अपेक्षा रहेगी। योजनाएँ अन्यत्र प्रकाशित हैं। योजनाओं के अनुरूप कुछ कार्य हुआ है, कुछ चल रहा है, कुछ भविष्य में क्रमशः कार्य होगा।

राजगृह में वीरायतन की चर्चा घर-घर में होती है। यह चर्चा केवल राजगृह तक सीमित नहीं रही है, नालन्दा जिले को भी पार करके समग्र बिहारप्रान्त में इसकी चर्चाएँ होने लगी हैं। बिहार-सरकार के कर्मचारियों और नेताओं ने वीरायतन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण रखा है, और साथ ही सहयोग की भावनाएँ भी अभिव्यक्त की हैं, और कुछ क्षेत्रों से सहयोग मिल भी रहा है। राजगृह नगर की सामान्य जनता और आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र की जनता वीरायतन—योजना को अपने हित में लाभप्रद समझती है। वीरायतन से सभी परिचित हो चुके हैं।

साधुसंस्था के लिए सघन कार्यक्षेत्र

मैं लगभग दो वर्षों से इस क्षेत्र में कार्य कर रही हूँ। यहाँ की और आस-पास की सामान्य जनता को देखने और परखने का मुझे पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुआ

पद्मासनबद्ध स्तुति-मुद्रा के साथ ध्याननिरत !
विपुलाचल की उपत्यकाओं में उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी महाराज !

वीरायतन : धर्ममय तीर्थ (समाज) का जीवन-निर्माण—केन्द्र

साध्वी साधना, राजगृह

□

धर्म और मानवजीवन का अटूट सम्बन्ध

मानवजीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मशून्य जीवन मृतवत् जीवन है, वास्तविक जीवन नहीं। पशु और मनुष्य में अगर कोई अन्तर है तो वह धर्माचरण का ही है। **'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः'** इस नीतिवाक्य के अनुसार धर्म से हीन जीवन पशुतुल्य जीवन है। वास्तव में मानव-जीवन के साथ धर्म का अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। मानवसमाज में शुद्ध व्यवहार के लिए, शान्ति और सुव्यवस्था के लिए धर्म की हर युग में जरूरत रही है और रहेगी। इसीलिए एक विद्वान् ने धर्म को मानवसमाज का सार कहा है। जब-जब मानवसमाज में धर्म का ह्रास होता गया, अधर्म पनपता गया, पाप बढ़ता गया, तब-तब संसार में दुःख, हिंसा, अराजकता और परेशानी आदि बढ़ी ही है।

धर्म क्या और किसलिए ?

धर्म मानव के इहलौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के अभ्युदय और कल्याण का कारण रहा है। इसीलिए वैशेषिक दर्शन में धर्म की परिभाषा की गई है—**'यतोऽभ्युदय-निश्श्रेयससिद्धिः स धर्मः**—जिससे जीवन में अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। इसी प्रकार महर्षि व्यास ने महाभारत में धर्म का स्वरूप बताया है—**'धारणाद् धर्मः'**—मानव समाज का धारण, पोषण, रक्षण करने के कारण इसे धर्म कहा जाता है। सर्वधर्मसमन्वयवादी उदार जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने धर्म की परिभाषा की है—**'दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं**

धारयतीति धर्मः' दुर्गति में गिरते हुए आत्मा को जो धारण करता है, बचाता है, वह धर्म है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो इनसे भी आगे बढ़ कर धर्म की उदात्त परिभाषा की है—'**वत्थुसहावो धम्मो**' वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। धर्म की इस व्याख्या के अनुसार **आत्मा का धर्म अपने स्वभाव में स्थिर होना है**। आत्मा जब अपने स्वभाव को—यानी अहिंसा, सत्य आदि आत्म गुणों को—छोड़ कर क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, द्वेष, मोह आदि आत्मविरोधी दुर्गुणों को अपनाता है, तब वह अधर्म की ओर जाता है। मतलब यह है कि धर्म आत्मा को अपने स्वरूप में स्थिर रखने के लिए है।

भगवान् महावीर से जब यह पूछा गया—'कौन-सा धर्म उत्कृष्ट मंगल है?' तो उन्होंने कहा—

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो'

अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। वस्तुतः भगवान् महावीर ने इस गाथा द्वारा यह बता दिया कि किसी भी देश, वेष, धर्म, समुदाय, जाति, लिंग और वर्ग का व्यक्ति क्यों न हो, जो अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म की साधना करता है, वह मंगलमय बन जाता है, इतना ही नहीं, धर्म में ओतप्रोत व्यक्ति लोकमान्य और देवों तक का पूज्य बन जाता है। अहिंसा, संयम और तप ये धर्म-साधना के तीन द्वार हैं।

धर्म वैसे तो सर्वव्यापक है। वह किसी एक क्षेत्र या काल की सीमा में बंधा हुआ नहीं होता। मानवजीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक काल में उसका पालन किया जा सकता है। वह किसी एक वर्ग या व्यक्ति के ठेके में नहीं है, अपितु संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए है, सुख और शान्ति के लिए, समाज में सुव्यवस्था और अमन-चैन के लिए है। धर्म की पूर्वोक्त परिभाषाओं में उसके पालन का उद्देश्य स्पष्ट है। जैनशास्त्र में धर्मपालन का प्रयोजन अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बताया गया है—

इहलोगपरलोगहियाए, निस्सेसाए, सुहाए, खम्माए····

अर्थात्—धर्म इस लोक के हित के लिए है, परलोक के कल्याण के लिए भी है, मोक्ष और सुखशान्ति के लिए भी है एवं साधना के द्वारा अपनी कष्टसहिष्णुता, आत्मशक्ति एवं क्षमता बढ़ाने के लिए है।

इसलिए धर्म केवल मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरुद्वारे में ही बन्द नहीं है, परन्तु मानवजीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक है। इसीलिए भ० महावीर और भ० बुद्ध दोनों ने मंगलपाठ में धर्म को मंगल और उत्तम बता कर उसकी शरण लेने का कहा है।

परन्तु ऐसे धर्म का पालन सहजभाव से होना चाहिए, धर्म संस्कारों में रम जाना चाहिए, किसी प्रकार के भय और लोभ के वश हो कर धर्म का पालन वालू

की नींव पर आधारित महल के समान हैं। ज्यों ही भय और प्रलोभन चित्त से हट जायेंगे, त्यों ही व्यक्ति खुल कर अधर्म में प्रवृत्त हो जायगा। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि धर्म को संस्कारों में ओत-प्रोत कर लिया जाय। इसी कारण स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'**निर्भयता ही सच्चा धर्म है।**' धर्मात्मा व्यक्ति किसी प्रकार के भय से विचलित नहीं होता और न ही किसी प्रलोभन से फिसलता है।

वर्तमान में आसानी से धर्मपालन : संघ द्वारा

यद्यपि धर्म का पालन अपने अन्तर से होता है। परन्तु वर्तमान युग में अकेले व्यक्ति का धर्मतत्व पर टिका रहना अत्यन्त कठिन होता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने धर्ममय संघ (तीर्थ) की रचना की थी। अपने संघ को उन्होंने '**तीर्थ**' नाम दिया। और उसे उन्होंने धर्म से ओतप्रोत साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध धर्मतीर्थ कहा। धर्ममय तीर्थ का मतलब था—धर्म के जरिये संसार-सागर को स्वयं तिरने और दूसरों को तिराने वाला धर्ममय संघ या संगठन। ऐसे संघ की धर्ममयता के कारण बहुत अधिक महत्ता है, नंदीसूत्र में तो संघ की काफी उच्च शब्दों से स्तुति की है; यहाँ तक कि संघ को भगवान् बताया है। तीर्थङ्कर भी दीक्षा लेने से पूर्व '**नमो तित्थस्स**' कह कर तीर्थ को नमस्कार करते हैं। इससे फलित यह हुआ कि तीर्थ एक अर्थ में (संघ) तीर्थङ्कर से भी बड़ा है।

जैनधर्म के महान् दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र ने बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र में कहा है—'**सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव**'—प्रभो ! आपका यह तीर्थ सर्वोदय है। इसका मतलब यह है कि यह तीर्थ धर्ममय होने के कारण सभी प्राणियों के उदय, कल्याण और मंगलभाव तथा मैत्रीभाव को लेकर चल रहा है।

वर्तमान काल में धर्म का समाजीकरण आवश्यक

वर्तमान काल में अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, बेईमानी, रिश्वतखोरी, ठगी, तस्करता आदि बुराइयाँ बहुत तेजी से बढ़ती जा रही हैं। ये बुराइयाँ एक क्षेत्र में ही नहीं, मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में पनप रही हैं। क्या सामाजिक, क्या आर्थिक, क्या राजनैतिक, क्या सांस्कृतिक, क्या शैक्षणिक और क्या धर्म-साम्प्रदायिक सभी क्षेत्रों में पूर्वोक्त बुराइयों ने अपना पंजा जमा रखा है, इसलिए बुराइयाँ जिस तेजी से और जिस अनुपात में बढ़ती जा रही हैं, उन्हें निवारण करने के लिए उतनी ही तेजी से और सामूहिक रूप में उतनी ही तीव्रता से संगठित हो कर धर्मात्मा पुरुषों को उनका सामना करने तथा उनसे लोहा लेने की जरूरत है। अन्यथा, बुराइयाँ आगे बढ़ जायेंगी; धर्म बहुत पीछे रह जायगा। आज भारतवर्ष में धर्मात्माओं या धर्मोपदेशकों की कमी नहीं है। इतने धर्मात्मा पुरुषों और धर्मोपदेशकों के होते हुए भी ये अनिष्ट रुकते क्यों नहीं ? क्यों अधिकाधिक पनपते जाते हैं ? इतने उपदेशों के होते हुए भी व्यक्ति बदलता क्यों नहीं ? इसका कारण है परिस्थिति-परिवर्तन का अभाव।

विचार-परिवर्तन के लिए धर्मोपदेश, लेख आदि साधन हैं। मगर इतने मात्र से व्यक्ति के जीवन में कोई तब्दीली नहीं आती। परिस्थिति-परिवर्तन के लिए सबसे पहला काम अलग-अलग भूमिकाओं के लोगों को अलग-अलग संगठित करना और साथ ही उन्हें नीति, धर्म और आध्यात्म के संस्कारों से ओतप्रोत करना। व्यक्ति की व्यक्तिगत साधना भी तभी निरापद एवं निर्द्वन्द्व हो सकेगी।

यही कारण है कि भगवान् महावीर या उनसे पूर्व के सभी तीर्थङ्करों ने व्यक्ति की अपेक्षा संघ को महत्व दिया है। जैनधर्म सदा से ही संघवादी रहा है, व्यक्तिवादी नहीं। व्यक्ति की अपेक्षा यहाँ संघ को बड़ा माना गया है। इसका यह मतलब नहीं कि व्यक्ति का अपना कोई मूल्य नहीं। हालांकि तीर्थ की स्थापना कोई एक व्यक्ति करता है। परन्तु वह व्यक्ति स्वयं संघ की महत्ता को स्वीकार करता है और दूसरों को भी इसी माध्यम से स्वीकार करने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष यह निकला कि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारों ही कोटि के धर्मात्माओं को आज धर्मदृष्टि से संगठित और एकजूट हो कर अनिष्टों और बुराइयों से जूझना होगा और उन पर विजय प्राप्त करनी होगी।

वीरायतन इसी प्रकार की सर्वोदयी धर्ममय समाजरचना के प्रयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है, जिसके माध्यम से मार्गानुसारी और व्रतधारी श्रावक की तरह नीतिनिष्ठ जनसंगठन और व्रतबद्ध धर्मनिष्ठ जनसेवक-संगठन; दोनों प्रकार की जनता तैयार की जायगी। जनता के संगठन में प्रविष्ट होने वालों के लिए सप्त कुव्यसन-त्याग तो अनिवार्य होंगे। इसके अलावा तोड़-फोड़ लूट, हत्या, दंगा, मारपीट, आगजनी, अन्याय, अत्याचार आदि, नीति-धर्म-विरुद्ध एवं मानवता के विरोधी अनिष्टों से भी दूर रहेंगे। अपने झगड़े, मसले, समस्याएँ और प्रश्न, आपस में प्रेम, शान्ति, सद्भाव, न्याय और नीतिपूर्वक जनसेवकों द्वारा सामूहिक अहिंसक तरीके से निपटाए जांय, सुलझाए जांय। रिश्वतें वापिस लौटवाई जांय। इस प्रकार वीरायतन के माध्यम से व्रती जनसेवक और महाव्रती साधु-साध्वी की शक्तियाँ मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जनता के संस्कारों में नीति, न्याय, सत्य, अहिंसा, संयम, तप आदि शुद्ध धर्म को प्रवेश करने एवं नैतिक संस्कारों से ओतप्रोत करने का भगीरथ धर्ममय-समाजनिर्माण का प्रयोग वीरायतन के माध्यम से हो सकेगा। इसके लिए वीरायतन के मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्तम्भ राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० सतत प्रयत्नशील हैं तथा उनकी छत्रछाया में कतिपय साधु-साध्वीवृन्द भी पुरुषार्थ कर रहा है। उपाध्यायश्रीजी चाहते हैं कि वीरायतन के माध्यम से गाँव-गाँव में शुद्ध धर्म और नीति की ज्योति जगाई जाय, घर-घर में व्यसनमुक्ति का अलख जगाया जाय। जनता धर्म से इतनी अभ्यस्त हो जाय कि उसकी कोई भी प्रवृत्ति धर्म के विपरीत न हो, जीवन की तमाम गुत्थियाँ धर्मदृष्टि से सुलझाई जांय। वीरायतन इसी प्रकार का धर्ममय समाजनिर्माणकेन्द्र बनेगा।

वस्तुत: वह एक धर्ममय तीर्थ बनेगा, जिसके माध्यम से नीति से ले कर धर्म और अध्यात्म की व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार से भलीभाँति साधना हो सकेगी।

वीरायतन एक ऐसा संस्थान होगा; जहाँ शान्त, एकान्त पवित्र वातावरण में रह कर उच्चकोटि के आध्यात्मिक साधक ध्यान, मौन, तप, जप, अध्ययन आदि द्वारा आत्म-साधना कर सकेंगे। जहाँ वे भौतिक संघर्षों से ऊपर उठ कर अध्यात्म के मधुर वातावरण में ओतप्रोत हो सकेंगे। जहाँ आधि, व्याधि और उपाधि से दूर रह कर कुछ लोग सेवा, श्रम एवं कर्मयोग की साधना भी करेंगे; इस प्रकार वे अपने जीवन का निरीक्षण-परीक्षण और शोधन करके उसे भलीभाँति मांज सकेंगे। अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी को व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रवाहित कर सकेंगे।

तभी धर्म की पूर्वोक्त (वस्तु-स्वभाव) परिभाषा के अनुसार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की आत्माएँ वीरायतन के माध्यम से आत्मा के वस्तु-स्वभाव में—सत्य-अहिंसादि गुणों में स्थिर हो सकेंगी, यानी स्वभाव से विभाव—परभाव में—क्रोध, मान-माया, लोभ, मोह, घृणा, काम अहंकार आदि तथा धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, कुटुम्ब-सम्प्रदाय आदि परभावों से दूर हट कर आत्म-स्वभाव में लीन हो सकेंगी। और तभी समाज, राष्ट्र और विश्व की आत्माएँ दुर्गति में जाने से तथा बुराइयों में फँसकर पतित होने से बचाई जा सकेंगी। तभी विश्वात्माओं में आनन्दकन्द सच्चिदानन्द की परम ज्योति जगाई जा सकेगी।
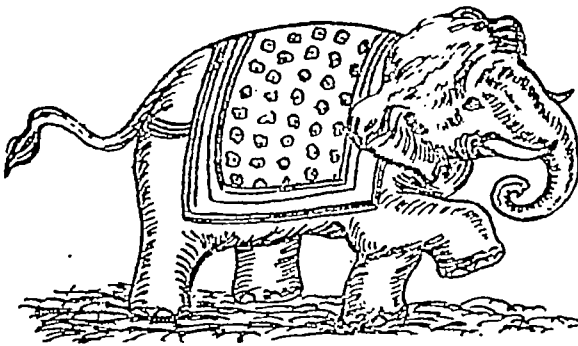
वीरायतन : साधक-निर्माणस्थली बनें !

शंकरलाल जैन एडवोकेट

□

राष्ट्रीय संत अमरमुनिजी ने भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर वीरायतन-योजना का श्रीगणेश कर एक अभूतपूर्व कदम उठाया है। स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, अरविन्द घोष इत्यादि महान सन्तों की वाणी को अमर बनाने के अनेक प्रयास भारत में चल रहे हैं। महान् जैनमुनियों के दैनिक जीवन से यह प्रगट है कि उनकी विद्वत्ता वीरवाणी को भी घर-घर में ले जाने का कार्य कर रही है। किन्तु ऐसा लगता है, वीरपुत्रों के दैनिक जीवन में और भगवान् महावीर का गुणगान करने वाले साधुओं की चर्या में जमीन-आसमान का अन्तर है। एक सिर्फ सामायिक करके अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझता है, तो दूसरा, संसार के सब झंझटों से मुक्त हो कर ओसवाल-पोरवाल-अग्रवाल आदि विशिष्ट समाजों का धर्मोपदेशक बन कर पंचमहाव्रतों की प्रतिज्ञा लिये जीवन जी रहा है। एक रात-दिन लक्ष्मी की उपासना में रत रह कर सहस्रपति से लखपति, लखपति से करोड़ पति और उसमें भी अपनी तृष्णा का अंत नहीं समझता है तो दूसरा अपरिग्रहवाद की चरम सीमा तक पहुँच कर एक पैसा भी अपने पास रखना पाप समझता है। दोनों की दूरी इतनी अधिक है कि चातुर्मासकाल में प्रतिदिन होने वाले तीन-तीन व्याख्यान भी उसे पाट नहीं सके हैं। इस दृष्टि से महान् उद्देश्य की पूर्ति हेतु वीरायतन योजना का स्वागत है। आज लाखों-करोड़ों मन्दिर-स्थानक के लिये दान देने वाले मौजूद हैं, गोपालकों, चींटीपालकों की भी कमी नहीं है। रातदिन अर्थोपार्जन में व्यस्त रह कर उपार्जित धन का एक दो फीसदी दे कर 'दानवीर' कहलाने की होड़ भी लगती हुई दिखाई दे रही है किन्तु योग्य युवकों को 'वीर-पुत्र' बना कर भगवान् की वाणी का सही रूप से प्रचार करने के लिये प्रेरणा देने वाला कोई दिखाई नहीं देता। पाँच पचास आत्मकल्याणक बारह व्रतधारी श्रावक भले ही होंगे, जो स्थानक-मन्दिर-उपाश्रयों में बैठ कर स्वशुद्धि की बात सोचते होंगे, किन्तु उनके शुद्ध जीवन की सुगन्धि दूर-दूर तक नहीं फैल पाती और वे इसी में सन्तोष कर बैठते हैं कि उनका जीवन सुधर रहा है, मृत्यु के पश्चात् उनको अच्छी 'गति' मिलेगी। आज आवश्यकता है ऐसे सैकड़ों-सहस्रों युवकों की जो शिक्षित-प्रशिक्षित हो कर सीमित साधनों से सन्तुष्ट हो कर परिग्रह की सीमा निर्धारित कर अपने ओजस्वी जीवन को समाज के चरणों

में समर्पित कर दें और उसे उसे मानवकल्याण के लिये खपा दें। यह कार्य यदि राष्ट्रसंत की वीरायतन-योजना कर पाई तो लक्ष्मीप्रधान जैनसमाज के लिये यह एक बहुत बड़ा चमत्कार होगा।

वैशाली में स्थापित 'वीरायतन' सर्वप्रथम दस-बारह साधक-प्रचारक देश को दे, जो प्रान्तीय राजधानियों में बैठ कर प्रदेश-स्तर पर चलने वाली जैन गतिविधियों का संगठन करें तथा उनके प्रेरणास्रोत बनें। जो साधक बनने की इच्छा रखते हों, उनके लिये निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य मानी जावें :—

(१) कम से कम स्नातक की योग्यता रखते हों, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का ज्ञान हो और जैनदर्शन की जानकारी रखते हों।

(२) सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करने के अभिलाषी हों, पारिवारिक दायित्वों से मुक्त हों, यथासंभव अविवाहित हों अथवा पति-पत्नी दोनों शिक्षित हों तथा साधक बनने की अभिलाषा रखते हों।

(३) विशाल दृष्टिकोण रखते हों, मानवसेवा का ध्येय लेकर सही अर्थों में वीर-पुत्र बनने की कामना रखते हों तथा समाज व देश के लिये जीवनसमर्पण करना चाहते हों।

(४) उनमें नेतृत्व करने के गुण विद्यमान हों, वक्ता व लेखक हों तथा साधु-प्रकृति के हों।

(५) पिछला जीवन आदर्श रहा हो, सुसंस्कारी हों तथा समाज से न्यूनतम लेकर अधिकतम देने की भावना रखते हों।

उक्त श्रेणी के कार्यकर्त्ताओं को राजगृही में समुचित प्रशिक्षण दिया जावे तथा उन्हें समाजसेवा के लिये तैयार किया जावे। महावीर की कर्मस्थली एक तरह से 'साधक-निर्माणस्थली' बन जावे और प्रति दो वर्ष के पश्चात् कम से कम दस सेवाभावी साधक समाज को दे सके, ऐसी योजना बनाई जावे।

योग्य प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् ऐसे साधकों को एक समाचारी बनाकर समाजसेवा के लिये प्रस्तुत कर दिया जावे। उनकी वेष-भूषा, जीवनयापन की पद्धति, दिनचर्या इत्यादि सभी सुनिश्चित कर दी जावे तथा वे अनुशासनबद्ध हो कर सेवाभावना से समाज में विचरण करने लग जावें, ऐसा दृष्टिकोण रखा जावे।

साधक-प्रचारकों के सम्बन्ध में निम्न बातों को केन्द्रीय कार्यालय ध्यान में रक्खें तथा उनकी पूर्ति की ओर सचेष्ट रहे—

(१) उनकी जीविका सम्मानपूर्वक चलती रहे तथा उन्हें अर्थोपार्जन की कोई चिन्ता नहीं रहे। समाचारी के अनुसार उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे।

श्री अमरमुनिजी प्रखर प्रवक्ता ही नहीं, श्रेष्ठ श्रोता भी हैं। मधुरस्मित के साथ ध्यानपूर्वक भक्तों की बातें सुन रहे हैं।

(२) उनके निवास की समुचित व्यवस्था हो। निवास-स्थान आश्रम सरीखे शान्त वातावरण में हो तथा वह आकर्षण का केन्द्र हो तथा साधुमना समाज-सेवक के रहने के लिये सर्वथा अनुकूल हो।

(३) उनके प्रवास, पत्र-व्यवहार एवं प्रचारकार्य की समुचित व्यवस्था कर दी जावे। प्रचारसामग्री केन्द्रीय कार्यालय से भी भेजी जा सकती है।

आज देश में सहस्रों स्थानक हैं, सैकड़ों उच्चकोटि के मन्दिर हैं, हजारों संस्थाएँ—शाला-पाठशाला-गुरुकुल-कालेज इत्यादि हैं, किन्तु वे सब बिखरे हुए हैं। उनकी भिन्न-भिन्न प्रबन्धकारिणी भले हों, किन्तु उन्हें प्रेरणा देने वाला महापुरुष कोई अवश्य हो, जो उन्हें अपने प्रान्त में निकट लाने का काम कर सके, समय-समय पर शिविर-सम्मेलन, कैम्पों का आयोजन कर सके तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों का सही माने में 'इन्सानियत' की शिक्षा अपने जीवन व वाणी से दे सके। यह कार्य उक्त साधकों द्वारा संभव हो सकता है। ऐसे साधकों की टोली प्रान्त-प्रान्त में खड़ी हो, यह काम अत्यन्त आवश्यक है और उसे हाथ में लेने का बीड़ा **'वीरायतन'** को शीघ्रातिशीघ्र उठाना है। शाला, विद्यालय, मन्दिर, स्थानक आवश्यक हैं, किन्तु यह काम अति महत्वपूर्ण है इसके बिना अकेली साधुसंस्था बदलती हुई दुनिया में जैनसमाज को मौलिक परिवर्तन की ओर नहीं ले जा सकती।

आज समाज का ढांचा चरमरा रहा है। हम लक्ष्मीपति होकर भी शोषक, मुनाफाखोर व जमाखोर पहले हैं। हमारी उक्त प्रकार से अप्रतिष्ठा हो रही है, इस पर हमें प्रहार करना है। यह कार्य एक महान् संकल्प के बिना पूरा नहीं हो सकता। उसके लिये साधुसंस्था को ऐसे सैकड़ों साधुमना अनुभवी प्रशिक्षित युवकों की आवश्यकता है, जो भारत के कोने-कोने में जाकर वीरवाणी का उद्घोष कर सकें। उनका भाषण केवल प्रलाप बन कर नहीं रह जावे, इसके लिए उनका जाज्वल्यमान, त्यागी, तपस्वी जीवन बोले। हम आशा करें कि 'वीरायतन' का श्रीगणेश हमारी इस आकांक्षा की पूर्ति करेगा।

(२) उनके निवास की समुचित व्यवस्था हो। निवास-स्थान आश्रम सरीखे शान्त वातावरण में हो तथा वह आकर्षण का केन्द्र हो तथा साधुमना समाज-सेवक के रहने के लिये सर्वथा अनुकूल हो।

(३) उनके प्रवास, पत्र-व्यवहार एवं प्रचारकार्य की समुचित व्यवस्था कर दी जावे। प्रचारसामग्री केन्द्रीय कार्यालय से भी भेजी जा सकती है।

आज देश में सहस्रों स्थानक हैं, सैकड़ों उच्चकोटि के मन्दिर हैं, हजारों संस्थाएं—शाला-पाठशाला-गुरुकुल-कालेज इत्यादि हैं, किन्तु वे सब बिखरे हुए हैं। उनकी भिन्न-भिन्न प्रबन्धकारिणी भले हों, किन्तु उन्हें प्रेरणा देने वाला महापुरुष कोई अवश्य हो, जो उन्हें अपने प्रान्त में निकट लाने का काम कर सके, समय-समय पर शिविर-सम्मेलन, कैम्पों का आयोजन कर सके तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों का सही माने में 'इन्सानियत' की शिक्षा अपने जीवन व वाणी से दे सके। यह कार्य उक्त साधकों द्वारा संभव हो सकता है। ऐसे साधकों की टोली प्रान्त-प्रान्त में खड़ी हो, यह काम अत्यन्त आवश्यक है और उसे हाथ में लेने का बीड़ा '**वीरायतन**' को शीघ्रातिशीघ्र उठाना है। शाला, विद्यालय, मन्दिर, स्थानक आवश्यक हैं, किन्तु यह काम अति महत्वपूर्ण है इसके बिना अकेली साधुसंस्था बदलती हुई दुनिया में जैनसमाज को मौलिक परिवर्तन की ओर नहीं ले जा सकती।

आज समाज का ढांचा चरमरा रहा है। हम लक्ष्मीपति होकर भी शोषक, मुनाफाखोर व जमाखोर पहले हैं। हमारी उक्त प्रकार से अप्रतिष्ठा हो रही है, इस पर हमें प्रहार करना है। यह कार्य एक महान् संकल्प के बिना पूरा नहीं हो सकता। उसके लिये साधुसंस्था को ऐसे सैकड़ों साधुमना अनुभवी प्रशिक्षित युवकों की आवश्यकता है, जो भारत के कोने-कोने में जाकर वीरवाणी का उद्घोष कर सकें। उनका भाषण केवल प्रलाप बन कर नहीं रह जावे, इसके लिए उनका जाज्वल्यमान, त्यागी, तपस्वी जीवन बोले। हम आशा करें कि 'वीरायतन' का श्रीगणेश हमारी इस आकांक्षा की पूर्ति करेगा।

वीरायतन :
महावीर-दृष्टि से योग-साधनाश्रम

साध्वी चेतना

राजगृह (नालंदा)

□

भारतीय धर्मों और दर्शनों ने आत्मा को केन्द्र में रख कर महान् पुरुषार्थ किये हैं। यहाँ के विभिन्न साधकों ने अध्यात्म-साधना के द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, सिद्धियाँ और लब्धियाँ प्राप्त की हैं। साथ ही उनसे मन, इन्द्रियों, बुद्धि, चित्त और अन्तःकरण को निर्मल बनाया है। योगदर्शन इसी तरह का एक भारतीय दर्शन है; जिसका जीवन से सीधा सम्बन्ध है। योग-विद्या, योग-दर्शन, योग की विचार-पद्धति भारत में अतिप्राचीनकाल से चली आ रही है। योग-पद्धति एक अध्यात्म-पद्धति है, जीवन-सिद्धि का दर्शन है और चित्त-शोधन का मार्ग है। महर्षि पतंजलि पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने योग-विद्या पर क्रमबद्धरूप से योगसूत्रों की रचना की। पातंजल योग-दर्शन में योग-सम्बन्धी सभी बातें दे दी हैं। योग का मूलाधार परमात्मप्राप्ति है। जैनपरम्परा में आचार्य हरिभद्र ने योगदृष्टि समुच्चय, योग-बिन्दु, योग-शतक और योग-विंशति आदि ग्रंथों की रचना की है। बौद्धपरम्परा में योग-विद्या का प्रसिद्ध ग्रंथ है—विशुद्धिमार्ग । इस प्रकार भारतीय धर्मों की प्रत्येक शाखा ने योग के सम्बन्ध में कुछ न कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया है, और उन सिद्धान्तों के साथ ही, उसकी साधना के तरीकों की ओर भी कुछ निर्देश किया है।

जैन-परम्परा में भगवान् पार्श्वनाथ को परम योगी कहा जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र में भगवान् महावीर को योगीनाथ कहा है। भगवान्

पार्श्वनाथ ने तथा भगवान् महावीर ने योग की गहरी साधना की थी। और उस साधना के बल पर ही उन्हें सर्वज्ञता और वीतरागता उपलब्ध हुई थी। जैन-दर्शन के अनुसार मानव-जीवन का उच्चतम आदर्श है—वीतरागता और सर्वज्ञता। यदि जीवन में वीतरागता प्रगट न हो तो सर्वज्ञता किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। साधक वीतराग बन कर ही सर्वज्ञ बन सकता है। और वीतरागता की उपलब्धि योग-साधना एवं ध्यान-साधना के बिना सम्भव नहीं है। जैन-परम्परा में योग की अपेक्षा तप शब्द अधिक प्रचलित है। और तपों के द्वादशभेदों में अन्तिम भेद ध्यान है। ध्यान की साधना से ही जीवन में वीतरागता और सर्वज्ञता की ओर साधक बढ़ता है। जैन-परम्परा के प्रत्येक तीर्थंकर ने तप और ध्यान की साधना की है। तप का अर्थ है—इच्छानिरोध और ध्यान का अर्थ है—अपने स्वरूप में स्थित हो जाना। ध्यान जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। शुक्ल-ध्यान के बिना केवलज्ञान सम्भव नहीं है।

भगवान् महावीर की पावन जीवनगाथाओं का जब हम अध्ययन, अवलोकन करते हैं; और उनके प्रतिपादित तत्वों का जब हम चिंतन करते हैं; तब हमें ज्ञात होता है, कि भगवान् महावीर ने दीर्घकाल तक तप की आराधना किस प्रकार की थी और ध्यान की साधना किस प्रकार की थी। तप और ध्यान की साधना ही भग-वान महावीर को अत्यन्त प्रिय थी। आगमों में अनेक स्थानों पर उनके दुष्कर तप के तथा निर्मल ध्यान के वर्णन उपलब्ध होते हैं। भगवान् महावीर का साधनामय जीवन इस बात का साक्षी है कि वे केवल योगी ही नहीं, बल्कि योगीनाथ थे। चित्तवृत्तियों के विकारों को हटा देना ही योग-साधना का चरम लक्ष्य है। जिस व्यक्ति ने योग की साधना करते करते अपने चित्त के विकार और विकल्पों को मिटा दिया, वही व्यक्ति वस्तुतः योग-साधना के प्रयोगों में सफल हो सकता है।

जैन आचार्यों ने योग-विद्या के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। परन्तु उनका केवल रटन कर लेने से ही योगविद्या हस्तगत नहीं हो जाती, उसके लिए दीर्घकाल तक अभ्यास अपेक्षित है। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि सरल मार्ग और सरल पद्धति से वर्तमान युग के जिज्ञासु साधक को योग, ध्यान और तप के प्रयोग कराये जाएँ भ० महावीर ने जिस प्रकार योगसाधना के सिद्धान्तों को जीवन में उतारा था, क्रिया में परिणत करके बताया था, उसी प्रकार उन विलुप्त एवं पोथीपन्नों में बंद सिद्धान्तों को क्रिया में परिणत किया जाए, साधना में उतारा जाए। तभी वर्तमान जीवन की समस्याओं को सुलझाने में कुछ सूत्र उपलब्ध हो सकते हैं।

इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए राजगृह में वीरायतन एक केन्द्र है। वीरा-यतन-संस्थान में सचमुच योग साधना के लिए जिस पवित्र, सरल वातावरण, शान्त,

एकान्त स्थान, प्राकृतिक सुषमा और तरुछटा एवं वनसम्पर्क की आवश्यकता है, वह राजगृह स्थित वीरायतन में उपलब्ध है। इसी वर्ष आगामी नवम्बर मास में यहाँ ध्यान के प्रयोग किये जा रहे हैं। वीरायतन का लक्ष्य है—विविध प्रकार की योगपद्धतियों का समन्वय करके साधकों के समक्ष सरस और सरल योगपद्धति द्वारा योग-साधना के प्रयोग करके उनके जीवन में एक नया मोड़ दिया जाए। अत: वीरायतन अध्यात्म-साधना का एक मुख्य केन्द्र रहेगा ; जहाँ पर विविध प्रकार की अध्यात्म-साधनाएँ सिद्धान्त के रूप में और प्रयोगरूप में साधकों को बतलाई जाएगी। जो व्यक्ति वर्तमान भौतिकवादी अशांत वातावरण से ऊब चुके हों, उनके लिए वीरायतन के एकान्त वातावरण में रहकर योगसाधना करना उचित ही होगा। भगवान् महावीर ने ध्यानपद्धति किस प्रकार की बतलाई थी ? बुद्ध ने किस प्रकार ध्यान के प्रयोग किए ? इन सबका समन्वितरूप यदि आज की जन-चेतना के समक्ष रखा जाए, तो कोई कारण नहीं है, कि लोग उससे लाभान्वित न हों। वीरायतन की अध्यात्म-साधना के अन्तर्गत योग-साधना को प्रधानता की गई है। ध्यान-साधना और योग-साधना के विलुप्त प्रयोग की फिर से खोज करनी होगी और टूटे हुए सम्बन्धों को फिर से जोड़ने का प्रयास करना होगा। वीरायतन ने इस दिशा में कुछ कार्य करने का संकल्प किया है, और उसका प्रथम प्रयोग भी कुछ समय बाद वीरायतन की पुण्यभूमि पर किया जा रहा है।

भविष्य में वीरायतन योगसाधना के माध्यम से स्थायीरूप से व्यक्ति का जीवन शुद्ध एवं पवित्र रह सके, इस प्रकार के प्रयोग करेगा; जिससे वर्तमान युग के विषाक्त जीवन की समाप्ति हो और जनजीवन भी शान्त, धर्ममय व शुद्ध बने।
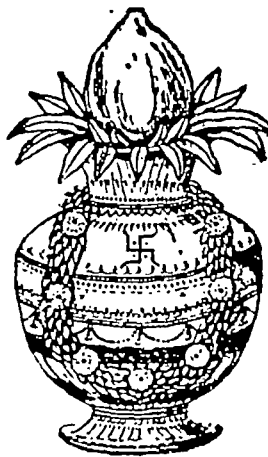
राजगृह में वभारगिरि पर्वत की सप्तपर्णी गुफा में
ध्यानस्थ उपाध्याय अमरमुनिजी

एकान्त स्थान, प्राकृतिक सुषमा और तरुछटा एवं वनसम्पर्क की आवश्यकता है, वह राजगृह स्थित वीरायतन में उपलब्ध है। इसी वर्ष आगामी नवम्बर मास में यहाँ ध्यान के प्रयोग किये जा रहे हैं। वीरायतन का लक्ष्य है—विविध प्रकार की योगपद्धतियों का समन्वय करके साधकों के समक्ष सरस और सरल योगपद्धति द्वारा योग-साधना के प्रयोग करके उनके जीवन में एक नया मोड़ दिया जाए। अत: वीरायतन अध्यात्म-साधना का एक मुख्य केन्द्र रहेगा ; जहाँ पर विविध प्रकार अध्यात्म-साधनाएँ सिद्धान्त के रूप में और प्रयोगरूप में साधकों को बतलाई जाए जो व्यक्ति वर्तमान भौतिकवादी अशांत वातावरण से ऊब चुके हों, उनके लिए यतन के एकान्त वातावरण में रहकर योगसाधना करना उचित ही होगा। महावीर ने ध्यानपद्धति किस प्रकार की बतलाई थी ? बुद्ध ने किस प्रकार प्रयोग किए ? इन सबका समन्वितरूप यदि आज की जन-चेतना के जाए, तो कोई कारण नहीं है, कि लोग उससे लाभान्वित न हों। अध्यात्म-साधना के अन्तर्गत योग-साधना को प्रधानता की गई है। और योग-साधना के विलुप्त प्रयोग की फिर से खोज करनी हो सम्बन्धों को फिर से जोड़ने का प्रयास करना होगा। वीरायतन ने कार्य करने का संकल्प किया है, और उसका प्रथम प्रयोग वीरायतन की पुण्यभूमि पर किया जा रहा है।

भविष्य में वीरायतन योगसाधना के माध्यम से जीवन शुद्ध एवं पवित्र रह सके, इस प्रकार के प्रयोग करेगा विषाक्त जीवन की समाप्ति हो और जनजीवन भी शान्त,

महावीर के उपदेशों को लोकजीवन में उतारने का माध्यम :

वीरायतन

—कु० निर्मला गांधी जैन 'अचल'
अध्यक्ष, वीरायतन बालिका संघ, राजगृह

महाश्रमण भगवान् महावीर श्रमण-संस्कृति के संस्थापक नहीं थे, अपितु वे श्रमण-संस्कृति के उन्नायक अवश्य थे। क्योंकि श्रमण-संस्कृति की दीर्घ परम्परा भगवान ऋषभदेव से प्रारम्भ हो कर नेमिनाथ के युग तक परिपुष्ट हो चुकी थी। और भगवान् पार्श्वनाथ के युग में आ कर वह व्यापक और विराट् भावनाओं से परिपूर्ण हो कर अपनी समुन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का प्रभाव बौद्ध-धर्म पर पर्याप्त रूप में पड़ चुका था। भगवान् महावीर ने अपने पञ्च महाव्रतों का जो परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप जन-चेतना के समक्ष रखा था, उसका मूल रूप भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में था। इस प्रकार श्रमण-संस्कृति भगवान् महावीर के युग तक इतनी प्रभावक हो चुकी थी, कि वैदिक-परम्परा के साहित्य पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। भगवान् महावीर ने अपने जीवनकाल में जिन नैतिक नियमों का उपदेश दिया था, उसे जैन परिभाषा में अणुव्रत तथा महाव्रत कहा जाता है। भगवान महावीर की देशना जन-जन के मंगल के लिए तथा समाज और राष्ट्र सभी के उत्थान के लिए थी। भगवान् महावीर ने ग्राम-धर्म नगर-धर्म राष्ट्र-धर्म आदि का उपदेश दिया था। इस प्रकार भगवान महावीर का उपदेश लोक-कल्याण और लोक-मंगल के लिए था। उनके उपदेश की सार्थकता जितनी उनके स्वयं के युग में थी, उससे भी अधिक उनके उपदेश की आवश्यकता आज के मनोविकारग्रस्त व्यक्ति, समाज

महावीर के उपदेशों को लोकजीवन में उतारने का माध्यम :

वीरायतन

—कु० निर्मला गांधी जैन 'अचल'
अध्यक्ष, वीरायतन बालिका संघ, राजगृह

महाश्रमण भगवान् महावीर श्रमण-संस्कृति के संस्थापक नहीं थे, अपितु वे श्रमण-संस्कृति के उन्नायक अवश्य थे। क्योंकि श्रमण-संस्कृति की दीर्घ परम्परा भगवान ऋषभदेव से प्रारम्भ हो कर नेमिनाथ के युग तक परिपुष्ट हो चुकी थी। और भगवान् पार्श्वनाथ के युग में आ कर वह व्यापक और विराट् भावनाओं से परि-पूर्ण हो कर अपनी समुन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का प्रभाव बौद्ध-धर्म पर पर्याप्त रूप में पड़ चुका था। भगवान् महा-वीर ने अपने पञ्च महाव्रतों का जो परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप जन-चेतना के समक्ष रखा था, उसका मूल रूप भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में था। इस प्रकार श्रमण-संस्कृति भगवान् महावीर के युग तक इतनी प्रभावक हो चुकी थी, कि वैदिक-परम्परा के साहित्य पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। भगवान् महावीर ने अपने जीवनकाल में जिन नैतिक नियमों का उपदेश दिया था, उसे जैन परिभाषा में अणुव्रत तथा महाव्रत कहा जाता है। भगवान महावीर की देशना जन-जन के मंगल के लिए तथा समाज और राष्ट्र सभी के उत्थान के लिए थी। भगवान् महावीर ने ग्राम-धर्म नगर-धर्म राष्ट्र-धर्म आदि का उपदेश दिया था। इस प्रकार भगवान महावीर का उपदेश लोक-कल्याण और लोक-मंगल के लिए था। उनके उपदेश की सार्थकता जितनी उनके स्वयं के युग में थी, उससे भी अधिक उनके उपदेश की आवश्यकता आज के मनोविकारग्रस्त व्यक्ति, समाज

और राष्ट्र को है। आज व्यक्ति-व्यक्ति और समाज-समाज में जो एक प्रकार का वर्ग संघर्ष चल रहा है, निश्चय ही उसके मूल में मानवीय मन की कलुषित वृत्ति सर्वाधिक करणीभूत है।

प्रश्न उठता है, कि भगवान् महावीर की देशना क्या थी? उनका उपदेश किस प्रकार का था? उत्तर में कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर का उपदेश तीन रूपों में सर्वजनपरिचित विख्यात है—अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह। यद्यपि अहिंसा और अपरिग्रह के सम्बन्ध में अन्य धर्मों में भी कुछ नैतिक नियम उपलब्ध होते हैं। किन्तु अनेकान्त के सम्बन्ध में अन्य परम्पराओं में कुछ भी नहीं कहा गया। पर यह सत्य है कि भगवान् महावीर के अनेकान्तवाद का किसी न किसी रूप में अन्य सभी सम्प्रदायों पर प्रत्यक्ष रूप में या परोक्षरूप में व्यापक प्रभाव पड़ा है। हम देखते हैं, कि अन्य धर्मों ने अपने-अपने सम्प्रदायगत ग्रन्थों में जहाँ जैन-धर्म का खण्डन किया है, वहाँ अनेकान्तवाद का खण्डन ही उपलब्ध होता है। बौद्ध-दार्शनिकों ने तथा वैदिक दार्शनिकों ने भगवान् महावीर के अनेकान्तवाद का खण्डन अवश्य ही किया है, दूसरी ओर जैन-परम्परा के समर्थ दार्शनिक आचार्यों ने, जिनमें सिद्धसेन दिवाकर और समन्तभद्र प्रमुख हैं, उन्होंने अपनी पूरी शक्ति अनेकान्त के विकास में, तथा अनेकान्त पर होने वाले आक्षेपों को निवारण करने में लगाई है।

भगवान् महावीर ने कहा था कि अहिंसा जब तक मानव-जीवन के धरातल पर नहीं उतरेगी, तब तक न वह स्वयं सुखी होगा, और न समाज ही सुखी हो सकेगा। समाज है, व्यक्ति मूलक और व्यक्ति है—समाज का घटक। जब व्यक्ति ही अशान्त हो तब समाज शान्त कैसे हो सकता है? इस समस्या का महावीर ने एक ही समाधान दिया, कि अपने प्रेम को प्राणी-मात्र में व्याप्त कर दो। अपने प्रेम की परिधि को इतना व्यापक और विस्तृत बना दो, कि उसकी सीमा से बाहर एक भी प्राणी न रह सके, और जब तुम स्वयं जगत पर प्रेम की वर्षा करोगे, तो निश्चय ही दूसरों से तुम्हें प्रेम ही उपलब्ध होगा। प्रेम देने से ही प्रेम उपलब्ध होता है। महावीर ने कहा था—कुछ पाने का अधिकार उसे ही मिलता हैं, जिसने कुछ देना सीखा हो। इस जगत में मनुष्य वह उपलब्ध करता है, जो कुछ प्रदान करता है। जो कुछ दिया जाता है, वही हमारे पास लौट कर वापिस आ जाता है। पर्वत ही गहरी कन्दराओं से हम वही प्रतिध्वनि सुनते हैं, जो कुछ हम उसे प्रदान करते हैं। जब कुछ दिया ही नहीं गया, तब आपके पास कुछ लौट कर भी कैसे आएगा। अतः भगवान् महावीर का अहिंसासिद्धान्त सर्व-जनहिताय, सर्व-जनकल्याणाय और सर्व-जनमंगलाय था।

भगवान् महावीर के युग का समाज भी बहुत अधिक स्वस्थ समाज नहीं था। जो विकार, जो परिदोष आज हमें समाज में दृष्टिगोचर होते हैं, वे ही विकार और

वे ही परिदोष उस युग के समाज में भी थे। भगवान् महावीर ने कहा था कि पाप का मूल लोभ एवं तृष्णा है। जगत में जहाँ कहीं पापों का जन्म होता है, उनका मूल मनुष्य की लोभदृष्टि में ही रहता है। इस लोभवृत्ति को अथवा तृष्णा की भावना को क्षीण करने के लिए भगवान् महावीर ने तत्कालीन समाज को अपरिग्रह का उपदेश दिया था। भगवान् महावीर ने अपने प्रवचनों में कहीं पर भी यह नहीं कहा, कि वस्तु परिग्रह है। उन्होंने बार-बार एक ही बात कही थी, कि परिग्रह मूर्छा में है। व्यक्ति जगत् की जिस किसी वस्तु पर मूर्छा करता है, तब वह परिग्रह बन जाता है। जगत में न वस्तु बुरी है, और न धन बुरा है, बुरी है—मूर्छा। और जो कुछ मूर्छा है—वही परिग्रह है। मूर्छा-भाव का परित्याग ही महावीर के शब्दों में वास्तविक अपरिग्रह है। महावीर के अपरिग्रहसिद्धान्त में से दो अन्य सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं—त्याग और दान। त्याग करने से और दान देने से परिग्रह का विष क्षीण हो जाता है।

त्याग का अर्थ है—छोड़ देना, और दान का अर्थ है—स्वायत्त सम्पत्ति में से कुछ दे देना। छोड़ना और देना—दोनों उलझन भरे शब्द हैं। क्या छोड़ा जाए और क्या दिया जाए ? एक विकट समस्या है। महावीर ने कहा था, कि जगत के पदार्थों पर तुमने जो अपने मन की ममता को बिखेर रखा है, यदि उस ममता को तुम सर्वतोभावेन छोड़ सको तो, उस स्थिति में तुम अवश्य ही त्यागी बन सकोगे। अपने मन की दुर्बलता के कारण यदि ममता का परित्याग करने की सम्पूर्ण क्षमता न हो, तो धीरे-धीरे आंशिक रूप में उसका परित्याग करो। धन अथवा अन्य साधन-सामग्री पर जो एक ममता का भाव परिव्याप्त है, उस धन और साधन-सामग्री का आंशिक रूप में जो छोड़ना है, शास्त्रकारों ने उसे ही दान की संज्ञा प्रदान की है। जिस वस्तु का दान दिया गया, उतने अंश में ममता कम होती गई। कुछ आज दिया, और कुछ कल दिया तथा कुछ आने वाले भविष्य में दिया गया—इस प्रकार के देने के अभ्यास से धीरे-धीरे व्यक्ति त्याग की ओर अग्रसर होता जाता है। देने से अपरिग्रह प्रारम्भ होता है, और त्याग में उसकी परिपूर्णता हो जाती है। इस प्रकार त्याग और दान भगवान् महावीर के उपदेश के मुख्य विषय थे। भगवान् महावीर ने स्वयं भी दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व दान दिया था, और अन्त में सर्वत्यागी हो कर वीतरागता और सर्वज्ञता को उपलब्ध किया था।

किन्तु भगवान् महावीर ने इन प्राणवान् उपदेशों को लोकजीवन में उतारने तथा अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के पवित्र सिद्धान्तों को सामूहिकरूप से मूर्तरूप देने के लिए किसी न किसी सुदृढ़ संस्था की आवश्यकता है, जिससे वर्तमान अशान्त एवं समस्याकुल जनजीवन में वे सिद्धान्त और उपदेश साकार हो सकें।

भगवान् महावीर के इन्हीं पूर्वोक्त सिद्धान्तों एवं उपदेशों को साकाररूप देने के लिए पूज्य गुरुदेव राष्ट्र-सन्त उपाध्याय अमरमुनिजी ने समाज के समक्ष वीरायतन

के रूप एक भव्य योजना प्रस्तुत की है। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए तथा मूर्त रूप देने के लिए दर्शनाचार्या साध्वी चन्दना जी दो वर्षों से निरन्तर समग्र-भाव से परिश्रम कर रही हैं, और आज भी बिहार प्रान्त के प्राचीनतम नगर राजगृह में वे इसी महाउद्देश्य की संपूर्ति के लिए संलग्न हैं। उनकी छत्रछाया में मुझे भी वीरायतन की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। उनके सन्देश को लेकर मैंने अनेक बार पंजाब, महाराष्ट्र जैसे सुदूर प्रान्तों की यात्राएं की हैं। मैंने पाया है, कि समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति इस पवित्र पर्व पर कुछ महान् कार्य देखना चाहता है। सभी वर्ग के लोगों ने वीरायतनयोजना को खूब-खूब पसन्द किया है, और उसके सहयोग के लिए केवल भावना और अभिवचन ही नहीं दिए, क्रियान्वित रूप से सहयोग दिया है और भविष्य में भी सहयोग चालू रखने का संकल्प किया है। हम सबकी यह भावना है, कि हमारा वीरायतन महावीर के उपदेशों को लोकजीवन में उतारने का माध्यम बने।

अन्त में, मैं अपनी ओर से समाज के समग्र व्यक्तियों के समक्ष एक बात रखना चाहती हूँ, कि इस वर्ष दीपावली-पर्व पर भगवान् महावीर का निर्वाण शताब्दी वर्ष प्रारम्भ हो रहा है, और आगामी सन् ७५ की दीपावली पर पहुँच कर यह परि-समाप्त होगा।

अतः हम सबको प्रतिज्ञाबद्ध हो कर एवं अहिंसा आदि व्रतों का संकल्प लेकर अपने एवं समाज और राष्ट्र के जीवन को लक्ष्य की दिशा में ले जाना, पूर्णविकास की मंजिल प्राप्त करना है। वीरायतन इस पवित्र कार्य में हमारा सहायक बनेगा।
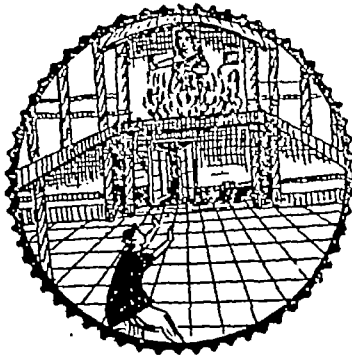
एक साथ चार पीढ़ियाँ :

मध्य में प्रवर्तक श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज, दाएँ-बाएँ उनके शिष्यरत्न उपाध्याय कविश्री अमरमुनि, सेवाभावी श्री अखिलेशमुनि, पीछे हैं—कविश्रीजी के शिष्य श्रीविजयमुनि, श्रीसुरेशमुनि और मध्य में उनके शिष्य श्रीजिनेशमुनि

वीरायतन और उसके सहयोगी

कु० शोभना जैन राजगृह
मंत्री, वीरायतन बालिका संघ

□

वीरायतन की जिस विशाल योजना की परिचर्चाएँ समाज की चेतना के समक्ष तीन वर्षों से चल रही हैं, वह वीरायतन-योजना क्या है? उसका क्या स्वरूप है? उसके उद्देश्य कितने महान् हैं? इस सम्बन्ध में मुझ से अनेक प्रान्तों के लोगों ने अनेक बार अनेक प्रश्न पूछे है।

मैंने इन प्रश्नों पर स्वयं भी विचार किया है, और यथाशक्य उनका समाधान भी किया है। वीरायतन—योजना के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को लेकर मैंने महाराष्ट्र और मद्रास जैसे सुदूर प्रान्तों की अनेक बार यात्राएँ की हैं, और समाज के मानस को समझने का प्रयास भी किया हैं। वीरायतन के सम्बन्व में समाज के वे व्यक्ति जो इस क्षेत्र से वहुत दूर रहते हैं—इस सम्वन्ध में वे क्या सोचते हैं, उनके विचार करने की पद्धति क्या है, उनके मन में क्या-क्या आशंकाएँ हैं, और किस प्रकार की कल्पनाएँ हैं? इन यात्राओं में मैंने सामाजिक-मानस का भली-भाँति अध्ययन किया है।

मैंने अपनी इन तीन लम्वी यात्राओं में समाज के बुद्धिवादी वर्ग, श्रम-निष्ठ वर्ग और पूँजीवादी व्यक्तियों से जो विचार-चर्चाएँ की है, उसका फलित अर्थ यही है, कि मुझे वीरायतन का विरोध कम और सहयोग ही अधिक मिला है। समाज में अनेक व्यक्ति मुझे इतने भावनाशील मिले, कि वे वीरायतन के लिए सब-कुछ करने को तैयार है। मेरा अपना यह विश्वास रहा है, कि समाज में सहयोग देने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं है। यदि कमी है, तो केवल सहयोग लेने वालों की। यदि

सामान्य जन-मानस को स्वस्थ एवं सही दृष्टिकोण से वीरायतन-योजना के स्वरूप को बताया जाए, तो उनके मुख से सहयोग का स्वर ही नहीं निकलता, प्रत्युत सक्रिय रूप से पूर्ण सहयोग देने को तैयार रहे हैं। मैंने अनुभव किया है, कि समाज में धन-शक्ति, जन-शक्ति और बौद्धिक-शक्ति की कमी नहीं है। समाज के पास सब कुछ है, वह कुछ करना भी चाहता है, कार्य करने की उसकी भावना कुंठित नहीं हुई है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उसे सही दिशा का निर्देशन मिले।

मैंने वीरायतन के प्रचार के लिए पहली यात्रा महाराष्ट्र के प्रमुख नगर नागपुर से प्रारम्भ की। हमारे यात्रा-दल की अध्यक्षा भावना हेमानी थी। वहाँ के लोगों ने वीरायतन-योजना के सम्बन्ध में हमारे विचारों को सुन कर सहयोग देने की भावना व्यक्त की, जिसे मैं कदापि विस्मृत नहीं कर सकूंगी। वीरायतन के उद्देश्य और उसकी भावी योजनाओं के सम्बन्ध में लोगों ने जिज्ञासा भरे मन से प्रश्न पूछे और पर्याप्त विचार-विनिमय करके भाइयों की अपेक्षा बहनों ने जन-कल्याणप्रद योजना को सक्रिय सहयोग दिया।

मेरी दूसरी यात्रा सौराष्ट्र की थी; जो राजकोट से प्रारम्भ की। राजकोट के सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित श्रावक दुर्लभजी भाई वीराणी से मुझे जो स्नेह, सद्भाव और वात्सल्य मिला, उसे मैं कभी भी भुला नहीं सकती। वीराणी-परिवार एवं वहाँ के प्रमुख बहन-भाईयों ने हमारा अच्छा स्वागत-सत्कार किया, जिससे निस्सन्देह वीरायतन बालिका संघ की सदस्याओं का मन उत्साह से भर गया। मैं नहीं समझती कि उन मधुमय मधुर क्षणों को हम भूल जायेंगी। दुर्लभजी भाई वीराणी की प्रेरणा से और उनके स्नेह भरे आग्रह से मैंने ४० अवधान भी किए, जो वहाँ की जनता की दृष्टि से पूर्णतः सफल रहे। परिणामतः वहाँ के स्थानीय पत्रों में वीरायतन योजना के सम्बन्ध में पर्याप्त समाचार प्रकाशित हुए। राजकोट का कार्यक्रम पूर्ण करके हम सौराष्ट्र के अन्य प्रसिद्ध नगरों में गईं। हम सौराष्ट्र में जहाँ-जहाँ गईं, खुले हृदय से सहयोग मिला और समय-समय पर वीरायतन को सहयोग देते रहने का आश्वासन भी मिला।

सौराष्ट्र की जनता वीरायतन-योजना से बहुत प्रभावित है। वह अपना पूरा सहयोग देने को तैयार है। यद्यपि वीरायतन का क्षेत्र सौराष्ट्र से बहुत दूर पड़ता है। परन्तु संस्था का उद्देश्य सुन कर एवं जान कर वहाँ के जनमानस में क्षेत्र की यह दूरी दूरी नहीं रह गई है। क्षेत्र की दूरी की चिन्ता में वे लोग पड़ते हैं, जो कुछ करना नहीं चाहते, कुछ न करने का बहाना ही दूरी के प्रश्न को खड़ा करता है। आज के साधनसम्पन्न युग में क्षेत्र की दूरी कुछ भी अर्थ नहीं रखती। संक्षेप में मेरी सौराष्ट्र की यात्रा पूर्णतः सफल रही।

मेरी तीसरी यात्रा मद्रास की थी। मद्रास में राजस्थान एवं गुजरात-सौराष्ट्र के जैन काफी बड़ी संख्या में रहते हैं। वे सब सम्पन्न एवं सुखी हैं। जैसे ही हम सौ०

प्रेमबाई कटारिया की संरक्षणता में वीरायतन के प्रचार के लिए मद्रास पहुँची, तो वहाँ के संघ ने हमारा स्वागत किया। वहाँ के संघपति मोहनमलजी चोरडिया, मन्त्री भँवरलालजी गोठी, बच्चूभाई, सुरेन्द्रभाई प्रमुख व्यक्तियों ने आत्मीयता के साथ वीरायतन-योजना की रूप-रेखा एवं उद्देश्य को सुना, समझा और अपना सहयोग दे कर हमारा उत्साह बढ़ाया। मद्रास के भाई-बहनों ने जो अपार स्नेह व्यक्त किया, हमारे जीवन के वे विशेष प्रसंग सदा स्मृति में रहेंगे।

इस प्रकार मेरी ये तीनों यात्राएँ फलवती रही हैं। इन यात्राओं के समय मुझे अनेक लोगों को वीरायतन के उद्देश्य को समझाने और उनके विचारों को समझने का अवसर मिला। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र एवं मद्रास में वीरायतन-योजना और उसके भविष्यगामी परिणामों के सम्बन्ध में लोगों ने हमारे विचारों को सुना-समझा और उनकी ओर से इस विषय में जो सुझाव मिले, उन्हें हमने अपनी योजना में सम्मिलित करने का प्रयास किया। मुझे सर्वत्र वीरायतन के प्रति गहरी सहानुभूति देखने और सुनने को मिली। यद्यपि कुछ लोगों के विरोधी स्वर भी सुनने को मिले। किन्तु वह विरोध वीरायतन एवं उसके उद्देश्य के प्रति नहीं, प्रत्युत इसलिए था कि 'वीरायतन की स्थापना राजगृह में की है। वह बहुत दूर है। हम में से बहुत व्यक्तियों ने अभी तक राजगृह देखा ही नहीं है। उतनी दूर कौन जाएगा ?' इसके उत्तर में मैंने कहा—'एक दिन आपके पूर्वजों के लिए मद्रास भी बहुत दूर था। परन्तु आज वह आपको राजस्थान से भी अधिक प्यारा हो गया है। राजस्थान से मद्रास जितना दूर है, उतना राजगृह नहीं है। और यदि आपको भगवान् महावीर की स्मृति में जन-कल्याण के लिए कुछ करना है, तो सबसे उपयुक्त स्थान राजगृह ही हो सकता है। राजगृह के पीछे दीर्घ-काल का लम्बा इतिहास है, जिससे आप और हम सब जुड़े हुए हैं। हमारी संस्कृति और सभ्यता के सुन्दर संस्कार राजगृही की धरती में अन्तर्निहित है, उन्हें खोज निकालना होगा। हमारा धर्म, इतिहास, संस्कृति और शास्त्र-आगम, जो कुछ हमारे पास हैं, वह इस प्राचीन नगरी की ही देन हैं। एक दिन यह मगधदेश की राजधानी थी। राजगृह नगर के कण-कण में हमारा इतिहास प्रसुप्त है। यदि उसे जागृत करना है, तो क्षेत्र दूर है—इस भय को छोड़ कर राजगृह आना होगा, और कुछ करना होगा। इसलिए आपको वीरायतन को सहयोग देना चाहिए। मैंने उन प्रश्नकर्ताओं से कहा था, कि यदि कृष्ण को याद रखना है, तो वृन्दावन को भुलाया नहीं जा सकता। क्या कृष्ण के भक्त वृन्दावन की दूरी का सवाल कभी उठाते हैं ? वे दूरी की शिकायत कभी नहीं करते। बुद्ध के भक्त एशिया एवं विशेषत: सुदूर देशों से सारनाथ, बोधगया एवं नालन्दा आ कर प्रसन्नता अनुभव करते हैं। परन्तु उन्होंने कभी यह शिकायत नहीं कि सारनाथ, बोधगया एवं नालन्दा आदि इतनी दूर हैं, हम कैसे जा पाएँगे ? मैं नहीं समझती कि महावीर के भक्त एवं अनुयायी राजगृह दूर है, यह चिन्ता करते हैं ! आप धन कमाने के लिए विश्व के दूर देशों में जा सकते हैं, तो क्या राजगृह नहीं

आ सकते। भौतिक एवं सांसारिक कार्यों के व्यस्त क्षणों में से कुछ समय निकाल कर राजगृह के शान्त-प्रशान्त वातावरण में बिताए, तो आपको अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होगी। मैं आपसे अनुरोध करती हूँ कि आप एक बार राजगृह आएँ, वीरायतन को देखें-परखें, उसके बाद मुझे विश्वास है कि आप स्वयं कहेंगे कि अध्यात्म-साधना के लिए राजगृह उपयुक्त स्थान है।,

इन यात्राओं के समय मैंने जन-मानस का जो अध्ययन किया, उसके कुछ मधुर संस्मरण लिखने का प्रयत्न करूँगी। अब मैं उन प्रश्नों पर अपने विचार अभिव्यक्त करूँगी, जिनके उत्तर वहाँ के बुद्धिवादी लोगों के पूछने पर मैंने उन्हें दिए थे। यात्रा के समय लोगों से जो विचार-विमर्श हुआ, वह यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ—

सबसे मुख्य बात यह है, कि जब मैंने लोगों से वीरायतन में सहयोग देने की अपील की, तब किसी ने भी सहयोग देने से इन्कार नहीं किया। हमारा उत्साह बढ़ाने के लिए उन्होंने प्रेमपूर्ण शब्दों में कहा, कि 'हमारी समाज में तुम्हारे जैसी बालिकाएँ एक महान और विशाल योजना को ले कर चल रहीं है, हमें आशा ही नहीं पूरा विश्वास है, कि तुम अपने कार्य में सफल रहोगी।' तुम वीरायतन के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करो; हम अपना सहयोग अवश्य देंगे। हमारे लिए ये आशाभरे शब्द, तथा समाज के प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं की हमारे प्रति मंगलमय भावना हमारे उत्साह में अभिवृद्धि करने को काफी हैं।

'राजगृह बहुत दूर है, वहाँ जाकर कौन कार्य करेगा?' इस प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा—'यह आपको सोचना है कि कौन करेगा और किस प्रकार करेगा? हमारा काम योजना को प्रारम्भ कर देना है। उसके बाद इस कार्य की संपूर्ति कौन करेगा, और कैसा करेगा? इस विषय में हमारे से अधिक आपको सोचना है। क्योंकि भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धा, निष्ठा एवं भक्ति आपके मन में भी है। अतः भगवान् महावीर की स्मृति में आयोजित इस महान् कार्य से भगवान् महावीर का भक्त अलग रहने की कल्पना कैसे कर सकता है? आप लोग सिर्फ पैसा दे कर अलग नहीं हो सकते। इस विशाल कार्य में धन के साथ-साथ आपके क्रियात्मक सहयोग की भी अपेक्षा रहेगी और इस कार्य को सम्पन्न करना आप जैसे बुजुर्गों का परम कर्तव्य होगा।'

कुछ व्यक्तियों ने मुझ से यह प्रश्न भी किया कि 'वीरायतन की स्थापना राजगृह में न करके दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और आगरा जैसे शहरों में क्यों न की जाए? जहाँ सब तरह सुविधा और स्थानीय कार्यकर्ताओं का सहयोग सहज ही मिल सकता है।' मैंने कहा—'बात आपकी बिल्कुल ठीक है। इस विषय में हम पर्याप्त विचार कर चुके हैं। मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ, कि आपको जब कुछ करना है, तब इतना क्षेत्र एवं स्थान का व्यामोह क्यों है? जहाँ पर आप लोगों की संख्या अधिक हो, वहीं पर ही कार्य हो और जहाँ पर संख्या कम, नगण्य या बिल्कुल न हो,

वहाँ पर कार्य न करें-इसका अर्थ यह होगा कि आप सामान्य जनता के लिए कुछ करना नहीं चाहते। आप धन एवं शक्ति का उपयोग केवल अपने समाज के लिए ही करना चाहते हैं। भगवान् महावीर ने इस क्षेत्रव्यामोह की भावना को भी परिग्रह कहा है। इस परिग्रह की दीवार को तोड़ने के लिए आपको अपने घेरों से बाहर निकलना होगा। भारत के उन सुदूर प्रान्तों में जाना होगा, जहाँ आज तक भगवान् महावीर का दिव्यसन्देश पहुँच नहीं पाया है। जब तक आप अपने क्षेत्रों से दूर हट कर कुछ कार्य नहीं करेंगे, तब तक आप लोगों को जन-जीवन की सही स्थिति का परिज्ञान नहीं हो सकेगा। प्राचीन युग के मगधदेश और वर्तमान के बिहारप्रान्त में जहाँ पर कभी लाखों की संख्या में जैन थे, विलुप्त क्यों हो गए? इसका एक ही कारण है कि हम अपनी सुख-सुविधाओं के चक्कर में पड़ गए और सामान्य जनता से हमारा सम्बन्ध टूटता गया। मेरा अपना विचार यह है कि उन टूटे हुए सम्बन्धों को हमें पुनः जोड़ना होगा और उसका माध्यम बन सकता है—**वीरायतन।**

कुछ लोगों ने जिज्ञासाभाव से यह भी पूछा कि निर्माणकार्य पूर्ण होने के बाद उसका भविष्य क्या रहेगा? निस्सन्देह यह प्रश्न अपने आप में महत्वपूर्ण है। वर्तमान में जीवित रह कर भी भविष्य के सम्बन्ध में विचार करना ही चाहिए। भविष्य की ओर से आँखें बन्द नहीं करनी चाहिए। इतनी विशाल योजना के भविष्य के विषय में प्रश्न उठना स्वाभाविक है। मैंने उन्हें विनम्र शब्दों में कहा—आप अपने व्यापार के क्षेत्र में बहुत बड़ा Plan तैयार करते हैं। Industries या Factory (कारखाना) लगाते हैं, इसमें कितना खर्च लगेगा, इसका कल्पित मानसिक-चित्र भी तो बनाते हैं, परन्तु मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि आप उस समय सब-कुछ सोच कर भी क्या यह नहीं सोचते कि भविष्य में इसे कौन संभालेगा या इसका क्या होगा? निश्चय ही आप अपने मन में यह निर्णय कर लेते हैं, कि मेरे बाद मेरा पुत्र संभालेगा। मैं आपसे विनम्र निवेदन करना चाहती हूँ कि आप सही दृष्टिकोण वीरायतन के प्रति अपनाइये। वह किसी एक व्यक्ति या एक परिवार की सम्पत्ति तो है नहीं, यह तो समग्र समाज की है। जब तक आप हैं, तब तक आप संभालें, भविष्य की बात भविष्य में आने वाली पीढ़ी सोचेगी। यदि वर्तमान में हम कुछ न कर सके, भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ बना कर न दे सके, तो भावी पीढ़ी संभालेगी क्या? अतः आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान में हम निश्चिन्त हो कर उपयोगी कार्य कर जाएँ, उसे संभालने वाला उपलब्ध हो जाएगा।

मैंने सर्वत्र वीरायतन के लिए जनता के मानस में उत्साह, एवं गहन जिज्ञासा को देखा। जन-जन के मन में जिज्ञासा की भावना को जागृत करना ही हमारे प्रचार का एकमात्र उद्देश्य था। जिसमें हम पूज्य-गुरुदेव की कृपा से एवं पूज्य महासतीजी के आशीर्वाद से पूर्णतः सफल रही हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य महान् है, शानदार है, और उज्ज्वल है। मैं स्वयं और मेरी सहयोगी अन्य बालिकाएँ आज भी पूर्ण आस्था और अचल निष्ठा के साथ इस महान् योजना को क्रियान्वित करने के कार्य में दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी के नेतृत्व में कार्य कर रही हैं और भविष्य में भी इस कार्य की संपूर्ति तक हमारा यह प्रयत्न गतिशील ही रहेगा।

कला-प्रदर्शिनी की उपयोगिता
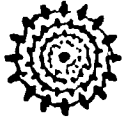
—अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

☐

प्रकृति स्वयं कलात्मक है। अनन्त जीवजन्तुओं, पेड़पौधों, पहाड़ों आदि की ओर मानव जब खुली आँखों से देखता है, तो चारों ओर इतने प्रकार और ऐतिहासिक चीजें उसको देखने को मिलती है, जिससे उसको बड़ी ही प्रेरणा मिलती है, प्रत्येक कार्य में कुशलता, विशेषता और सुन्दरता ही कला है। गीता में इसी कर्म की कुशलता को ही कला बतलाया है। जब से मानव ने अपनी बुद्धि का विस्तार एवं उपयोग किया, तब से वह निरन्तर कला की ओर अग्रसर होता रहा है, इसीलिए **सत्यं, शिवं, सुन्दरम्** का समन्वय हुआ और वही कला है।

जैनधर्म के प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव ही भारतीय संस्कृति और कला के प्रथम पुरस्कर्ता हैं, उससे पहले मानव-जीवन भी पशु-पक्षियों की तरह एक ढाँचे से चल रहा था। प्राकृतिक वस्तुओं से जीवननिर्वाह सहजरूप में हो जाता था, इसलिए कृषि का व्यवहार नहीं था। जैनग्रन्थों में उसे यौगलिक काल और भोग-भूमि कहा गया है। प्रकृति के नियमों के अनुसार उत्थान और पतन होता रहता है, अतः यौगलिक काल में भी एक बड़ा परिवर्तन आया। भगवान् ऋषभदेव का जन्म उसी सन्धि या क्रान्तिकाल में हुआ। पहिले १० प्रकार के वृक्ष थे, जिनसे भोजन, वस्त्र आदि जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। इसीलिए उन वृक्षों को कल्पवृक्ष का नाम दिया गया है। क्रमशः लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ी और वृक्षों की फलोत्पादन शक्ति कम होती गई। अतः जीवननिर्वाह में कठिनाई उपस्थित होने लगी। भगवान् ऋषभदेव ने तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लोगों को असि, मसि कृषि तथा कुम्भकार, सुधार आदि की कलाएँ सिखाईं। इससे भारतीय सभ्यता का विकास हुआ। जैन आगमों के अनुसार पुरुषों की ७२ और स्त्रियों की ६४ कलाओं को सिखाने वाले भगवान् ऋषभदेव ही हुए।

इन ७२ और ६४ कलाओं के नाम और भेदों पर ध्यान देने से हमें कला के तत्कालीन व्यापक अर्थ-भाव का बोध होता है। आजकल हम कला का शिल्प, साहित्य एवं संस्कृति के रूप में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करते हैं, किन्तु तब ये सभी बातें कला के अन्तर्गत ही मानी जाती थीं। ज्ञान, विज्ञान और जीवनोपयोगी समस्त

बातों का समावेश उन ७२ और ६४ कलाओं में प्रायः हो जाता है। भगवान् ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को लिपि लिखना सिखाया, दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंकगणित की शिक्षा दी। खेती करना, अनाज आदि को पका कर खाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, मकान बनाना आदि बातों की शिक्षा सब लोगों को भगवान् ऋषभदेव ने दी।

आजकल कला के मुख्यतः दो भेद माने जाते हैं।—१. उपयोगी कला, २. ललित कला। इनमें से जीवनयापन में आवश्यक विविध कार्यों को उपयोगी कला और सौन्दर्यप्रधान सृजन-कार्यों को ललितकला माना जाता है। ललितकला में प्रधानतया साहित्य, काव्य, संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति, वस्तु आदि आकर्षक और सुचारु निर्माण की जाने वाली कृतियों का समावेश किया जाता है। कला के कुछ प्रकारों को शिल्प एवं कारीगरी के नाम से भी कहा आता है।

कला की उपयोगिता—कला यदि मानवीय सृष्टि का उपनाम है, तो इसका उपयोग जीवन के प्रत्येक कार्यों में होता है। क्योंकि मनुष्य प्रतिसमय कुछ न कुछ सृजन करता ही रहता है। चाहे वह बोलने के रूप में हो, लिखने के रूप में हो, या किसी अन्य वस्तु के निर्माण करने के रूप में हो। इसलिए कला के बिना जीवनयापन दुष्कर है, जो भी काम किये जायँ वे कुशलता और सुन्दरतापूर्वक किये जायँ तो वे कला की संज्ञा पा जाते हैं।

कला के उत्कर्ष में जैनों का योगदान—जैनसमाज सदा से ही कला का प्रेमी और उसके उत्कर्ष में प्रगतिशील रहा है। उसके ग्रन्थलेखन की भी एक कला है। जिसमें अक्षरों की सुन्दरता त्रिपाठ, पंचपाठ-शैली, अलंकरणशैली, स्वर्णाक्षरी और रौप्याक्षरी, ये लेखनकला के विविध प्रकार हैं। उसके सम्बन्ध में मुनि पुण्य विजयजी का 'भारतीय श्रमण संस्कृति अने लेखन-कला', ग्रंथ द्रष्टव्य है। चित्रकला और मूर्तिकला के विषय में तो जैनसमाज ने बहुत बड़ा योग दिया है। ताड़पत्र चित्र-विज्ञप्ति पत्र, कागज, काष्ठ, वस्त्र, और भित्तिपत्र जैन चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। पीतल और सर्वधातु की तथा पाषाण की प्रतिमाएँ बहुत ही सुन्दर और विविध प्रकार की मिलती हैं। आबू, राणकपुर, देवगढ़ आदि सैकड़ों स्थानों में सुन्दर जैन मूर्तियां और मन्दिर जैनसमाज की कलाप्रियता को उजागर कर रहे हैं।

कलात्मक वस्तुओं का प्रदर्शन मानवजीवन को संस्कारित और कलाप्रेमी बनाने में तथा ज्ञानवृद्धि करने में बहुत ही सहायक है, इससे बालक से ले कर वृद्ध तक सभी को कलात्मक प्रेरणा मिलती है। सुन्दर सृजन के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता है। इसलिए ऐसे आयोजन बहुत ही जरूरी है। भ० महावीर के २५ सौ वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में स्थान-स्थान पर कलाप्रदर्शनी रखी जानी चाहिए, जिससे जनता को जैनकला का परिचय मिल सके।

—:०:—

भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में

वीरायतन के द्वारा आयोजित कार्यक्रम

भारत के धर्म और दर्शन के इतिहास में श्रमण भगवान् महावीर की देन एक अपूर्व देन है। उन्होंने अपने दीर्घ-तपोमय जीवन में अनेकान्त, अहिंसा और अपरिग्रह के जो प्रयोग किये हैं, वे मानवसभ्यता की सुरक्षा के महान आधारस्तम्भ हैं। श्रमण भगवान् महावीर ने विचार और आचार का जो संतुलित रूप जन-चेतना के समक्ष प्रस्तुत किया था, वह तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के द्वारा तो स्वीकृत किया ही गया था, तदुत्तरकाल में भी विभिन्न सम्प्रदायों ने उसे किसी न किसी रूप में स्वीकृत किया है। जीवन-तत्व का जो विश्लेषण भगवान् महावीर ने अपने अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया था, वह समग्र रूप से भारतीय-संस्कृति की विशेष धरोहर है।

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष पूरे हो रहे हैं। इन २५०० वर्षों में अजस्र-धारा से भारत की धरती पर कभी तीव्र, तो कभी मन्दगति से अनेकान्त और अहिंसा की सरस-सरिता जन-जीवन को आप्लावित करती आ रही है। प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है, कि वह भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट अनेकान्त और अहिंसा की दिव्य-भावना को अपने जीवन में साकार करने के प्रयोग निष्ठा के साथ करता रहे और साथ ही उपलब्ध सत्य को जन-जीवन में वितरित करने का सतत सात्विक प्रयास भी। यही उस महातिमहान दिव्य-आत्मा की पावन स्मृति है।

भगवान् महावीर ने अध्यात्म-साधना के फलस्वरूप जिन तत्वों का साक्षात्कार किया, और अपने प्रवचनों में जिनका निरूपण किया, उनके संकलन को आगम और शास्त्र कहते हैं। आगमों के एक-एक शब्द में गम्भीर रहस्य अन्तर्निहित है। उस तत्व ज्ञान (रहस्य) को समझने एवं हृदयंगम करने के लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है।

दीक्षा-स्वर्ण जयंती पर प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी, उपाध्याय श्री अमरमुनि को 'राष्ट्रसंत' के रूप में सम्मानित कर, खादी की चादर भेंट कर रही हैं। १३ मार्च १९७०, अहिंसाभवन, देहली।

सम्राट् श्रेणिक के शासनकाल में मगधदेश की इतिहासप्रसिद्ध राजधानी, इसी राजगृही में २५०० वर्ष पूर्व श्रीगौतम और श्रीसुधर्मा आदि प्रमुख गणधर आगम-वाचन करते थे, और हजारों की संख्या में राजवंश से लेकर सर्वसाधारण प्रजा तक के श्रद्धाशील उपासक तथा उपासिकाएँ श्रोताओं के रूप में उपस्थित होते थे। प्राचीनकाल के उसी भव्य दृश्य को पुनः वीरायतन की भूमि पर साकार करने का अपने में यह एक अभिनन्दनीय शुभसंकल्प एवं पावन प्रयत्न है।

श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद प्रथम आगम-वाचना पाटलिपुत्र में, दूसरी मथुरा में और तीसरी वल्लभी में हुई थी। उसके बाद यह परम्परा प्रायः लुप्त-सी हो गई। उस विलुप्त परम्परा को पुनः क्रियान्वित करने का शुभ संकल्प वीरायतन ने किया है। राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के सान्निध्य में ११ नवम्बर ७४ से २५ दिसम्बर ७४ तक ४५ दिन का निर्वाण-शताब्दी का कार्यक्रम रखा है। उसमें प्रति दिन निर्धारित क्रम से एक-एक आगम का अंशतः स्वाध्याय, उसका संक्षिप्त परिचय, मूलस्पर्शी अर्थ, और अन्त में उस विषय पर प्रवचन होंगे।

कार्य-क्रम

१—सेवा के रूप में निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर विशालरूप में नेत्र-यज्ञ भी होगा—इसमें कुशल डॉक्टरों के द्वारा नेत्रों की चिकित्सा एवं ऑपरेशन किए जाएँगे तथा ऑपरेशन के बाद चश्मा दिया जायगा। इस प्रकार का नेत्र-दान-यज्ञ वीरायतन की भूमि पर पहले भी हो चुका है।

२—इस अवसर पर एक चलते-फिरते औषधालय की भी योजना है। एक डॉक्टर प्रतिदिन जीप से निकट के गाँवों में जा कर बीमार-व्यक्तियों के रोग का निदान करेगा, और उन्हें औषधि भी देगा।

३—अपंग व्यक्तियों को प्रतिदिन भोजन कराने की भी योजना है।

४—इन ४५ दिनों में शिक्षण के रूप में छात्र-छात्राओं का एक शिविर भी आयोजित किया जा रहा है—जिसमें दर्शनाचार्या साध्वी श्रीचन्दनाजी छात्र-छात्राओं का धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से मार्गदर्शन करेंगी।

५—स्थानीय विद्यालयों के छात्र-छात्राओं को उपहार देने की भी योजना है।

६—प्रतिदिन सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं विचार-गोष्ठी का कार्यक्रम भी रहेगा।

७—२५ दिसम्बर ७४ से ३ जनवरी ७५ तक साधना के रूप में १० दिवसीय ध्यान (विपश्यना) शिविर भी सुप्रसिद्ध ध्यानयोगी गोयनकाजी में हो रहा है।

८—वीरायतन की ओर से मनाये जाने वाले निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रम में सम्मिलित होने वाले सज्जनों के ठहरने एवं भोजन की व्यवस्था 'वीरायतन' ने की है। आप अपने एवं अपने साथियों के आगमन की सूचना शीघ्र देने की कृपा करें, जिससे व्यवस्था करने में सुविधा रहे।

निवेदक

खेलशंकर दुर्लभजी जौहरी (जयपुर)

अध्यक्ष—'वीरायतन'

पो०-राजगृह, जिला-नालन्दा (बिहार)
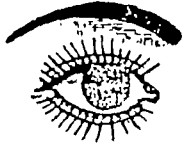
वीरायतन की प्रगति : एक नजर में

(१) **दान**—सन् १९७३ से अब तक तथा अभी-अभी ता० ३१ अक्टूबर को शरदपूर्णिमा को उपाध्यायश्रीजी की जन्मतिथि पर वीरायतन के द्वारा विद्यादान (विद्यालय के रूप में), नेत्रदानयज्ञ, औषधिदान, वस्त्रदान, अन्नदान (गरीबों एवं जरूरतमन्दों को यथावश्यक कपड़े व भोजन वितरण) किया गया ।

(२) **शील**—इस क्षेत्र के सैंकड़ों व्यक्तियों ने शराब मांस आदि दुर्व्यसन साधु-साध्वियों की प्रेरणा से छोड़े ।

(३) **तप**—कई बहनों व साध्वियों ने तेला से ले कर अठाई तक तपस्याएँ की । दिव्या आदि कई बहनों ने शास्त्रस्वाध्याय किया । उत्तराध्ययन सूत्र का प्रकाशन हुआ ।

(४) **भाव**—इस क्षेत्र के लोगों का वीरायतन एवं साधुसाध्वी-वर्ग के प्रति अद्भुत श्रद्धा-भक्तिभाव है, उनमें तथा राज्यसरकार के व्यक्तियों में सहयोग की भावना है । कलकत्ता, आगरा, दिल्ली आदि अनेक क्षेत्रों से लाखों रुपयों के आर्थिक सहयोग एवं सहयोग-वचन प्राप्त हुए है । अभी-अभी बिहार सरकार ने वीरायतन को २४ एकड़ भूमि देने की घोषणा की है । वीरायतन बालिका संघ, ब्राह्मीकलासदन आदि कर्मठ संस्थाएँ भी इसके अन्तर्गत बनीं ।

(५) **भवननिर्माण**—जो अब तक हो चुका है—

(१) विद्यालय का भवन (२) लघु चिकित्सालय (एक्सरे केन्द्र) (३) कार्यालय भवन, (४) अतिथिभवन, (५) जलकूप, (६) गुणशीलक चैत्य-वन आदि बन चुके हैं । वीरायतन की जमीन के चारों ओर बाउण्डरी खिंच चुकी है; उसी में उपाश्रय का निर्माणकार्य प्रारम्भ हो चुका है । रेस्टहाउस से वीरायतन तक सड़क तथा पुल का निर्माण भी हो चुका है । अब निकट भविष्य में आगममन्दिर, ध्यानकेन्द्र, कलानिकेतन आदि बनने की सम्भावना है ।

वीरायतन के सहयोगियों के लिए—सुअवसर

जो भी धर्मप्रेमी भाई-बहन अपने किसी भी आत्मीयजन की स्मृति में नामोल्लेख के साथ विशेष निर्माण कराना चाहें तो उनके लिए स्वर्ण अवसर—

१—अतिथिभवन—'मैत्रीविहार' ७१०००)
  प्रत्येक कमरा ७ हजार,
  प्रत्येक फ्लेट १५ हजार,
२—उपाश्रय—'सर्वतोभद्र' ७१०००)
  'धर्मदीप' ७१०००)
३—कार्यालय—'प्रेरणा-तन्त्र' १५०००)
४—चिकित्सालय—'आरोग्यरश्मि' ६१०००)
५—नेत्र-चिकित्सालय ३१०००)
६—जंगम चिकित्सालय ५१०००)
७—एक्स-रे-केन्द्र ५१०००)
८—पुस्तकालय-'श्रुतमन्दिर' ५१०००)
९—बालकल्याणकेन्द्र २५०००)
१०—उद्योगकेन्द्र-कला-निकेतन, ३१०००)
११—कुंआ-'क्षीरोदक' १५०००)
१२—प्राथमिक विद्यालय ५१०००)

वीरायतन की प्रगति का संक्षिप्त इतिहास

सन् १९७१ का जनवरी का महीना था। उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी म०, साध्वी-रत्न सुमतिकुंवरजी, साध्वी श्रीचन्दनाजी के साथ विचारचर्चा में लीन थे कि भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी आ रही है। इसके उपलक्ष्य में उनके स्वपरकल्याणकारी सिद्धान्तों के अनुरूप कौन-सी उपलब्धि हो सकती है, जो जीवन के मूल्यों को बदल सके। बहुत कुछ मन्थन करने के बाद आपने **'वीरायतन'** नामक योजना प्रस्तुत की। अप्रैल १९७१ के श्री अमरभारती के अंक में सर्वसाधारण के विचारार्थ वह योजना प्रकाशित हुई; जिसमें आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं जागतिक विकास के विविध कार्यक्रम निहित थे। इस योजना का प्रारूप भी भारत के विविध प्रान्तों में विचरण करने वाले तेजस्वी विचारक साधु-साध्वियों की सेवा में विचारविमर्श के हेतु भेजा गया। फलतः अधिकांश साधु-साध्वियों के अनुकूल उत्तर मिले, सुझाव भी मिले और कई प्रबुद्ध साधु-साध्वियों ने अपनी समर्पण-भावना भी बताई। कई साधु-साध्वियों तथा धर्मश्रद्धालु भाई-बहिनों ने अपनी ओर से सेवा की भावना भी प्रस्तुत की। बस, यहीं से **वीरायतन** की गंगा प्रादुर्भूत हुई।

सर्वप्रथम अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसा आदर्श केन्द्र बनाने की कल्पना हुई, जो धर्म, संस्कृति, समाज, राष्ट्र, एवं विश्व की समस्याओं के समाधान में यथावसर कुछ योगदान दे सके। योजना बहुत लम्बी चौड़ी जरूर थी; लेकिन ज्यों ही उपाध्यायश्रीजी ने इसे मूर्तरूप देने के लिए आह्वान किया, सर्वत्र इसे समर्थन मिला। सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा के ता० १५-४-७१ के अधिवेशन में वीरायतन की योजना प्रस्तुत हुई। एक तदर्थ समिति का गठन भी इसे क्रियान्वित करने हेतु किया गया।

कुछ समर्पणपरक उत्साहप्रद पत्र

वीरायतन योजना में सहयोग के लिए पत्रों का तांता लग गया। साध्वी सरोज ने लिखा—"इस लोकमंगलकारी श्रेष्ठ निर्माणयोजना में मैं सक्रिय सहर्ष सहयोग देने के लिए तैयार हूँ.......'' कु० निर्मला गांधी ने अपने निश्चित उद्गार प्रगट किये "....वीरायतन योजना पढ़ कर अत्यन्त खुशी हुई। मुझे ही नहीं, अपितु मुझ-सी सैकड़ों लड़कियाँ ऐसी होंगी, जिन्हें इस योजना को पढ़ कर पपीहे को पानी मिलने जैसी खुशी हुई होगी। इस योजना में मैं और मेरी सहयोगिनी अनेक बहनें तन-मन समर्पित करने को तैयार हैं।......''

धर्मोपदेष्टा श्री पुष्फभिक्खुजी म० की उत्साहप्रद शुभकामना पढ़िये—

"उवणेत्त तहापत्तं, सुत्थाइं लोयणाइं।
पढ़िया मए पत्तमि 'वीरायणयण-जोजणा' ॥
जुगाणुऊला समयाणुसारी, सुसारजुत्ता य विभाइ एसा।
रोएइ मज्झं सहला य होउ, एसत्थि एका सुहकामणा मे ॥"

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म०, आ० श्री हस्तिमल्लजी म०, आचार्यश्री तुलसीजी; मालवकेसरी श्रीसौभाग्यमलजी म०, भंडारी पद्मचन्दजी म०, वाणीभूषण विमलमुनिजी, विश्वधर्मप्रेरक श्रीसुशीलमुनिजी, चन्दनमुनिजी, सुमनमुनिजी, ज्ञानमुनिजी, मुनिश्री सन्तबालजी, मुनिश्री नेमिचन्द्रजी आदि तथा साध्वीश्री उज्ज्वलकुँवरजी, साध्वी सीताजी, सुमतिकुंवरजी, चन्दनाजी, श्रीहुकमदेवीजी, श्रीपुष्पवतीजी, कुसुमवतीजी, उमरावकुँवरजी, आदि तथा शादीलालजी जैन वम्बई, खेलशंकरभाई सौभाग्यमलजी जैन आदि इस प्रकार के सैकड़ों ही उत्साहजनक सम्मतियों और विचारों के आधार पर वीरायतन ने व्यापक सम्मान प्राप्त कर लिया।

सहयोग की उज्ज्वल किरण

विचार के साथ-साथ आचार में वीरायतन की परिणति की उज्ज्वलरेखा बन कर उस समय फूट पड़ी, जब अबोहर के श्री एन० के० छाजेड़ ने अपने साथी-बन्धुओं को प्रेरित करके इस धर्मकार्य को आगे बढ़ाने के लिए सक्रिय सहयोग का आदर्श प्रस्तुत किया। अर्थात् श्रीभगवानदासजी जैन ने सर्वप्रथम ५०१ रु० भेंट किए, तत्पश्चात् ३११ रु० देशराजजी जैन, अबोहर, २०१ रु० एन० के० छाजेड़, १०१ रु० धर्मचन्द नरेशकुमार जैन ने भेंट किये। बस, इस प्रकार दान का प्रवाह बह चला; सहयोग के वचनों का सिलसिला जारी हो गया। जो लाखों तक पहुँच गया। श्री खेलशंकरभाई कविश्रीजी के दर्शनार्थ आगरा पधारे। वीरायतन योजना से प्रभावित हो कर उन्होंने एक लाख का सहयोगवचन दिया।

वीरायतन के स्थान और कार्यकर्त्ताओं के प्रश्न पर विचारविमर्श

दिनांक ११ जुलाई १९७१ को जैनभवन, लोहामण्डी में उपाध्यायश्री अमर मुनिजी के सान्निध्य में श्वे० स्था० जैन कॉन्फ्रेस की मीटिंग हुई। उसमें कई प्रस्ताव पारित हुए। सातवें प्रस्ताव द्वारा भ० महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में राष्ट्रसन्त उपाध्याय अमरमुनिजी द्वारा प्रस्तावित वीरायतन योजना का हार्दिक समर्थन किया गया और उसे क्रियान्वित करने के लिए देश के विभिन्न भागों में प्रतिनिधिमण्डल भेज कर वीरायतन के व्यापक प्रचार-प्रसार एवं अर्थसहयोग आदि का निश्चय किया गया।

उक्त अवसर पर कविश्रीजी म० ने कॉन्फ्रेस के उपस्थित कार्यकर्त्ताओं को उद्बोधन किया; जिसके मुख्य मुद्दे ये हैं—(१) हम विचारों की भीड़ में बहने के

वजाय स्वयं कार्यस्फूर्त हों। (२) यह संगठन सुन्दर है, तो काम भी सुन्दर होना चाहिए, वह तभी होगा, जब हम नीचे से—गाँवों से—ऊपर की ओर चलेंगे। (३) कार्यकर्त्ताओं को भरपेट भोजन व सम्मान मिले। (४) काम में जुट जाइए। (५) समग्र महावीर साहित्य के अध्ययन के लिए वीरायतन अनिवार्य है। (६) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उपयुक्त स्थान राजगृह ही हो सकता है। (७) छोटे-छोटे कार्यक्रम बना कर जुट जाइए।

वीरायतन में सहयोग के सोपान

व्यक्ति-व्यक्ति के सहयोग से बिन्दु से सिन्धु की तरह महान् निर्माण-कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। इस पुनीत कार्य में भी निम्नोक्त रूप से सहयोग के सोपान तदर्थ समिति ने निश्चित किए—

संस्थापक	: एक लाख रुपये	**उपसंरक्षक**	: ढाई हजार रुपये
स्तम्भ	: पचास हजार रुपये	**वार्षिक सहयोगी**	: ढाई सौ रुपये
उपस्तम्भ	: पच्चीस हजार रुपये	**मासिक सहयोगी**	: पच्चीस रुपये
संरक्षक	: ग्यारह हजार रुपये	**दैनिक सहयोगी**	: पच्चीस पैसे

साध्वीमंडली का कलकत्ता की ओर विहार

साध्वीरत्नश्री सुमतिकुंवरजी, दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी आदि के चातुर्मासार्थ कलकत्ता पदार्पण पर उनके सान्निध्य में पूर्वभारत जैनसम्मेलन हुआ, जिसमें सर्वसम्मति से इस योजना का समर्थन कर सक्रिय सहयोग का आश्वासन दिया गया। वैशाली महासंघ एवं राजगृही आदि ऐतिहासिक संघों की ओर से भी योजना का हार्दिक स्वागत किया गया, तथा भ० महावीर की साधनाभूमि में इस योजना द्वारा युगान्तर होने की आशा व्यक्त की।

आगरा में सहयोग-दान की होड़

आगरा में राष्ट्रसन्त उपाध्यायश्रीजी की सामान्य प्रेरणाओं से वीरायतन के लिए आगरा जैसे छोटे से संघ में, पुरुषों और महिलाओं में सहयोगदान की होड़-सी लग गई। सहयोगदान की अर्थराशि ढाई लाख के लगभग पहुँच गई। और भी सहयोग के वचनों की झड़ी लग गई। बाहर से भी सहयोगवचन मिले।

वीरायतन के द्वारा उत्तराध्ययनसूत्र-प्रकाशन

भ० महावीर के अन्तिम उपदेश-संदेश के रूप में निधि—यही शास्त्र है, यह प्रेरणा विदुषी साध्वी श्रीचन्दनाजी के द्वारा पा कर कलकत्ता की वीरायतनप्रेमी जनता ने इस शास्त्र के प्रकाशन का निश्चय किया। साध्वी श्रीचन्दनाजी ने बहुत ही मनोयोगपूर्वक अनुवादकार्य सिर्फ ४५ दिनों में सम्पन्न किया। इसका सम्पादन-समापन समारोह भी तारीख ६-१-७२ को कलकत्ता भवानीपुर के कामानी जैनभवन में धूम-धाम से हुआ।

वीरायतन-सेवा समिति और वीरायतन-बालिकासंघ

वीरायतन के कार्य को द्रुतगति से आगे बढ़ाने के लिए वीरायतन-सेवा-समिति का गठन साध्वी-मंडली के कलकत्ता-प्रवेश से पहले ही हो चुका था। लेकिन प्रस्तावित कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए उत्साही नवयुवकों की तरह कुछ उत्साही बालिकाओं की भी आवश्यकता थी; इसी आशा के फलस्वरूप ता० ९ जनवरी ७२ को साध्वीमंडली के सान्निध्य में श्री जगदीशरायजी जैन (अध्यक्ष, एस० एस० जैनसभा) के हाथों से **'वीरायतन-बालिकासंघ'** का उद्घाटन हुआ। श्री चारु देसाई इस संघ की अध्यक्षा मनोनीत की गई। बालिकाओं के उत्साह का पार नहीं था। इसी अवसर पर उद्घाटनकर्त्ता महोदय ने वीरायतन के लिए २५०१ रु० प्रदान किये। श्रीउत्तमचन्दभाई पंचमिया, नगिनभाई, छोटुभाई, चन्दुभाई शेठ, वाड़ीभाई भीमाणी आदि महानुभावों ने उत्साहपूर्वक ११००० रु० एवं ५००० रु० प्रदान करने के वचन दिए।

प्रारम्भ में वीरायतन के निम्नलिखित पदाधिकारी इस प्रकार नियुक्त किये गए—**अध्यक्ष**—श्री केशवभाई खंडेरिया, **उपाध्यक्ष**—सेठ अचलसिंह जैन एम०-पी०, एवं कल्याणदासजी जैन आगरा, **मंत्री**—पद्मचन्दजी जैन आगरा, रसिकभाई कलकत्ता, **कोषाध्यक्ष**—पद्मकुमार जैन आगरा, इसके अतिरिक्त मदनसिंहजी नाहर, सौभाग्यमलजी जैन, छोटेलालजी जैन आगरा, उत्तमचन्द भाई पंचमिया, नगिनभाई, छोटुभाई गाँधी आदि २१ सदस्यों की कार्यकारिणी बनी।

वीरायतन का विधान तथा रजिस्ट्रेशन

इधर मदनसिंहजी नाहर आदि ने वीरायतन का एक विधान तैयार किया। वीरायतन की मीटिंग में उसे पास करवा दिया गया। और संस्था का रजिट्रेशन कराने का तय हुआ। तदनुसार बिहार सरकार से सम्पर्क साधा गया। फलतः ता० २-३-७२ को महानिरीक्षक निबन्धन (रजिस्ट्रेशन) बिहार द्वारा वीरायतन-संस्था के निबन्धन का प्रमाणपत्र (एक्ट २१, १८६० के अन्तर्गत) संख्या ८० वर्ष १९७१-७२ प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् बिहार सरकार के आयकर-आयुक्त विभाग बिहार पटना से मदनसिंहजी नाहर ने प्रयत्न करके वीरायतन करमुक्ति का प्रमाण-पत्र भी ता० २०-६-१९७२ को प्राप्त किया।

वीरायतन के चक्र को गतिमान करने के लिए........

वीरायतन के चक्र को गतिमान करने हेतु कलकत्ता से साध्वी-मंडली का आशीर्वाद ले कर वीरायतनबालिकासंघ की ७ बालिकाएँ भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धा और भक्ति की अन्तर्मन में दिव्यज्योति जलाए हुए प्रचार-अभियानार्थ श्री कोकिला हेमाणी के नेतृत्व में निकलीं। सात बालिकाओं के नाम इस प्रकार थे—१. कोकिला हेमाणी, २. निर्मला गाँधी, ३. आशा लाठिया, ४. ऊषा दोशी, ५.

कुमुद वशाणी, ६. चारु देसाई, ७. रंजन संघवी। इन्हें वीरायतन-योजना के प्रचार प्रसार में आशातीत सफलता मिली।

इसके पश्चात् वीरायतन-वालिकासंघ के दूसरे ग्रुप ने कलकत्ता से राष्ट्र-व्यापी प्रचारहेतु भावना हेमानी के नेतृत्व में महासती श्रीसुमतिकुंवरजी से मांगलिक श्रवण कर प्रचारयात्रा प्रारम्भ की।

आगरा में वालिकासंघ श्री नेम कुमारजी व सौ० सुश्री प्रेमवाई के यहाँ पहुँचा। उन्होंने ५००१ रु० दे कर वालिकाओं का उत्साह वढ़ाया। गुरुदेव पू० उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के दर्शन करके सभी वालिकाएँ दिल्ली पहुँची और प्रधानमंत्री श्री इन्दिरा गाँधी से मिलीं। वीरायतन का परिचय प्रस्तुत करने के वाद उनसे अनुरोध किया गया कि ५० लाख के प्रस्ताव को एक करोड़ का कर दिया जाय। इन्दिराजी ने मुस्कराते हुए कहा—तुम-सी छोटी-छोटी लड़कियाँ इतनी उत्साह से जुटी हुई हैं, तो यह महान् कार्य अवश्य ही सफल होगा। दिल्ली में पं० मुनिश्री सुशीलकुमारजी व महासती प्रीतिसुधाजी के भी आर्शीवाद मिले। दिल्ली के कार्य को यशस्वी वनाने में शान्तिदेवीजी, कमलावहन एवं विमलावहनजी का पर्याप्त सहयोग रहा। मेरठ में भी एस० एस० जैन सभा आदि से सहयोग मिला।

इसके वाद वीरायतन वालिका संघ की १२ लड़कियों का तीसरा ग्रुप कु० मीना गांधी (लोनावला) की अध्यक्षता में सुश्री शान्तावहन की संरक्षकता में सौराष्ट्र गुजरात में प्रचार के लिए पहुँचा। राजकोट में कु० शोभना ने अवधानप्रयोग किया। सौराष्ट्र में दुर्लभजी भाई वीराणी आदि वीराणी परिवार तथा केशुभाई, मगनभाई ने वीरायतन को उल्लेखनीय सहयोग दिया। सोनगढ़ में कानजी स्वामी से भी वालिका-संघ का शिष्टमंडल मिला। उन्होंने वीरायतन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उसके पश्चात् वीरायतन-वालिकासंघ की ५ वालिकाओं का चौथा ग्रुप निर्मला गांधी के संरक्षण में पंजाव, हरियाणा, राजस्थान एवं स्थलीप्रदेश की यात्रा पर गया। पंजाव-हरियाणा के जैनसंघों का वीरायतन में उल्लेखनीय अर्थसहयोग प्राप्त हुआ। जगह जगह साधु-साध्वियों के भी आर्शीवाद प्राप्त हुए।

इसके वाद वालिकासंघ की ४ वालिकाओं का पांचवा ग्रुप कु० शोभना जैन के नेतृत्व में मद्रासयात्रा पर निकला। मद्रास में श्रीमोहनमलजी चोरड़िया, भंवरलालजी गोठी, के० जी० कोठारी, अमोलकचंदजी गेलड़ा आदि सज्जनों का वहुत अच्छा सहयोग मिला।

इसके वाद वीरायतन का डेप्यूटेशन आगरा से तैयार हो कर कानपुर गया, जिसमें कल्याणदासजी जैन, पदमचंदजी, जगमालजी एवं महावीरप्रसादजी जैन प्रभृति सज्जन थे। यहाँ श्री पवनकुमारजी जैन, बच्चूभाई आदि के सहयोग से एक लाख रु० के सहयोग के वचन प्राप्त हुए।

दूसरा डेप्यूटेशन कलकत्ता से श्री केशवभाई खंडेरिया तथा केशवभाई स्पीकर, पं० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी आदि सज्जनों का महाराष्ट्रयात्रा पर निकला। बम्बई में हरिभाई दोशी ने ११००१ तथा शादीलालजी जैन शेरीफ ने ५ हजार रु० के सहयोग का वचन दिया। बम्बई एवं पूना में भी काफी अच्छा सहयोग रहा।

ता० १३।१।७३ को उपाध्यायश्रीजी के सान्निध्य में केशवलालभाई खंडेरिया की अध्यक्षता में कार्यकारिणी की बैठक हुई। जिसमें कलकत्ता में बिहार के मुख्यमंत्री श्री केदार पाण्डे से वीरायतन के लिए भूमिसम्बन्धी आश्वासन तथा महा सती चंदनाजी से अन्य जो भी वार्ता हुई, उसकी जानकारी दी। और कलकत्ता श्रीसंघ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर प्रवर्तकश्रीजी ने पं० विजयमुनिशास्त्री को कलकत्ता की ओर विहार की आज्ञा प्रदान की।

अप्रेल १९७३ में एक दिन सर्वधर्म समभाव के सूत्रधार श्रीचन्द्रस्वामी के साथ बिहार के मुख्यमंत्री केदारपांडे एवं तिरुपति देवस्थान के मैनेजिंग ट्रस्टी सिद्दैया नायडु उपाध्यायश्रीजी० म० की सेवा में आए। कविश्री ने उन्हें वीरायतन का परिचय दिया, जिससे अत्यन्त प्रभावित हुए।

वीरायतन संघ ने वैभारगिरि की तलहटी में पहले ११ बीघा जमीन ले ली थी। इसी बीच बिहार सरकार से एक विशाल भूखण्ड (लगभग २५ एकड़ का) पाने के लिए चर्चा चल रही थी। उसकी प्राप्ति का आज्ञापत्र मिल चुका था। अतः १४/४/७३ को सायंकाल ४-३० बजे बिहार प्रान्त के मुख्यमंत्री श्री केदारपांडेजी के करकमलों द्वारा शिलान्यास का भव्य कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कलकत्ता, धनबाद, आगरा, पटना आदि की तथा स्थानीय जनता भी उपस्थित थी। श्री मदनसिंहजी नाहर अपने कारोबार को छोड़ कर महीनों ही पटना, और राजगृह में वीरायतन के लिए काम करते रहे। यह उनके हृदय के उदात्तभावों का परिचायक है।

कलकत्ता में उस समय साध्वीरत्न श्रीसुमतिकुंवरजी आदि विराजमान थीं। साध्वी चेतना की दीक्षा होने वाली थी। उस प्रसंग पर पं० विजयमुनिजी शास्त्री भी पधार गए थे। उन्होंने सन् १९७३ का चातुर्मास कलकत्ता में किया। इससे वीरायतन के प्रचार-प्रसार को बहुत प्रोत्साहन मिला।

साध्वी श्रीचंदनाजी आदि की सेवा में शान्ता वहन, सुशीला वहन आदि मल्ली-भगवती-महिलामंडल की १३० बहनों का संघ कलकत्ता पहुँचा। मंडल ने वीरायतन के कार्यों से प्रभावित हो कर ५१०००) रु० के सहयोग का वचन दिया।

साध्वीमंडली उत्साह के साथ वीरायतन के कार्य को प्रगति देने हेतु राजगृह चातुर्मासार्थ पधारीं। राजगृह और आसपास की जनता ने उनका भावभीना स्वागत किया। साध्वीवृन्द के आगमन से वीरायतन में एक नई जान आ गई और कार्य दिनों-दिन प्रगति के पथ पर आगे वढ़ता गया। डॉ० नथमलजी टाँटिया, डॉ० महेश तिवारी आदि सवने वीरायतन-योजना की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वीरायतन के कर्मठ महारथी

राष्ट्रसंत उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी
वीरायतन के प्रेरणास्तम्भ
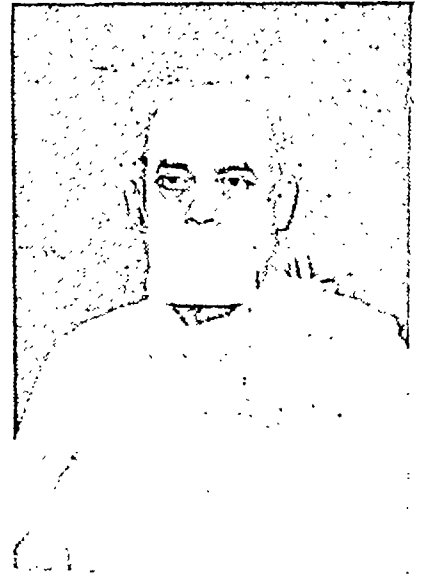
सेवानिष्ठ श्रीअखिलेशजी महाराज
वीरायतन के मेरुदण्ड

साध्वी श्रीचन्दनाजी, साध्वी सुमतिकुंवरजी और साध्वी श्रीयशाजी
वीरायतन के कार्य में सतत प्रयत्नशील

बिहारप्रदेश के भू० पू० मुख्यमंत्री श्री केदार पांडे १४-४-७३ के दिन राजगृह में वीरायतन का शिलान्यास कर रहे हैं।

वीरायतन बालिका संघ की बालिकाओं को प्रशिक्षित करने के लिए कलकत्ता में कामाणी जैन भवन में साध्वीद्वय के सान्निध्य में आयोजित वक्तृत्व-प्रतियोगिता

वीरायतन के प्रमुख उत्साही कार्यकर्ता श्री केशवलाल खंडेरिया, चदुंभाई कोठारी, मनसुखभाई हेमाणी, नगीनभाई शाह, भूपतभाई कामाणी, डोलरभाई हेमाणी, श्री तरुणजी आदि महासती श्रीचंदनाजी के सान्निध्य में विहार के भू० पू० मुख्यमंत्री श्री केदार पांडेय के साथ वीरायतन के सम्वन्ध में कलकत्ता में चर्चा करते हुए।

वीरायतन वालिका संघ की १२ कर्मठ सदस्याएँ सौराष्ट्र (गुजरात) की प्रचारयात्रा पर कु० मीना गांधी, लोनावला की अध्यक्षता में। कु० शोभना भी साथ में है।

ता० ५, ६ अगस्त १९७३ को राजगृह में साध्वीरत्न श्री सुमतिकुंवरजी, दर्शनाचार्या साध्वी चंदनाजी के सान्निध्य में वीरायतन की जनरल मीटिंग हुई। उसमें वीरायतन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को सम्पन्न करने हेतु राजगृह में वीरायतन का कार्यालय बनाने का निश्चय किया गया। तथा वास्तुविद् से नकशे बनवा कर निर्माणकार्य प्रारम्भ करने हेतु १५ सदस्यों की 'योजना एवं निर्माण-उपसमिति' गठित की गई। इसी का ही परिणाम है कि तब से लेकर अब तक ५ भवनों का निर्माण हो चुका है।

इसके साथ ही एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय भी किया गया कि सरकार से भूमि हस्तांरित होने में काफी विलम्ब लगेगा। अतः वैभारगिरि की तलहटी में जो भूमि खरीदी गई है, वहीं पर आगममन्दिर, आध्यात्मिक साधनाकेन्द्र, अतिथिभवन, उपाश्रय आदि का निर्माणकार्य प्रारम्भ कराया जाय।

ता० २७। ११। ७३ को सौभाग्यमलजी जैन की अध्यक्षता में जैनभवन लोहामंडी, आगरा में वीरायतन के सम्बन्ध में एक विचारगोष्ठी आयोजित की गई। इसमें चिकित्सा आदि वीरायतन की विभिन्न प्रवृत्तियों के सम्पादन के लिए विविध टिकटें छपाने का निर्णय हुआ। शान्तिभाई वनमाली तथा काका कालेलकर ने इस विचारगोष्ठी में अपने विचार व्यक्त किये। सभी लोग वीरायतन की योजना से प्रभावित हुए। दानपात्र की योजना भी प्रारम्भ की गई।

दिनांक १२ अक्टूबर १९७३ को पू० उपाध्यायश्रीजी के जन्मदिवस शरद् पूर्णिमा पर राजगृह में बिहार के राज्यपाल आर० डी० भंडारे द्वारा वीरायतन प्राथमिक विद्यालय का शिलान्यास हुआ। वीरायतन के द्वारा मानवसेवा का प्रथम चरण सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर साध्वीद्वय की प्रेरणा से स्थानीय ७२ परिवार के लोगों ने मांसाहार का त्याग किया।

इस प्रकार वीरायतन के द्वारा रचनात्मक कार्यों का सूत्रपात हुआ।

इसी दौरान अमेरिका से एक जिज्ञासुकन्या दिव्या (भारतीय नाम) साध्वीजी से जैनधर्म के अध्ययनार्थ राजगृह आईं।

वीरायतन के कार्य में द्रुतगति से प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन देने हेतु राष्ट्रसंत उपाध्यायश्री अमरमुनिजी का ता० २७ फरवरी १९७४ को आगरा से, राजगृह की ओर विहार हुआ।

रास्ते में कानपुर, लखनऊ, रायबरेली, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना आदि जहां-जहां भी उपाध्यायश्रीजी पधारे एवं वीरायतन का परिचय दिया; लोग अत्यन्त प्रभावित हुए।

ता० २४ फरवरी को राजगृह में वीरायतन की पवित्रभूमि—वैभारगिरि की तलहटी में वीरायतन की ओर से नेत्रदानशिविर का शुभारम्भ हुआ। इसमें साध्वी-मंडली के अतिरिक्त बौद्धधर्मगुरु फ्यूजी गुरुजी भी बौद्धभिक्षुओं के साथ [illegible]

थे। स्वास्थ्यमंत्री केदार पांडेयजी भी अतिथि के रूप में पधारे थे। इसी दौरान राजगृह में २०० शय्याओं वाले एक विशाल चिकित्सालय के निर्माण के हेतु वम्बई के एक श्रद्धालु जौहरी ने पूरा सहयोग देने का वचन दिया।

राजगृह में ही वीरायतन की जनरल मीटिंग साध्वीमंडली के सान्निध्य में हुई। जिसमें वीरायतन की ५१ सदस्यों की एक कार्यकारिणी वनी। पदाधिकारियों का निर्वाचन इस प्रकार हुआ—

१. अध्यक्ष—श्री खेलशंकरभाई, जयपुर
२. उपाध्यक्ष—सेठ अचलसिंहजी एम० पी०, आगरा
३. ,, श्री केशवलालजी खंडेरिया, कलकत्ता
४. ,, हरिभाई दोशी, वम्वई
५. ,, सौभाग्यमलजी जैन, शुजालपुर
६. ,, सागरमलजी डागा, जयपुर
७. ,, मदनसिंहजी छाजेड़, कानपुर
८. प्रधानमंत्री—ला० कल्याणदासजी जैन, आगरा
९. मंत्री—श्री पदमचन्दजी जैन, आगरा
१०. ,, श्री छोटेलालजी गाँधी, कलकत्ता
११. ,, श्री पवनकुमारजी जैन, कानपुर
१२. ,, श्री उमरावमलजी चौरड़िया, जयपुर
१३. ,, श्री केशरीचन्दजी लोढ़ा, दिल्ली
१४. कोषाध्यक्ष—श्री नन्हेबाबूजी जैन, आगरा

उपाध्याय कविश्रीजी महाराज १९७४ के चातुर्मासार्थ राजगृह पधारे। ता० १८-१९ जून को श्री वीरायतन की मीटिंगें हुई। वीरायतन में नया प्राण आ गया। मानो कविश्रीजी म० के पदार्पण से वीरायतन सनाथ हो उठा। सबने भावभीना स्वागत किया। और उसके बाद वीरायतन प्रगति के सोपान पर क्रमशः चढ़ता ही गया। उसका संक्षिप्त विवरण पहले दिया जा चुका है।

—पं० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी, राजगृह

वीरायतन के परम सहयोगी

श्रीचन्द्रस्वामी की सफल विदेश यात्रा

'सर्वधर्म-समभाव' के सूत्रधार युवा साधक श्री चन्द्र स्वामीजी दिनांक ५-११-७४ को महास्थविर पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी म० आदि के दर्शन हेतु आगरा पधारे। यह स्मरणीय है कि श्री चन्द्रस्वामी जी गत जून में जब विदेश-यात्रा पर रवाना हुए थे तो पूज्यश्री का आशीर्वाद लेने हेतु आगरा आये थे। स्वामी-जी कविश्रीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते हैं व राजगृह में निर्माणाधीन वीरायतन के बहुमुखी विकास हेतु सर्वात्मभाव से सहयोग कर रहे हैं।

श्रीचन्द्रस्वामीजी अफ्रीका, यूरोप आदि राष्ट्रों की ४ मास की सफल यात्रा कर हाल ही में भारत आये हैं। अफ्रीका में बसे लाखों प्रवासी भारतीयों एवं विशेषकर जैनों को आपने उद्बोधित किया। भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष्य में प्रवासी जैनों को एकमत हो कर कार्य करने की प्रेरणा दी। अफ्रीका में आपके सम्पर्क में अ० भा० उद्योगपतियों के अतिरिक्त स्थानीय राजनेता एवं अफ्रीका के उपराष्ट्रपति भी आये।

यूरोप के अनेक राष्ट्रों की यात्रा कर श्रीचन्द्रस्वामीजी ने लन्दन में अपना केन्द्र बनाया। वहाँ सर्वधर्मसमभाव केन्द्र की स्थापना की। उसका भवन भी खरीद लिया गया। तथा प्रवासी जैनों का एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने की प्रेरणा भी दी। यह प्रसन्नता की बात है कि श्रीचन्द्रस्वामीजी की प्रेरणा से लन्दन में 'इन्टर नेशनल जैन कान्फ्रेन्स' की स्थापना हो गई है। इसके पेटर्न (संरक्षक) का स्थान श्रद्धेय कविश्रीजी को स्वीकार करने का आग्रह किया गया है। कविश्रीजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। अध्यक्ष श्री चन्द्रस्वामीजी हैं।

राजगृह में बन रहे वीरायतन कार्यक्रम में सार्वजनिक चिकित्सालय हेतु श्री चन्द्रस्वामीजी ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग दिलाने का आश्वासन दिया है। आपके प्रयत्नों से बिहार सरकार तथा केन्द्रीय सरकार इस लोककल्याणकारी योजना में सराहनीय सहयोग कर रही हैं।

हम श्री चन्द्रस्वामीजी के 'सर्वधर्मसमभाव' एवं 'अन्तर्राष्ट्रीय जैन कान्फ्रेन्स' जैसे मानव हितकारी कार्यों की सफलता चाहते हैं।

वीरायतन के मूल आराध्य

महाश्रमण-
महावीर-
चरणेषु

—डा० चन्दनलाल पाराशर

महावीरो धीरः प्रणतपरिवीरः प्रभुवरः,
सदा दाता ज्ञाता जनहितकरो योऽत्र भुवने ।
स त्यागी शान्तात्मा परमहितकारी कृततपाः,
दयाशीलो ध्यानी मननमनुगामी प्रियजनः ॥

नमश्शान्तायाखिलजन—हितायाद्यगुरवे,
मनो-वाणी-कार्यैः प्रणतिततयः सन्तु सततम् ।
जगद्धारी न्यायी "नयनपथगामी भवतु मे,
करोत्वद्यागत्य प्रणतजनकामं हितवहम् ॥

महावीरः स्वामी परमपथगामी जयतु सः,
मनोदुःखंहारी प्रतिदिनविहारी भवतु सः ।
सदा शान्ति कान्ति वितरतु जनेभ्यः प्रभुरयम्,
स एको विद्यादो जगति ददतां दानमखिलम् ॥

बलिष्ठो धर्म्मिष्ठः प्रकृतिसुगमो धृतिमतिः,
वरिष्ठः कर्म्मिष्ठः सकलजगतीपावितसृतिः ।
जयिष्ठो मेधावी जन-जन-सहायी भृतकृतिः,
स देवो धर्मात्मा प्रथयतु सुधर्मे मम मतिः ॥

यतियोगी, ज्ञानी सकलजनसेवी प्रतिपलम्,
जगत्त्राता, धाता, परमधनदाता धनपतिः !
मनोवाञ्छां कुर्वे पुनरपि भवन्तं नयनगम्,
कदा पश्याम्यस्मिन् जगति भगवंस्त्वामहमहो ॥

वीरायतन बालिका संघ की कर्मठ सदस्याएँ वीरायतन की प्रचारयात्रा पर कोकिला हेमाणी के नेतृत्व में। १—कोकिला हेमाणी, २—निर्मला गांधी, ३—आशा लाठिया, ४—ऊषा दोशी, ५—कुमुद वशाणी, ६—चारु देसाई, ७—रंजना संघवी।

कु० शोभना जैन की अध्यक्षता में वीरायतन बालिका संघ का शिष्टमंडल मद्रासयात्रा पर। इसमें हैं—(१) कु० शोभना जैन, (२) भावना नेमिचन्द दोशी, (३) नीरू गाँधी, (४) नीला बखारिया, (५) प्रतिभा जगजीवनभाई मेहता !

वीरायतन बालिका संघ की कर्मठ कार्यकर्त्री :

कु० निर्मला गांधी

चि० निर्मल, प्रसन्नता है, तुम लुधियाना में वीरायतन के लिए प्रेरणा ज्योति जगा रही हो। तुम-सी निष्ठावान जिनशासन की पुत्रियाँ हमारे अन्तर्मन को गौरवान्वित कर रही हैं। मान-अपमान की कुछ भी चिन्ता किये विना द्वार-द्वार पर लक्ष्यसिद्धि के लिए अलख जगाना, कोई साधारण बात नहीं है। इस अदम्य कर्मप्रेरणा की निर्मल स्मृति वीरायतन के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। —उपाध्याय अमरमुनि

प्रिय निम्मा, तुम यात्रा पर हो, वीरायतन के विषय में लोगों को समझा रही हो और लोग तुम्हारी बात सुन रहे हैं। लोगों का सहयोग भी मिल रहा है। जैनसमाज मुख्यत: दो वर्गों में बँटा है—साधु और श्रावक। साधुवर्ग अपनी सीमाओं में बँधा रहने के कारण व्यापक प्रचार नहीं कर सकता और श्रावकवर्ग व्यापारी होने के कारण अपने क्षेत्र में साधुवर्ग से अधिक बँधा है। जो थोड़े से प्रचारक हैं, वे वैतनिक रहे, इस कारण उनका अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका। मैं चाहती हूँ, कुछ ऐसे सेवक, सेविकाएँ हों, जो संयममय जीवन व्यतीत करते हुए, प्रचार का क्षेत्र व्यापक बना सकें। संघमित्रा जैसे बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अपरिचित राष्ट्रों में गई थी, वैसे तुम भी बहुत कुछ कर सकती हो। तुम में बहुत शक्ति है। अदम्य साहस और उत्साह के साथ आगे बढ़ो। —साध्वी चन्दना, राजगृह

प्रिय निम्मा, आज तक हम मौन रहे थे कि तुझे अपना रास्ता चुन लेना चाहिए, गृहस्थ का या संन्यास का। किन्तु जब से गुरुदेव के आशीर्वाद से एवं साध्वी चन्दनाजी की प्रेरणा से तू अपने-आपको वीरायतन में समर्पित कर चुकी है, तब से हमें अपने आप पर गर्व है कि तू अन्तःकरण से वीरायतन की सेवा करके परिवार का नाम निर्मल बनायेगी। इसी भावना के साथ………… —[illegible] गांधी एवं समस्त गांधी परिवार

प्रिय पुत्री निम्मा! वीरायतन के इतिहास में चन्दनाजी की एवं तुम्हारी सेवा अमर रहेगी। सेवापथ पर आगे बढ़ती चलो, गुरुदेव के आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ही!

—[illegible] जैन '[illegible]' [illegible]

वीरायतन के अध्यक्ष :

पद्मश्री खेलशंकरभाई

पद्मश्री खेलशंकरभाई केवल हीरों के जौहरी ही नहीं, समाज के जौहरी भी हैं। पाँच पीढ़ी से आपके परिवार में जवाहरात का व्यापार चलता आ रहा है। आपका जन्म सन् १९१२ में मोरवी में हुआ था, लेकिन लगभग ७० वर्ष से आपके पिता श्रीदुर्लभजीभाई जयपुर आ कर बस गये, यहीं अपना पैतृक व्यवसाय फैलाया। श्रीखेलशंकरभाई ने १९३२ में लखनऊ विश्वविद्यालय से बी. ए. परीक्षा पास की और अपने पैतृक (जवाहरात के) व्यवसाय में लग गये। सर्वप्रथम व्यवसाय के सिल-सिले में १९३६ में आप पेरिस गये। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो जाने से शीघ्र भारत लौटना पड़ा। उसके बाद आप पुनः पेरिस गये और तब से लगा कर अब तक आपने उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, पेरिस, ब्राजिल और सुदूरपूर्व एशिया आदि विदेशों में भ्रमण किया है।

अपने व्यावसायिक क्षेत्र को श्रीखेलशंकरभाई ने नया मोड़ दिया। आपने पन्नों के कटिंग और पोलिशिंग में विशेषज्ञता प्राप्त की। धीरे-धीरे आप अपने व्यवसाय में इतने दक्ष हो गये कि **आल इण्डिया जेम एण्ड ज्वैलर्स एक्सपोर्ट प्रोमोशन कौंसिल** स्थापित हुई, तब उसके १९६६ से १९६८ तक आप चेयरमेन रहे। आपके अथक परिश्रम के कारण भारत सरकार को हीरों पन्नों की आयात-निर्यातनीति वदलनी पड़ी। इसके फलस्वरूप सन् १९६६ से १९६८ तक १० करोड़ से २३ करोड़ तक के रत्न और जवाहरात निर्यात कर सके।

खेलशंकरभाई सामाजिक कार्यों में भी किसी भी राष्ट्रहितैषी या व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से त्यागपरायण व्यक्ति से कम नहीं हैं। महात्मा गांधीजी की

ट्रस्टीशिप की भावना को आपने जीवन में स्थान दिया, यही कारण है कि आपने कई सार्वजनिक संस्थाओं में मुक्तहस्त से दान दिया है। वीरायतन को आपने सदा से सर्व-जनोपयोगी संस्था मान कर काफी धन दिया है। इसके अध्यक्ष पद पर रह कर तन और मन से भी सेवा करते हैं। आपने जयपुर में **गुजराती समाज** की नींव रखी। आप कई सरकारी एवं सार्वजनिक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

भू० पू० अध्यक्ष—जयपुर चेम्वर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री, ज्वैलर्स ऐसोशिएशन, जयपुर गुजराती समाज, सुवोध डिग्री कॉलिज, रोटरी कलव जयपुर।

चेयरमेन—संतोकवा दुर्लभजी ट्रस्ट

भू० पू० उपाध्यक्ष—अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी

सदस्य—परामर्शदात्री समिति, व्यवसाय पर, भारत सरकार
श्री सोमनाथ मन्दिर की परामर्शदात्री व विकास

अध्यक्ष—राजस्थान चेम्वर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री, तथा वीरायतन

संस्थापक सदस्य—प्रथम रत्नपरीक्षक प्रयोगशाला (भारत में)

श्री खेलशंकर भाई का खास सामाजिक कार्य सन् १९५७ में अपने माता-पिता की स्मृति में स्थापित **संतोकवा दुर्लभजी ट्रस्ट** है। इस ट्रस्ट में से आप निर्धन तेजस्वी छात्रों को छात्रवृत्ति तथा सहायता देते हैं। सर्दियों में गरीवों को कम्वल वांटते हैं; ट्रस्ट के द्वारा एक एक्सरे तथा पेथोलॉजिकल एवं वायोलोजिकल्स निदान केन्द्र स्थापित किया। सन् १९६३ में क्लीनिक ने एक लाख से अतिरिक्त रोगियों की सेवा की। इसके वाद सन् १९६९ में ट्रस्ट ने प्रसूतिगृह तथा वालसंवर्द्धनगृह वनवाये जनता के द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर आवश्यकता देखकर श्री खेलशंकर भाई ने उसे 'संतोष दुर्लभजी मेमोरियल हॉस्पिटल' का रूप दिया। यह जयपुर एवं राजस्थान की जनता के लिए ट्रस्ट की वहुत वड़ी देन है। इस हॉस्पिटल का राजस्थान में गौरवपूर्ण स्थान है। इसी में डॉक्टरों कर्मचारियों आदि के लिए एक तिमजला आवासगृह भी है। अतिथिगृह भी इसके साथ ही वना है, जो वाहर के रोगियों के लिए उपयोगी है। ३०० शय्याएँ इसमें वढ़ा दी गई हैं। प्रतिवर्ष इस पर ट्रस्ट २-४ लाख खर्च करता है। खेलशंकरभाई स्वयं सुवह-शाम आ कर दिलचस्पी से इसकी देखभाल करते हैं। ता० २८ नवम्वर १९७१ को प्रधानमंत्री श्रीइन्दिरागांधी भी इस हॉस्पिटल में पधारीं और वहुत ही प्रभावित हुई हैं। खेलशंकर भाई की राष्ट्रीय कार्यों में भी वहुत दिलचस्पी है। चीन के हमले के समय प्रधानमंत्री के कुछ फंड में आपने ५१००० रु० दिये हैं। सन् १९७१ में गणतंत्रीय दिवस पर आपकी सेवाओं से प्रभावित होकर राष्ट्रपति ने 'पद्मश्री' का खिताव दिया है श्री खेलशंकर भाई वास्तव में उदार दिल के श्रीमन्त हैं, भारत के सच्चे सपूत हैं। आप तन, मन और धन से समाज-सेवा में संलग्न रहते हैं। आपसे समाज और राष्ट्र को वहुत वड़ी आशाएँ हैं।

वीरायतन के अध्यक्ष:

पद्मश्री खेलशंकरभाई

पद्मश्री खेलशंकरभाई केवल हीरों के जौहरी ही नहीं, समाज के जौहरी भी हैं। पाँच पीढ़ी से आपके परिवार में जवाहरात का व्यापार चलता आ रहा है। आपका जन्म सन् १९१२ में मोरवी में हुआ था, लेकिन लगभग ७० वर्ष से आपके पिता श्रीदुर्लभजीभाई जयपुर आ कर बस गये, यहीं अपना पैतृक व्यवसाय फैलाया। श्रीखेलशंकरभाई ने १९३२ में लखनऊ विश्वविद्यालय से बी. ए. परीक्षा पास की और अपने पैतृक (जवाहरात के) व्यवसाय में लग गये। सर्वप्रथम व्यवसाय के सिल-सिले में १९३६ में आप पेरिस गये। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो जाने से शीघ्र भारत लौटना पड़ा। उसके बाद आप पुनः पेरिस गये और तब से लगा कर अब तक आपने उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, पेरिस, ब्राजिल और सुदूरपूर्व एशिया आदि विदेशों में भ्रमण किया है।

अपने व्यावसायिक क्षेत्र को श्रीखेलशंकरभाई ने नया मोड़ दिया। आपने पन्नों के कटिंग और पोलिशिंग में विशेषज्ञता प्राप्त की। धीरे-धीरे आप अपने व्यवसाय में इतने दक्ष हो गये कि **आल इण्डिया जेम एण्ड ज्वैलर्स एक्सपोर्ट प्रोमोशन कौंसिल** स्थापित हुई, तब उसके १९६६ से १९६८ तक आप चेयरमेन रहे। आपके अथक परिश्रम के कारण भारत सरकार को हीरों पन्नों की आयात-निर्यातनीति बदलनी पड़ी। इसके फलस्वरूप सन् १९६६ से १९६८ तक १० करोड़ से २३ करोड़ तक के रत्न और जवाहरात निर्यात कर सके।

खेलशंकरभाई सामाजिक कार्यों में भी किसी भी राष्ट्रहितैषी या व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से त्यागपरायण व्यक्ति से कम नहीं हैं। महात्मा गांधीजी की

ट्रस्टीशिप की भावना को आपने जीवन में स्थान दिया, यही कारण है कि आपने कई सार्वजनिक संस्थाओं में मुक्तहस्त से दान दिया है। वीरायतन को आपने सदा से सर्व-जनोपयोगी संस्था मान कर काफी धन दिया है। इसके अध्यक्ष पद पर रह कर तन और मन से भी सेवा करते हैं। आपने जयपुर में **गुजराती समाज** की नींव रखी। आप कई सरकारी एवं सार्वजनिक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

भू० पू० अध्यक्ष—जयपुर चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री, ज्वैलर्स ऐसोशिएशन, जयपुर गुजराती समाज, सुबोध डिग्री कॉलेज, रोटरी कलब जयपुर।

चेयरमेन—संतोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट

भू० पू० उपाध्यक्ष—अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी

सदस्य—परामर्शदात्री समिति, व्यवसाय पर, भारत सरकार

श्री सोमनाथ मन्दिर की परामर्शदात्री व विकास

अध्यक्ष—राजस्थान चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री, तथा वीरायतन

संस्थापक सदस्य—प्रथम रत्नपरीक्षक प्रयोगशाला (भारत में)

श्री खेलशंकर भाई का खास सामाजिक कार्य सन् १९५७ में अपने माता-पिता की स्मृति में स्थापित **संतोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट** है। इस ट्रस्ट में से आप निर्धन तेजस्वी छात्रों को छात्रवृत्ति तथा सहायता देते हैं। सर्दियों में गरीबों को कम्बल बांटते हैं; ट्रस्ट के द्वारा एक एक्सरे तथा पेथोलॉजिकल एवं बायोलोजिकल्स निदान केन्द्र स्थापित किया। सन् १९६३ में क्लीनिक ने एक लाख से अतिरिक्त रोगियों की सेवा की। इसके बाद सन् १९६९ में ट्रस्ट ने प्रसूतिगृह तथा बालसंवर्द्धनगृह बनवाये जनता के द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर आवश्यकता देखकर श्री खेलशंकर भाई ने उसे 'संतोष दुर्लभजी मेमोरियल हॉस्पिटल का रूप दिया। यह जयपुर एवं राजस्थान की जनता के लिए ट्रस्ट की बहुत बड़ी देन है। इस हॉस्पिटल का राजस्थान में गौरवपूर्ण स्थान है। इसी में डॉक्टरों कर्मचारियों आदि के लिए एक तिमजला आवासगृह भी है। अतिथिगृह भी इसके साथ ही बना है, जो बाहर के रोगियों के लिए उपयोगी है। ३०० शय्याएँ इसमें बढ़ा दी गई हैं। प्रतिवर्ष इस पर ट्रस्ट २-४ लाख खर्च करता है। खेलशंकरभाई स्वयं सुबह-शाम आ कर दिलचस्पी से इसकी देखभाल करते हैं। ता० २८ नवम्बर १९७१ को प्रधानमंत्री श्रीइन्दिरागांधी भी इस हॉस्पिटल में पधारी और बहुत ही प्रभावित हुई हैं। खेलशंकर भाई की राष्ट्रीय कार्यों में भी बहुत दिलचस्पी है। चीन के हमले के समय प्रधानमंत्री के सुरक्षा फंड में आपने ५,१०००) रु० दिये हैं। सन् १९७१ में गणतंत्र दिवस पर आपकी सेवाओं से प्रभावित होकर राष्ट्रपति ने 'पद्मश्री' का खिताब दिया है। श्री खेलशंकर भाई वास्तव में उदार दिल के जीवन के खिलाड़ी हैं; भारत के सच्चे सपूत हैं। आप तन, मन और धन से समाज-सेवा में तत्पर रहते हैं। आपसे समाज और राष्ट्र को बहुत बड़ी आशाएँ हैं।

वीरायतन के उपाध्यक्ष :

श्री सागरमलजी डागा,

जो अब हमारे बीच नहीं रहे !

सागर सागर ही है। वह अनन्त अतीत से गर्ज रहा है, कभी थका नहीं, कभी सोया नहीं ; वह विराट् की प्रेरणा देता रहता है। स्व० सागरमलजी डागा भी जयपुर के एक सागर थे। आज से ५८ वर्ष पूर्व २० दिसम्बर १९१७ को जयपुर के एक लब्ध-प्रतिष्ठ परिवार में श्रीजीवनमलजी डागा के यहाँ उनका जन्म हुआ। आप श्रीजीवन-मलजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। तीन भाइयों में आज श्रीपारसमलजी रहे हैं।

बचपन में ही आप पर से पिताजी का साया उठ जाने से आप प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करते ही व्यवसायिक क्षेत्र में उतर गये। कलकत्ता के बाद मद्रास में आपने रत्नपारखियों में शीर्षस्थ ख्याति प्राप्त की।

केवल धन कमाना और ऐश आराम करना ही आपके जीवन का लक्ष्य नहीं था। परिवारपालन के बाद समाज, धर्मसंघ, जाति और राष्ट्र की सेवा के लिए योगदान देना भ० महावीर के अनुयायी सद्गृहस्थ के लिए आवश्यक है। श्रीडागाजी भ० महावीर के एक सच्चे सपूत थे। उन्होंने भ० महावीर के उस उच्च आदर्श को जीवन में उतारने का प्रयास किया कि **जे गिलाणं पडियरइ से ममं पडियरई'** जो ग्लान की परिचर्या करता है, वह मेरी परिचर्या करता है। 'श्रीअमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी' के मृत्यु पर्यन्त संस्थापक अध्यक्ष रह कर रुग्णसेवा को प्रोत्साहन देना तथा ज्वैलर्स चेरीटेबल ट्रस्ट के अध्यक्ष पद पर रहते हुए सवाई मानसिंह अस्पताल, जयपुर में १३ काटेज वार्ड बनाना आपकी ग्लानसेवा की भावना का प्रबल प्रमाण है। पीड़ित और

वीरायतन के पदाधिकारी
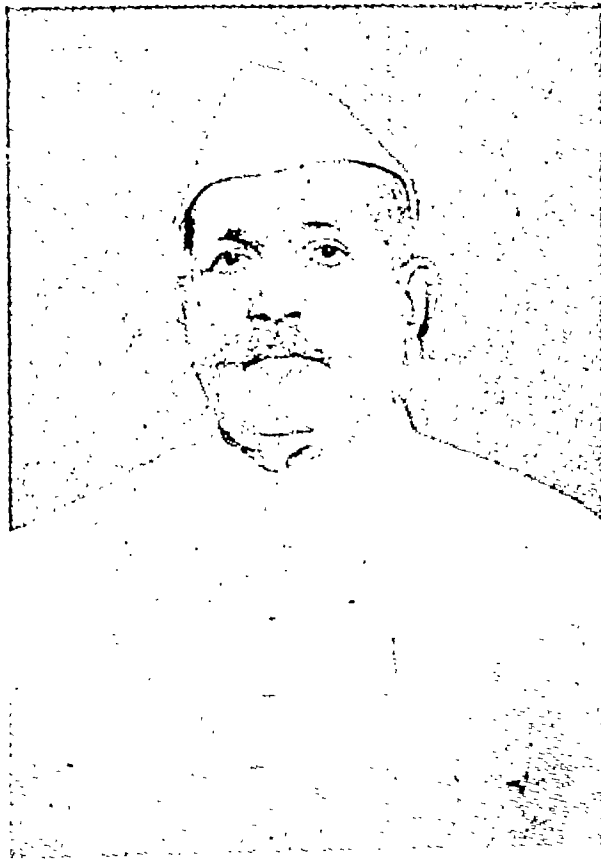
उपाध्यक्ष—सेठ अचलसिंहजी जैन, एम. पी.
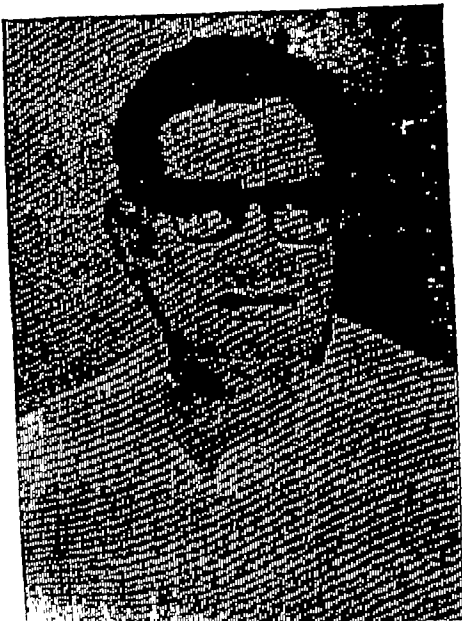
उपाध्यक्ष—सागरमलजी डागा

कोषाध्यक्ष—ला० नन्हेबाबू जैन

नोट—वीरायतन के शेष पदाधिकारियों के फोटो समय पर प्राप्त न हो सके। अतः उनके चित्र नहीं दे सके।

अभावग्रस्त जनता को सस्ती और अद्यतन चिकित्सा उपलब्ध कराने की भावना आप में कूट-कूट कर भरी थी। आपको समाजसेवा के कार्य में प्रेरित करने वाले स्व० श्री स्वरूपचन्दजी चौरड़िया थे।

चिकित्सा के बाद मानवसमाज की दूसरी आवश्यकता शिक्षा है। स्व० डागाजी सस्ती, सर्वसुलभ और देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली शिक्षा के हिमायती थे। सुबोध-बालिकाविद्यालय के वर्षों तक अध्यक्ष पद पर तथा श्री एस० एस० जैन सुबोध-महाविद्यालय के उपाध्यक्ष पद पर रह कर आपने इन दोनों शिक्षा-संस्थाओं के निर्माण, विकास एवं प्रगति में सक्रिय योगदान दिया। जैन श्वे० स्था० शिक्षा समिति का निर्माण भी आपकी सूझबूझ का परिणाम था।

व्यावसायिक क्षेत्र में आप ज्वैलर्स एसोसिएशन के सन् ५९ से ६१ तक अध्यक्ष पद पर रहे। व्यावसायिक क्षेत्र में भी आप निपट निजी स्वार्थ से लिपटे नहीं रहते थे। आपने अनेक साथियों और तरुणों को आत्मनिर्भर बनाया है। जीवन के अन्तिम क्षणों तक आपका उद्देश्य साधारण जन को ऊँचा उठाने का रहा।

सामाजिक क्षेत्र में भी आप अपनी सेवाएँ देने में पीछे नहीं रहे। आपकी भावना यह थी कि समाज धर्म की मात्रा से ओतप्रोत बनी रहे। साम्प्रदायिक युगबाह्य क्रियाकाण्डों के थोथे नारों में आपका विश्वास नहीं था। आप चाहते थे कि समाज का शुद्ध धर्मदृष्टि से निर्माण हो; तभी समाज में सुव्यवस्था, स्वस्थता व सुख-शान्ति बनी रहेगी और यह तभी हो सकता था कि जब धर्म का समग्र जनजीवन में प्रवेश हो। राष्ट्रसंत कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी महाराज के सम्पर्क में आने पर आपको अपने इन विचारों को मूर्तरूप देने का मौका मिला। भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में जब कविश्रीजी महाराज ने 'वीरायतन' की स्थापना की, तब उनके आह्वान पर स्व० श्री सागरमलजी ने हृदय से वीरायतन का समर्थन किया, पूरा सहयोग दिया, आप उसके उपाध्यक्ष पद पर रहे। आप अपने सामने ही वीरायतन को अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्था के रूप में देखना चाहते थे। आपकी अन्तिम समय तक यही आकांक्षा रही कि वीरायतन एक ऐसी संस्था बने जो धर्म के तत्वों को समग्र जनजीवन में उतारने का एक प्रबल माध्यम हो, प्राणिमात्र इससे लाभान्वित हो।

आपने पिछले तीन साल से जयपुर के श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष पद पर रह कर अपनी सेवाएँ दीं। समाज में प्रचलित कुरूढ़ियों, कुप्रथाओं और गलत परम्पराओं के खिलाफ होने से कई बार मतभेद खड़ा हो जाता, परन्तु आप इसे मनोमालिन्य का रूप नहीं हो देते थे। स्पष्टवादिता आपका विशिष्ट गुण था। निर्भीक और निःशंक हो कर आप अपनी बात कह देते थे। इसी कारण अनेक विरोधों और तूफानों के बावजूद भी आप आगे बढ़ते गए। 'अमर भवन' का नवनिर्माण आपके

साहस, संकल्प, उत्साह और दूरदर्शिता का परिचायक है । श्री डागाजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भी परोक्षरूप से सक्रिय रहे । उनमें सरलता, सौम्यता, आत्मविश्वास की मात्रा गजव की थी ।

इस तरह स्व० श्री सागरमलजी डागा, सागर की तरह अनेक गुणरत्नों के आकर थे । आज डागाजी हमारे वीच नहीं रहे; लेकिन अपने उत्तमोत्तम गुणों की सौरभ अपने पीछे छोड़ गए हैं ।

स्व० श्री डागा अपने पीछे एक भरापूरा परिवार छोड़ गए हैं । आपके लघु-भ्राता श्री पारसमलजी डागा भी सेवारत श्रावक हैं, धुन के पक्के और इरादे के धनी हैं । आपके दोनों पुत्र सर्वश्री मोतीचन्द तथा सुमतचन्द्र, आपके स्वभाव और गुणों की प्रतिकृति हैं ।

श्री डागाजी के निधन से जैन समाज की ही नहीं, सारे समाज की, तथा राष्ट्र के एक सपूत की और उससे भी वढ़कर भगवान् महावीर के परम श्रद्धालु भक्त की क्षति हुई है; जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में असम्भव है ।

वीतरागप्रभु से करवद्ध प्रार्थना है कि उनकी आत्मा जहाँ भी हो, वहाँ उन्हें शान्ति मिले । वीरायतन-परिवार उनके शोकसंतप्त परिवार एवं ईष्टजनों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करता है । —**पदमचन्द जैन**, मंत्री, वीरायतन

शोक-संवेदना

स्व. पारसमलजी 'प्रसून'—जैनरत्न माध्यमिक विद्यालय, भोपालगढ़ (जोधपुर) के वरिष्ठ अध्यापक, प्रसिद्ध वक्ता, समाजसेवी पारसमलजी 'प्रसून' को अचानक हेमरेज एवं पक्षाघात हो जाने से ता० ११ सितम्बर को जोधपुर में देहावसान हो गया । आप जैन समाज के एक होनहार एवं लोकप्रिय व्यक्ति थे । समाज के लिए इस क्षति की पूर्ति होना अत्यन्त कठिन है । —कस्तूरचन्द वाफणा, भोपालगढ़

स्व. सागरमलजी कांठेड़—नागदा नगर के प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति श्री सागरमलजी कांठेड़ का ७५ वर्ष की आयु में संथारे सहित समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ । आप ४० साल से चौविहार व्रत करते थे । आपके निधन से नागदा जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है । आप अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं ।

—भैंरूलाल कांठेड़ जैन, नागदा

धर्मनिष्ठ श्रावक श्री रूपचन्दजी धाकड़ का दुःखद निधन—स्थानकवासी जैनसमाज के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री भंवरलाल जी धाकड़ के लघुभ्राता एवं सांवतमल के पिता श्री रूपचन्दजी धाकड़ का ७८ वर्ष की आयु में संवत्सरी के दिन शाम को दुःखद निधन हो गया । आप रामपुरा—निवासी होते हुए भी वर्षों से इंदौर रहते थे । आपको शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था । जैन समाज की समस्त संस्थाओं द्वारा आपको श्रद्धांजलि अर्पित की गई । —हस्तीमल भेलावत, इंदौर

वीरायतन

समाचार

१—वीरायतन की जनरल मीटिंग दो और तीन नवम्बर को राजगृह में रखी थी। लेकिन श्री जयप्रकाशनारायणजी के नेतृत्व में बिहार में आन्दोलन तीव्रतर हो रहा है, इसलिए मीटिंग को स्थगित करना पड़ा। अब मीटिंग कब रखी जाय, इसका विचार चल रहा है। निश्चित होते ही सभी सदस्यों को सूचित किया जायगा।

२—भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष में ११ नवम्बर से २५ दिसम्बर तक ४५ दिन का विशाल रूप से विशिष्ट कार्यक्रम वीरायतन की ओर से राजगृह में निश्चित किया गया था। परन्तु जे० पी० के नेतृत्व में बिहार में ४ नवंबर से आन्दोलन तेज हो रहा है, इसलिए निर्वाणशताब्दी के विशेष आयोजन पूरे निर्वाण वर्ष के लिए यथाप्रसंग विस्तृत कर दिये हैं। वर्तमान में दीपावली से ४५ दिन तक आगमवाचना, ध्यानशिविर, गरीब प्रजा को वस्त्रदान, अन्नदान, नेत्रदानशिविर आदि आयोजन यथाप्रसंग होंगे।

३—बिहार-सरकार की ओर से पश्चिमपुर के पास वीरायतन को जो २४ एकड़ जमीन मिलने वाली थी, उसे वीरायतन को देने की स्वीकृति बिहार मंत्रिमंडल ने दे दी है। इस जमीन को प्राप्त करने के लिए बिहार सरकार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री केदारपांडे के समय से श्रीचन्द्रस्वामीजी और सुरेन्द्रकुमारजी जैन, राजगृही, तथा श्रीचन्दूभाई कोठारी, कलकत्ता आदि का विशेष प्रयत्न रहा है। अतः इसके लिए वीरायतन उनका आभार मानता है।

४—भगवान् महावीर के निर्वाण शताब्दीवर्ष में राजगृही और पावापुरी के मध्य में वीरायतन ने २५ लाख आदर्श स्कूल बनाने का निश्चय किया है। स्कूल के भवननिर्माण के लिए जो सज्जन तेरह हजार रुपये का दान देंगे, उनका नाम उस कमरे पर देने का निर्णय वीरायतन ने किया है। कुछ सज्जनों की इस कार्य के लिए स्वीकृति भी आ चुकी है।

५—शरद् पूर्णिमा को राष्ट्रसंत उपाध्याय कविश्री अमरमुनिजी महाराज की जन्मतिथि के उपलक्ष में वीरायतन की भूमि पर समारोह था। राजगृह तथा आस-पास के सैकड़ों व्यक्ति, जिनमें हरिजन अधिक थे, प्रवचन सुनने आए थे। उन सबने मांसाहार, शराब और शिकार का त्याग किया। उस दिन ५०० व्यक्तियों को मीठे चावलों का भोजन दिया गया। इस अवसर पर कई बहनों को साड़ियाँ और पुरुषों को धोतियाँ वितरित की गईं। बाहर के जो भाई आए थे, वे इस रचनात्मक कार्य को देख कर गद्‌गद् हो गए।

वीरायतन द्वारा एक नये चित्र का प्रकाशन

भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में वीरायतन के सौजन्य से सन्मतिज्ञानपीठ ने भगवान् महावीर के जीवन का सुन्दर आकर्षक पंचरंगे एक चित्र पाँच झाँकियों सहित, १७"×२२" साइज का प्रकाशित किया है। चित्र प्रकाशित होने से पहले ही लोगों की माँग शुरू हो गई है। अतः शीघ्रता करें। मूल्य सिर्फ ५) रुपये डाककर्च अलग।

मिलने का पता—**सन्मति ज्ञानपीठ**
लोहामण्डी, आगरा-२
(उ० प्र०)

—**खेलशंकर दुर्लभजी जौहरी**
अध्यक्ष, वीरायतन, राजगृह

सहयोग दीजिए, ग्राहक बनिए

लुधियाना के मुख्यभ्राता श्रीफूलचन्दजी जैन एक धर्मनिष्ठ, पुरुषार्थी एवं जैन-संस्कारप्रेरक व्यक्ति हैं। आपको सन्मति ज्ञानपीठ आगरा ने श्री अमरभारती तथा ज्ञानपीठ से प्रकाशित साहित्य के प्रचारक एवं प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया है। सभी धर्मप्रेमी भाई-बहन मुख्यभ्राता श्री फूलचन्द जैन को पूरा सहयोग दें।

रामधनशर्मा, बी. ए. एल. टी.
व्यवस्थापक, सन्मति ज्ञानपीठ

वीरायतन का मास्टर प्लान
संकेत–
१. दीप-स्तम्भ
२. आगम-मन्दिर
३. उपशार्या
४. निवृति-आश्रम
५. भोजनालय
६. कार्यालय
७. प्रदर्शनी-कक्ष
८. कुटीर-उद्योग
९. गो-सदन
१०. छात्रावास
११. पुस्तकालय
१२. साधना-केन्द्र
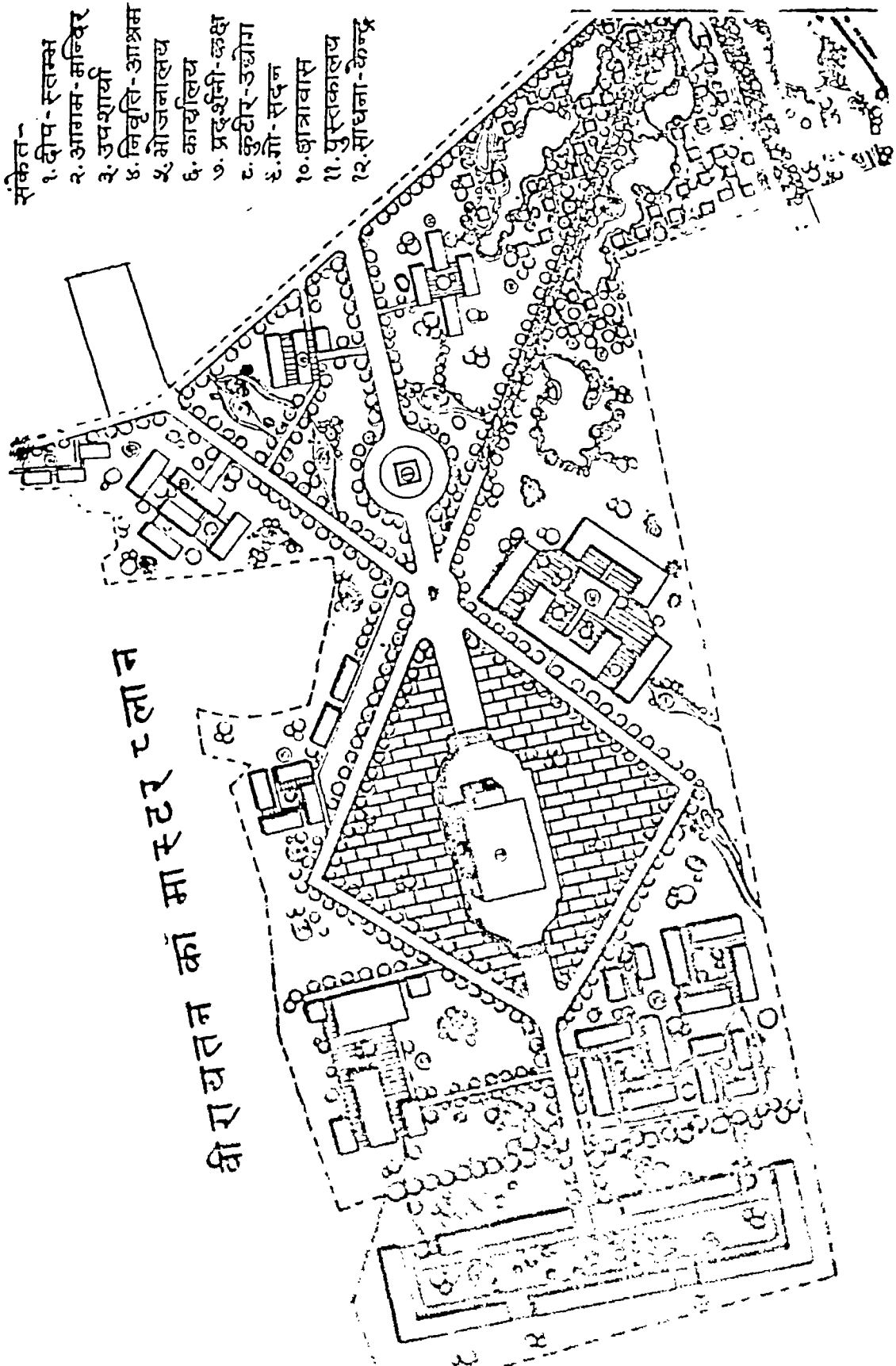
पंजाबी में महावीर का चरित्र

मोगाविराजित भंडारी श्री पद्मचन्दजी म० एवं जैनभूषण श्री अमरमुनिजी की प्रेरणा से पंजावराज्य की भ० महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सवसमिति, मालेरकोटला द्वारा राष्ट्रसन्त उपाध्यायश्री अमरमुनिजी द्वारा लिखित **'महावीर : सिद्धान्त और उपदेश'** का पंजाबी (गुरुमुखी लिपि) में अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं—श्री रवीन्द्रकुमार जैन। पृष्ठ संख्या १६५ है। पहले भी आपकी प्रेरणा से उपाध्यायश्रीजी द्वारा लिखित भ० महावीर की बोधकथाएँ......आदि पुस्तकों का पंजाबी में अनुवाद हुआ है।

दीर्घतपस्विनी इचरजकुंवरजी लुणावत का सफल दीर्घतप

जीवन के प्रभात से ही माता-पिता के संरक्षण में व्रत और तप के अभ्यास से जयपुरनिवासी श्रीमती इचरजकुंवर लुणावत, धर्मपत्नी स्व. श्रीगुमानमलजी लुणावत ने दीर्घ तपस्वी भ० महावीर के २५००वें निर्वाणवर्ष के उपलक्ष्य में दीर्घकालिक खमण तपस्या करके आत्मा में निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति की है, जनता की आत्मश्रद्धा में वृद्धि की है। वास्तव में भौतिक युग के लिए यह चमत्कार है। आप शान्तप्रकृति की धार्मिक महिला हैं, संकटकाल में धर्मपथ पर धैर्य के साथ चलती हैं। कुछ वर्षों पूर्व आपने मासखमण तप भी किया था। आपने सन् १६६६ में ५१ दिन की एवं सन् १६७२ में ६१ दिन की घोर तपस्या की थी। इस वर्ष आपने लगभग चार मास की लगातार तपस्या अपनी धर्मक्रियाओं के साथ करके संसार को आश्चर्य में डाल दिया। जयपुर के स्था० जैन श्रावक संघ ने संघ द्वारा आपका अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। तपोनिष्ठ माताजी के तीनों पुत्र—सर्वश्री महेन्द्रकुमार, श्री वीरेन्द्रकुमार एवं श्रीदेवेन्द्र कुमार तथा पुत्रवधुएँ एवं पुत्री आदि में भी आपकी शक्ति के संस्कारों का प्रतिविम्ब पड़ा है। तप की सफल पूर्णाहुति के लिए शुभकामनाएँ।

—ज्ञानेन्द्रकुमार लुणावत, जयपुर

भगवान् महावीर की—

पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में

श्रमण भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी पर संसार के समस्त जैनों के मन में उमंग है, और कुछ कार्य करने की तमन्ना है। कुछ रचनात्मक प्रवृत्तियों का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं—

जगह-जगह प्रान्तीय समितियाँ—२५वीं निर्वाण शताब्दी समारोह के लिए लगभग सभी प्रान्तों में राज्य सरकार की ओर से प्रान्तीय निर्वाण शताब्दी समारोह समिति गठित की गई है, और उनमें जैन सम्प्रदाय के सभी फिरकों के प्रतिनिधि लिए गए हैं। इन सबने वर्षभर का अपना-अपना कार्यक्रम घोषित कर दिया है।

जिलास्तर पर समितियाँ—कई प्रान्तों में जिलास्तर पर भी कुछ समितियाँ बनी हैं और उसमें उस जिले के जैन प्रतिनिधि तथा राजकीय प्रतिनिधि लिये गए हैं। इनके द्वारा भी कई कार्यक्रमों का आयोजन होगा।

अन्यान्य समाजसेवी संस्थाएँ—इन राष्ट्रीय स्तर की समितियों के अलावा कई सार्वजनिक समाजसेवी संस्थाएँ भी संस्थापित हुई हैं, जिन्होंने अपने-अपने ढंग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है—

(१) वीरायतन—यह राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी की प्रेरणा से स्थापित संस्था है, जो समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य कर रही है। इसकी प्रगति के बारे में वीरायतन खंड में दिया है।

(२) जैन विश्वभारती—अणुव्रतअनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी के सान्निध्य में संस्थापित संस्था है; जिसका उद्देश्य जैनविद्याओं के सम्बन्ध में शोध और साधना करना है। इसकी ओर से जैनशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन और सांस्कृतिक प्रसारण-प्रकाशन होगा। कुछ ग्रन्थों का भी विवेचन हुआ है और होगा।

(३) महावीरनगर : अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र—[illegible], धर्मसंघ समाज-रचना के [illegible], [illegible], [illegible] मुनिश्री [illegible] की प्रेरणा से स्थापित [illegible] संस्था है। [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible]

पंजाबी में महावीर का चरित्र

मोगाविराजित भंडारी श्री पद्मचन्दजी म० एवं जैनभूषण श्री अमरमुनिजी की प्रेरणा से पंजाबराज्य की भ० महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सवसमिति, मालेरकोटला द्वारा राष्ट्रसन्त उपाध्यायश्री अमरमुनिजी द्वारा लिखित **'महावीर : सिद्धान्त और उपदेश'** का पंजाबी (गुरुमुखी लिपि) में अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं—श्री रवीन्द्रकुमार जैन। पृष्ठ संख्या १६५ है। पहले भी आपकी प्रेरणा से उपाध्यायश्रीजी द्वारा लिखित भ० महावीर की बोधकथाएँ……आदि पुस्तकों का पंजाबी में अनुवाद हुआ है।

दीर्घतपस्विनी इचरजकुंवरजी लुणावत का सफल दीर्घतप

जीवन के प्रभात से ही माता-पिता के संरक्षण में व्रत और तप के अभ्यास से जयपुर-निवासी श्रीमती इचरजकुंवर लुणावत, धर्मपत्नी स्व. श्रीगुमानमलजी लुणावत ने दीर्घ तपस्वी भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-वर्ष के उपलक्ष्य में दीर्घकालिक खमण तपस्या करके आत्मा में निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति की है, जनता की आत्मश्रद्धा में वृद्धि की है। वास्तव में भौतिक युग के लिए यह चमत्कार है। आप शान्तप्रकृति की धार्मिक महिला हैं, संकटकाल में धर्मपथ पर धैर्य के साथ चलती हैं। कुछ वर्षों पूर्व आपने मासखमण तप भी किया था। आपने सन् १९६९ में ५१ दिन की एवं सन् १९७२ में ६१ दिन की घोर तपस्या की थी। इस वर्ष आपने लगभग चार मास की लगातार तपस्या अपनी धर्मक्रियाओं के साथ करके संसार को आश्चर्य में डाल दिया। जयपुर के स्था० जैन श्रावक संघ ने संघ द्वारा आपका अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। तपोनिष्ठ माताजी के तीनों पुत्र—सर्वश्री महेन्द्रकुमार, श्री वीरेन्द्रकुमार एवं श्रीदेवेन्द्र कुमार तथा पुत्रवधुएँ एवं पुत्री आदि में भी आपकी शक्ति के संस्कारों का प्रतिबिम्ब पड़ा है। तप की सफल पूर्णाहुति के लिए शुभकामनाएँ।

—ज्ञानेन्द्रकुमार लुणावत, जयपुर

भगवान् महावीर की—

पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में

श्रमण भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी पर संसार के समस्त जैनों के मन में उमंग है, और कुछ कार्य करने की तमन्ना है। कुछ रचनात्मक प्रवृत्तियों का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं—

जगह-जगह प्रान्तीय समितियाँ—२५वीं निर्वाण शताब्दी समारोह के लिए लगभग सभी प्रान्तों में राज्य सरकार की ओर से प्रान्तीय निर्वाण शताब्दी समारोह समिति गठित की गई है, और उनमें जैन सम्प्रदाय के सभी फिरकों के प्रतिनिधि लिए गए हैं। इन सबने वर्षभर का अपना-अपना कार्यक्रम घोषित कर दिया है।

जिलास्तर पर समितियाँ—कई प्रान्तों में जिलास्तर पर भी कुछ समितियाँ बनी हैं और उसमें उस जिले के जैन प्रतिनिधि तथा राजकीय प्रतिनिधि लिये गए हैं। इनके द्वारा भी कई कार्यक्रमों का आयोजन होगा।

अन्यान्य समाजसेवी संस्थाएँ—इन राष्ट्रीय स्तर की समितियों के अलावा कई सार्वजनिक समाजसेवी संस्थाएँ भी संस्थापित हुई हैं, जिन्होंने अपने-अपने ढंग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है—

(१) **वीरायतन**—यह राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी की प्रेरणा से स्थापित संस्था है, जो समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य कर रही है। इसकी प्रगति के बारे में वीरायतन खंड में दिया है।

(२) **जैन विश्वभारती**—अणुव्रतअनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी के सान्निध्य में संस्थापित संस्था है; जिसका उद्देश्य जैनविद्याओं के सम्बन्ध में शोध और साधना करना है। इसकी ओर से जैनशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन और शोधपूर्वक संपादन-प्रकाशन होगा। कुछ ग्रन्थों का भी विमोचन हुआ है और होगा।

(३) **महावीरनगर : अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र**—विश्ववात्सल्यप्रेरक, धर्ममय समाज-रचना के प्रयोगकार, अनुबन्धप्रेरक, कर्मयोगी मुनिश्री सन्तबालजी की प्रेरणा से स्थापित यह संस्था है। साधुसंस्था, जनसेवकसंस्था, जनसंस्था और विश्वलक्ष्यी

राष्ट्रीय संस्था इन चारों के परस्पर उत्तरोत्तर अंकुश से सारे विश्व में समाज और राष्ट्र का निर्माण शुद्धधर्म की दृष्टि से हो, यह इस संस्था का उद्देश्य है। इसी भावना से विश्ववात्सल्य प्रायोगिक संघ और तदन्तर्गत संतसेवक-समुच्चयपरिषद् बनी है। २५००वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य में इस संस्था द्वारा चारों संस्थाओं, खासकर सन्तों से अपील की गई है कि वे इस निर्वाणवर्ष में (पूर्वोक्त तीनों संस्थाओं के सहयोग से) कम से कम एक वर्ष तक अथवा जिन्दगीभर तक शराब, मांसाहार, एवं शिकार (नरबलि, पशुबलि, पक्षीबलि आदि) के त्याग की प्रतिज्ञा दिलावें। प्रतिज्ञाबद्ध व्यक्तियों की सूची पते सहित महावीर नगर, चिंचणी (वाया बोईसर, जि० थाणा) भेज दें।

(४) **महावीर मिशन**—विश्वधर्मसंगम एवं विश्वअहिंसासंघ के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमारजी द्वारा स्थापित यह संस्था है। इसके अन्तर्गत वीरसेना, वीरपुत्र, अहिंसा शोधपीठ, आदि अनेकविध कल्याणकारी योजनाएँ हैं।

(५) **वीरनिर्वाण-गोसदन, दिल्ली**—प्राणिमित्र श्री आनन्दराजजी सुराणा मानद मंत्री, अ० भा० स्था० जैन कांफ्रेंस द्वारा निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष में स्थापित है। गायों को कसाइयों के हाथ से छुड़ा कर अभयदान दिलाना, इस संस्था का उद्देश्य है।

● **आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० द्वारा उद्बोधित कार्यक्रम**—इस वर्ष को संयमवर्ष के रूप में मनाया जाय, भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया जाय, धर्म को जीवन में उतारा जाय, विद्यार्थियों और कार्यकर्त्ताओं को तैयार किया जाय, २५००० तेले सारे भारत में हों, प्रत्येक क्षेत्र में युवक-संघ स्थापित हों, श्रावक श्राविका वर्षभर में कम से कम २५ तप करें; ब्रह्मचर्यपालन अधिकाधिक हो, साधु-साध्वी व्यसनमुक्ति की प्रेरणा दें, भ० महावीर से सम्बन्धित साहित्यरचना हो, श्रावक श्राविकाएँ वर्ष भर में कम से कम २५०० पृष्ठों का स्वाध्याय अवश्य करें, भ० महावीर की कम से कम २५० मालाओं का जाप करें।

—वर्द्धमान स्था० श्री संघ, कांदावाड़ी, बम्बई

● **आचार्यश्री हस्तीमलजी म० द्वारा प्रेरित कार्यक्रम**—आचार्य श्री हस्तीमलजी म० ने निर्वाण वर्ष के उपलक्ष में २५०० मांसाहारत्यागी, २५०० मद्य त्यागी इसी प्रकार सामायिक, तप, जप, स्वाध्याय आदि के सम्बन्ध में कुछ लक्ष्य स्थिर किये हैं।

● **आचार्यश्री तुलसी द्वारा उद्बोधित कार्यक्रम**—२५०० वें निर्वाणवर्ष के महोत्सव को मनाने के लिए आचार्यश्री के कुछ सुझाव ये हैं—(१) इसे संयमवर्ष के रूप में मनाया जाय, इसमें प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी ने भी अपनी सहमति बताई है। (२) पच्चीससौ पृष्ठों का स्वाध्याय, (३) तत्त्वज्ञान-प्रशिक्षण, (४) ज्ञानशाला (बालक-बालिकाओं के संस्कारनिर्माण की दृष्टि से), (५) समन्वय के ५ सूत्रों पर अमल करना, (६) २५०० अणुव्रती तैयार करना, (७) सम्यक्त्व-दीक्षा

देना, (८) व्रतदीक्षा २५०० व्यक्तियों को देना, (९) व्यसनमुक्ति-अभियान, (१०) उपासना-कक्ष, (११) साधक-उपासक-योजना, (१२) विसर्जन का अभ्यास करना, (१३) ब्रह्मचर्यधारी बनाए जांय, (१४) तपः-साधना पर जोर दिया जाय।

● **वीर निर्वाण भारती द्वारा विद्वान् पुरस्कृत**—तीर्थंकर महावीर के २५०० वर्ष के उपलक्ष्य में विश्वधर्मप्रेरक मुनि विद्यानन्दजी की प्रेरणा से स्थापित वीर-निर्वाणभारती द्वारा १९७५ की दीपावली तक देश के ५० विद्वानों को पुरस्कृत करने की योजना है। अब तक ८ विद्वान् पुरस्कृत किये जा चुके हैं।

● **अहिंसक समाजरचना की दिशा में ठोस रचनात्मक प्रयोग**—बाबा चेतनदासजी भ० महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी की पुण्यस्मृति में मिर्जापुर जिले के लालगंज प्रखण्ड में २५ ग्रामों में सम्पूर्ण व्यसनमुक्ति, संस्कारशुद्धि, महावीर औषधालय, महावीर विद्यालय, घर-घर में गोपालन, प्रत्येक घर में अम्बर चरखे पर कताई, खेती के लिए जमीन दिलवाना, अन्न-वस्त्र में स्वावलम्बी श्रमसाधना का कार्यक्रम चलाना, गृहोद्योग-व्यवस्था आदि कार्यक्रम चलाऐंगे।

● **महावीर के सम्बन्ध में स्मारिका, विशेषांक या ग्रन्थ का प्रकाशन**—निम्नलिखित पत्रिकाओं ने निर्वाणविशेषांक या स्मारिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है—(१) श्री अमरभारती, आगरा, (२) जैन जगत्, बम्बई, (३) व्यापारसन्देश कानपुर, (४) जैन प्रकाश, (हिन्दी गुजराती) दिल्ली, बम्बई, (५) श्वेताम्बर जैन, आगरा, (६) आगमपथ, दिल्ली, (७) शाश्वतधर्म मंदसौर (८) विजयानन्द, लुधियाना, (९) अणुव्रत बालपरिषद् कलकत्ता, स्मारिका, (१०) उत्तरप्रदेश राज्य समिति, लखनऊ, (११) पायोनियर क्लब, गोहाटी, (१२) साधना साप्ताहिक पूना, (१३) महावीर समाज, जोधपुर (स्मारिका)। (१४) सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर से स्वाध्याय-स्मारिका, (१५) जैनभारती, दिल्ली, (१६) अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से महावीर : आधुनिक युग के सदर्भ में, (१७) तुलसी कन्यामंडल, ग्वालियर से स्मारिका।

● **लेख प्रतियोगिता**—'वर्तमान परिस्थितियों में भ० महावीर के सिद्धान्तों की उपयोगिता' पर लेख श्री स्था० जैन युवक संघ (रजि० इन्दौर से) आमंत्रित है। इनाम क्रमशः १५१, १०१, व ५१ हैं। इसी प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से "महावीर का जीवन और उपदेश" विषय पर है। इनाम क्रमशः २५०० रु०, १५०० रु० और १००० रु० हैं।

● **इन्दौर में २५०० तेले का ऐतिहासिक संकल्प**—इंदौर में विराजित मूलमुनिजी, अजितमुनि आदि साधुसाध्वीवृन्द के सान्निध्य में २५०० तेले का संकल्प पूर्ण हुआ। एक विशाल तपोत्सव जुलूस भी निकला। इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से ३००० आयम्बिल भी हुए।

● **पंजाब में भ० महावीर शोधकेन्द्र**—की स्थापना हेतु पंजाब वि० वि० को सरकार द्वारा ३० लाख रु० के अनुदान की स्वीकृति दी गई है।

● **इन्दौर में देशभर के जैन कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन**—ता० १२, १३ अक्टूबर को देशभर के जैन कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन श्री कस्तूरभाई लालभाई की अध्यक्षता में हुआ। निर्वाणोत्सव-समितियों के लगभग ५०० उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया। नवभारत टाइम्स के सम्पादक 'अक्षयकुमार जैन' ने वताया—दिल्ली में २५ एकड़ भूमि में महावीरवनस्थली पार्क का निर्माण, पावापुरी का डाक टिकट निर्माण आदि होगा। एक सुझाव यह आया कि तीर्थों सम्बन्धी मुकद्दमेवाजी समाप्त की जाए। मोतीलालजी सुराणा द्वारा लिखित वोधकथाकौमुदी का विमोचन सभाध्यक्ष ने किया। एक सुझाव यह भी था कि निर्वाणोत्सव के कार्यक्रमों में युवकों एवं महिलाओं को भी लिया जाए। इन्दौर के कार्यकर्त्ताओं द्वारा की गई भोजन, आवास आदि की व्यवस्था की सभी ने सराहना की। नगर के पत्रकारों, समाचार पत्रों एवं पुलिस व्यवस्था के प्रति आभार प्रगट किया गया।

● **श्री चन्द्रस्वामी की सफल विदेशयात्रा**—श्री चन्द्रस्वामी अमेरिका, यूरोप और अफ्रीका आदि कई राष्ट्रों में महावीर निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में भ्रमण करके लौटे हैं। उन्होंने जैन-जैनेतर सभी भारतीय लोगों से सम्पर्क किया, लोगों को भगवान् महावीर के धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने की प्रेरणा दी। लन्दन में उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'इन्टरनेशनल जैन कान्फ्रेंस' की स्थापना की, तथा सर्वधर्मसमभावकेन्द्र भी निजी मकान में स्थापित कर दिया है। वीरायतन का एक केन्द्र भी निकट भविष्य में वहाँ खुलने की आशा है।

● **धर्मपाल-युवकों द्वारा पदयात्रा**—धर्मपाल प्रचार-प्रसार समिति के तत्त्वावधान में भ० महावीर के २५सौवें निर्वाणोत्सव कार्यक्रम के अन्तर्गत **श्री मानव मुनिजी** के नेतृत्व में २०० धर्मपाल नवयुवक १६ नम्वबर को पदयात्रा पर रवाना होंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में भ० महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रकार करते हुए वे उन्हेल, नागदा आदि होते हुए जावरा धर्मपाल-सम्मेलन में पहुँचेंगे।

● **१३ नवम्बर १९७४ को दीपावली का खास प्रोग्राम**—(१) संयुक्त रूप से प्रभात फेरी, (२) धर्मस्थानों में यथाशक्ति धर्माराधना, (३) उपवास रखना, अन्न की बचत गरीबों को बाँटना; (४) उपदेशों का व्यापक प्रचार हो, (५) सभी समारोहों में नमस्कार-मंत्र, महावीराष्टक व मंगलपाठ हो, (६) विद्याकेन्द्रों में सर्वत्र महोत्सवसम्बन्धी आयोजन रखें। (७) आकाशवाणी द्वारा प्रसारण, (८) पोस्टर्स लगाना, (९) दि० १३, १४, १५ को सर्वत्र जीवहिंसा वन्द हो। (१०) सभी कत्लखानों, शराब इत्यादि की दूकानों पर शराब, मांस आदि की विक्री पर पावंदी हो, (११) होटलों में शराब मांस आदि का ३ दिन उपयोग वन्द हो, (१२) जैनध्वज सर्वत्र लगें। (१३) गरीवों को अन्न, वस्त्र, दवा, दूध एवं पशु-पक्षियों को यथायोग्य आहार दिया जाय।

—०—

(भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में प्रकाशित पुस्तकों की समालोचना)

तीर्थंकर महावीर

निदेशक	लेखक
आचार्य श्रीआनन्द ऋषिजी	श्रीमधुकर मुनिजी
प्रवर्तक मुनिश्री मिश्रीमलजी	श्रीरतन मुनिजी
उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी	श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक—
- सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा-२
- रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी (अहमदनगर)
- श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर
- मुनिश्री हजारीमल स्मृति-प्रकाशन, ब्यावर
- आनन्द प्रकाशन, चिंचोड़ी (महाराष्ट्र)
- अमोल जैन ज्ञानालय, कल्याणस्वामी रोड, धूलिया

मूल्य—दस रुपये ।

प्रस्तुत पुस्तक लगभग ३०० पृष्ठों में समाप्त होती है । इसमें भगवान् महावीर के जीवन, उनकी लोककल्याणकारी प्रवृत्तियों तथा उनके सिद्धान्तों एवं उपदेशों का पाँच खण्डों में सरस, सरल विवेचन प्रस्तुत किया गया है । प्रथम खण्ड में भगवान् महावीर के पूर्वभवों का समीक्षात्मक एवं प्रेरणाप्रद वर्णन है । दूसरे खण्ड में भगवान् के जन्म तथा बाल्यकाल से ले कर गृहस्थजीवन तक का भावात्मक विवेचन है । तीसरे खण्ड में साधना के महापथ पर बढ़ने से ले कर निर्वाणप्राप्ति तक की जीवनगाथा भाववाही शैली में दी गई है । चतुर्थ खण्ड में उनके तीर्थंकरजीवन की कल्याणकारी प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया गया है । और पाँचवें खण्ड में भगवान् महावीर द्वारा निरूपित सिद्धान्त, साधनाविधि तथा जीवनस्पर्शी शिक्षाओं का मूल एवं भावानुवाद के साथ संकलन है । कुल मिला कर पाँच खण्डों में श्रमणशिरोमणि

महावीर का जीवन और दर्शन सांगोपांग ढंग से प्रस्तुत किया गया है। युग की भाषा में भगवान् महावीर को सर्वांगपूर्ण समझने के लिए पुस्तक बहुत ही उपादेय है। सम्पादकगण पुस्तक को सजाने-संवारने में सफल हुए हैं। पुस्तक का गेटअप, साज-सज्जा आकर्षक है।

भगवान् महावीर : एक अनुशीलन

लेखक—श्रीदेवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न, मूल्यांकन—दलसुखभाई मालवणिया, प्राक्कथन—डॉ० प्रेमसुमन जैन, प्रकाशक—तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृष्ठसंख्या ७८०, मूल्य ४०) रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक में तीन विभाग हैं। प्रथम खण्ड में भगवान् महावीर से पूर्व-कालीन जैनपरम्परा तथा समकालीन समाज, संस्कृति एवं धर्म और धर्मनायकों का प्रमाणपुरःसर विस्तृत वर्णन है। दूसरे खण्ड में भगवान् महावीर के जीवन की सहस्रमुखी साधना का सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी खण्ड में भगवान् महावीर के पूर्वभव, उनके गृहस्थजीवन, साधकजीवन, गणधरवाद, तीर्थंकरजीवन एवं उपदेश आदि हैं। अन्तिम परिशिष्ट-विभाग में भगवान् महावीर के विहार, वर्षा-वास, आदि महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों का विश्लेषण है। गणधर-परिचय दिया है, फिर व्यक्ति-परिचय और भौगोलिक परिचय भी, अन्त में शब्दकोष दे कर ग्रन्थ पर कलश चढ़ा दिया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लेखक ने दिगम्बर, श्वेताम्बर आचार्यों के ग्रन्थों के यत्र-तत्र प्रमाण भगवान् महावीर के जीवन के सन्दर्भ में, उद्धृत किए हैं। कई स्थलों पर सुन्दर ढंग से समन्वय भी किया है। इतने प्रमाण और उद्धरण का अंकित करना लेखक की विशाल अध्ययनशीलता सूचित करता है। लेखक इस परिश्रम के लिए धन्यवादार्ह हैं। पुस्तक का मूल्य ४०) रु० खटकता है। पुस्तक का मूल्य अधिक रखने से सर्वसाधारण व्यक्ति उस पुस्तक से यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते, ऐसी पुस्तकें केवल पुस्तकालय की अलमारी की शोभा ही बढ़ाती हैं। वैसे पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

वीरविभूति, खण्ड १, २, ३

लेखक—पं० उदय जैन, प्रकाशक—जैन शिक्षणसंघ, कानोड़ (उदयपुर) पृष्ठ तीनों खण्डों के ४००, मूल्य तीनों खण्डों के ६)५० प्रथम और द्वितीय खण्ड में भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित पृष्ठ हैं।

सर्वप्रथम **'महावीर की आवश्यकता'** शीर्षक प्रकरण तो बहुत ही प्रेरणा-दायक है। वास्तव में वर्तमान युग में ऐसे महावीरों की जरूरत है, जो समाज, धर्म, राष्ट्र और जाति में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, शोषण और स्वार्थ को समूल नष्ट कर सके, समाज में फैले हुए अन्धविश्वासों, कुरूढ़ियों, दहेज, मृतभोज आदि गलत रिवाजों को एकदम मिटा दें। पुस्तक की भाषा सरस, सजीव है। युक्ति, और तर्क के साथ श्रद्धा का पुट सर्वत्र अद्भुत है। तृतीय खण्ड में भगवान् महावीर के धर्म,

दर्शन, संस्कृति एवं तत्वों का युक्तिसंगत विश्लेषण है। **वीरविभूति** से वास्तव में भगवान् महावीर के जीवन के उत्तमोत्तम गुणरूपी विभूतियों का दर्शन हो जाता है। लेखक इस प्रयास के लिए बधाई के पात्र हैं। पुस्तक प्रत्येक जिज्ञासु के लिए पठनीय एवं मननीय है।

—मुनि नेमिचन्द्र

महावीर : सिद्धान्त और उपदेश

लेखक—उपाध्याय अमरमुनि, प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, पृष्ठ संख्या १६०, मूल्य दो रुपये मात्र। प्रस्तुत पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण है। पुस्तक में मुख्यतया तीन खण्ड हैं—(१) जीवनरेखा, (२) सिद्धान्त एवं (३) उपदेश।

महावीर की जीवनरेखाओं में संक्षेप में महावीर के गृहस्थजीवन, साधक जीवन और तीर्थंकरजीवन की झाँकी दी गई है। द्वितीय खण्ड में महावीर के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, समन्वय, कर्मवाद आदि पर हृदयस्पर्शी विवेचन है। और तृतीय खण्ड में भगवान् महावीर के उपदेशों का हिन्दी-अनुवाद-सहित संकलन किया गया है। इस छोटी-सी पुस्तक में गागर में सागर भरने का स्तुत्य प्रयास है। पुस्तक की भाषा और शैली में रोचकता, प्रवाह और पूर्वापरसंगति है। सचमुच, उपाध्यायश्रीजी की इस पुस्तक को पढ़ कर भगवान् महावीर को समझने में कोई कठिनाई किसी भी धर्म, दर्शन या मत के अग्रगामी के लिए नहीं होगी।

पुस्तक की साज-सज्जा, तथा छपाई-सफाई आकर्षक है।

—मुनि वसन्तविजय

तीर्थंकर भगवान् महावीर

लेखक पं० पद्मचन्द्र शास्त्री प्रकाशक—श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ४८ सीतलामाता बाजार, इन्दौर

पृष्ठ संख्या—११५ मूल्य—आठ रुपए।

यह पुस्तक मुनिश्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से प्रकाशनसमिति के सप्तम पुष्प के रूप में, जून १९७४ में पाठकों के सामने आई है। आरम्भ के १६ पृष्ठों में जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान् आदिनाथ से ले कर भगवान् महावीर तक की तीर्थङ्करपरम्परा का संक्षिप्त उल्लेख है। इसके बाद ५४ पृष्ठों में ढाई हजार वर्ष पूर्व की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का ज्ञान कराते हुए भगवान् के गर्भ में आने से ले कर केवलज्ञानप्राप्ति तक का क्रमवार वर्णन है। तत्पश्चात् ३२ पृष्ठों में भगवान् के विहार, समवसरण और परिनिर्वाण का सरस वर्णन है। पुस्तक की सामग्री जुटाने में जो परिश्रम किया गया है, वह सराहनीय है। आवरण आकर्षक है और कागज बढ़िया तथा छपाई सुन्दर है। भीतर भगवान का जो चित्र दिया गया है, वह अति मनोज्ञ और नयनाभिराम है। यदि पुस्तक को शीर्षक देकर विभिन्न खण्डों में विभाजित कर दिया जाता और आरम्भ में विषयानुक्रमणिका जोड़ दी जाती तो और अच्छा होता। पुस्तक पठनीय है।

—प्रतापचन्द्र जैन, आगरा

अभिनन्दन

एवं

शुभकामनाएँ

व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्थान एवं
व्यापारिक प्रतिष्ठान
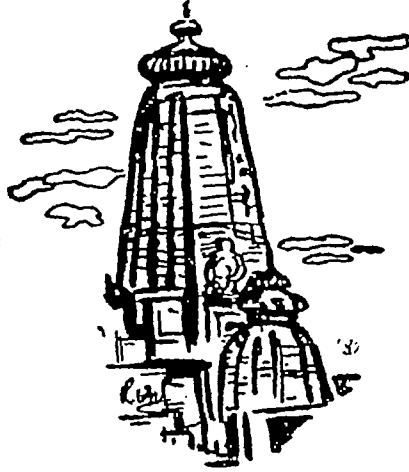
'सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हों; फिर भी लोभी मनुष्य की उनसे जरा भी तृप्ति नहीं होती ; क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।'

भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाणवर्ष के शुभ अवसर पर हम उनके चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं !

साथ ही उनके विश्वकल्याणकारी सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने में प्रयत्नशील **वीरायतन** की प्रगति शीघ्रातिशीघ्र हो, यही शुभाकाँक्षा है।

—पदमचंद जैन

—प्रेमचंद जैन

रतन प्रकाशन मन्दिर

से हु पन्नाणमंते बुद्धे,
आरंभोवरए सम्ममेयंति पासह

जिसने हिंसा करना छोड़ दिया ; वही समझदार है, वही ज्ञानी है इस बात को बिलकुल ठीक समझो।

सदा अप्रमत्त और सावधान रह कर, असत्य को त्याग कर, हितकारी सत्य वचन ही बोलना चाहिए। इस तरह सत्य बोलना बड़ा कठिन होता है।

—महावीर
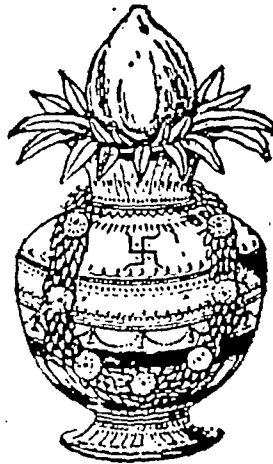
लोहस्सेस अणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि ।
जे सिया सन्निहीकामे, गिही पव्वइए न से ॥

संग्रह करना भीतरी लोभ की झलक है। इसलिए जो साधक मर्यादा विरुद्ध कुछ भी संग्रह करना चाहता है, वह गृहस्थ है, अनगार नहीं।

'ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान और मोह
के विवर्जन से तथा राग और द्वेष के क्षय से,
आत्मा एकान्तसुख-स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।'

'Through all pervading light of knowledge, through relinquishing of ignorance and attachment and through severance of passion and animosity human soul can attain all-blissful *moksha*.'

वीरायतन का एक महत्वपूर्ण अंग—

ब्राह्मीकला-सदन : एक परिचय

कु० निर्मला गाँधी, कु० शोभना जैन

जन-मन में उद्‌भूत होने वाली भावनाओं को चित्रित करना, साकार रूप देना कला है। चित्र एवं वस्तु के माध्यम से कलाकार जो भावों को अभिव्यक्त करता है, वही कला है। कला में वस्तु की नहीं, भावों की, विचारों की एवं कल्पना की प्रधानता है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में कला का अधिक महत्व है। बालक चित्र के माध्यम से उसमें निहित भावों, विचारों एवं चिन्तन को जल्दी पकड़ लेता है। इसलिए आधुनिक शिक्षापद्धति में प्राथमिक अध्ययन के लिए कला को स्थान दिया गया है।

जन-जीवन में सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों को जागृत करने के लिए दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी ने राजगृह में **'ब्राह्मीकला-सदन'** की स्थापना की है। उसका उद्द श्य है—चित्रकला के द्वारा जैन-संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार करना। इसके लिए प्राचीन कला-कृतियों का संग्रह करना, नवीन चित्रों का निर्माण करना और उनमें इलेक्ट्रिक फिटिंग करा कर उनमें निहित भावों को सक्रिय रूप से अभिव्यक्ति देना। इस तरह की एक सौ पैनल तैयार करवाना, जिनमें इलेक्ट्रिक फिटिंग की जा सके। इसमें लगभग एक लाख का खर्च आएगा। एक हजार रुपया देने वाले व्यक्ति का नाम उस पैनल पर दिया जाएगा।

इसके लिए एक बड़ा हाल बनाने की भी योजना है। उसका खर्च भी एक लाख रुपया आएगा। ५१ हजार रुपये का दान देने वाले व्यक्ति का उस हाल पर नाम दिया जाएगा। १०१ रुपया दे कर कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। विज्ञापन एवं टिकटों का विक्रय करके भी अर्थ-संग्रह करने की योजना है। अब तक लगभग १० हजार रुपये का सहयोग मिल चुका है। उसकी सूची अलग से दे रहे हैं।

'ब्राह्मीकला-सदन' की निम्न सदस्याएँ हैं—

अध्यक्ष : श्रीमती प्रेमवती जैन, लोहामण्डी, आगरा,

उपाध्यक्ष : श्रीमती निर्मला झाटकिया, बम्बई,

सेक्रेट्री : कु० निर्मला गांधी और कु० शोभना जैन, राजगृह,

सदस्या : कु० चम्पा टांटिया, श्रीमती कुशलबहन, श्रीमती हीराबहन गांधी, श्रीमती रमाबहन कोठारी, श्रीमती चन्द्राबहन हेमाणी, श्रीमती ज्योति-बहन शाह, श्रीमती पुष्पाबहन शाह, श्रीमती नीलम भीमाणी, कलकत्ता, श्रीमती सुशीलाबहन, श्रीमती हसुबहन शाह, बम्बई, श्रीमती प्रभावती कर्णावट, राजगृह।

ब्राह्मीकला-सदन, राजगृह (नालन्दा)

को प्राप्त सहयोग

	नाम	रुपये
१.	श्रीमती प्रेमवती जैन, लोहामण्डी, आगरा,	१५००
२.	वीरायतन वालिका संघ, राजगृह के सौजन्य से,	१३००
३.	श्रीमल्ली-भगवती महिलामण्डल, वम्वई के सौजन्य से (इसकी स्थापना साध्वीरत्न सुमतिकुंवरजी ने की थी। बहनों में धार्मिक एवं आध्यात्मिक जागृति का अच्छा कार्य कर रही है—यह संस्था।)	१०००
४.	श्री सुमति-महिलामण्डल, कलकत्ता के सौजन्य से (बहनों में धार्मिक शिक्षा एवं अध्यात्म-साधना की ज्योति जगाने हेतु दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी ने इसकी स्थापना की। इस दिशा में यह बहुत अच्छा कार्य कर रही है।)	१०००
५.	डालचन्दजी तातेड़, हनुमानगढ़ (राजस्थान)	५०१
६.	श्री चन्द्रभान रूपचन्द डाकले, श्रीरामपुर (अहमदनगर, महाराष्ट्र)	५००
७.	श्री सरदार जसवन्तसिंह, भटिण्डा	५००
८.	श्रीमती लज्जावती जैन (धर्मपत्नी भोजराज जैन)	५००
९.	श्री दिव्याजी (अमेरिका)	५००
१०.	श्री आत्माराम जैन, एडवोकेट, हनुमानगढ़ (राजस्थान)	२५१
११.	श्री नानकमल छोगमल जैन, हनुमानगढ़ (राजस्थान)	२५१
१२.	श्री भारत टेप कम्पनी, लुधियाना	२५०
१३.	श्री नत्थूराम गोलछा, अबोहर	२५०
१४.	श्री महावीरप्रसाद नेवेटिया, अबोहर	२५०
१५.	नैनसुख लालचन्द नवलखा, पूना (महाराष्ट्र)	२५०
१६.	श्री कस्तूरचन्द जैन, जमुनानगर, हरियाणा	१०१
१७.	श्री पवनकुमार जैन, जयपुर (राजस्थान)	१०१
		कुल जोड़—९००५

सम्पर्कसूत्र : **ब्राह्मी-कलासदन**
मैन रोड
पो०—राजगृह (नालन्दा-विहार)

'जहा संखम्मि पयं, निहियं दुहओ वि विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं ॥

A milk put into a shell shines with a doubled brilliancy. So do the piety, fame and knowledge of a very learned monk.
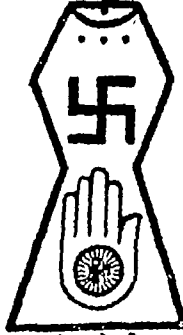
आयं न कुज्जा, इह जीवियट्ठा, असज्जमाणो य परिव्वएज्जा ।
निसम्मभासी य विणीय गिद्धिं, हिंसन्नियं वा न कहं करेज्जा ।।

He should not expose himself to guilt by his desire for life, but he should wander about without any attachment. Speaking after due consideration, and combating his worldly desires, he should do nothing that involves injury of living beings.
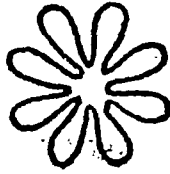
तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागं वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥

Therefore a wise man should know the different Subdivisions of these *Karmas* and should exert himself to prevent and destroy them.
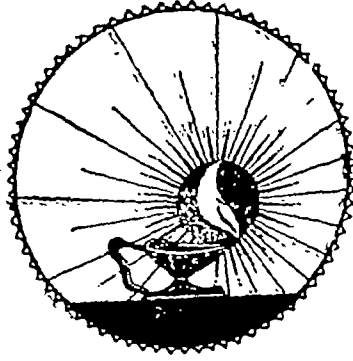
श्रमण भगवान् महावीर

की निर्वाण-शताब्दी

का महान् स्मारक

वीरायतन, राजगृही

प्रगति पथ पर बढ़ता रहे

शुभ कामनाओं सहित—

दे स रा ज जै न

अबोहर (पंजाब)

वीरायतन, राजगृही

का सांस्कृतिक-कक्ष

ब्राह्मी कला सदन

जैन संस्कृति को साकार रूप देने में

सफल बने

शुभ कामनाओं सहित—

दौलत राम छोग मल जैन

अबोहर (पंजाब)
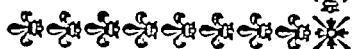
तीर्थंकर महावीर ने कहा—

माणविजएणं मद्दवं जणयइ माणवेयणिज्जं
कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

By conquering pride he obtains simplicity ; he acquires no Karman productive of pride, and destroys the Karman he had acquired before.

तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥

The first item among them as proclaimed by Mahavira is complete rational non-injury which is characterized by a self-restraint with regard to all living organisms.
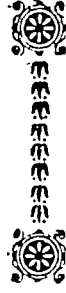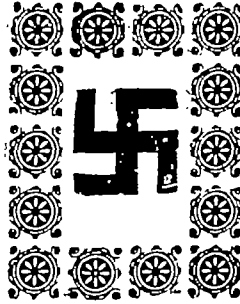
'अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥'

A great sage should not eat for the shake of the pleasant taste of the food but for the sustenance of life, being not dainty nor eager for foodfare ; restraining his tongue, and being without cupidity.

भ० महावीर का

संधए साहुधम्मं च, पावधम्मं निराकरे।
उवहाणवीरिए भिक्खू, कोहं माणं न पत्थए॥

He acquires good qualities, and leaves off bad qulities; a monk, who vigorously practises austerities, avoids anger and pride.
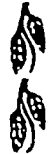
श्रमण भगवान् महावीर

की

पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी

की स्मृति में

वीरायतन, राजगृही

की प्रगति के लिए

हार्दिक शुभ कामनाएँ

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाई।
जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंति अ बंभचेरंच॥

जो ढलती हुई उम्र में भी संयम के मार्ग पर चल पड़ते हैं, और तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य को प्रिय समझकर उनका आचरण करते हैं, वे भी शीघ्र ही अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं।
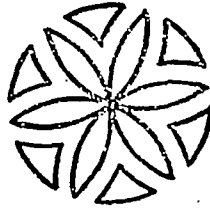
'सच्चस्स आणाए उवट्ठिओ मेहावी मारं तरइ'

सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहने वाला मेघावी साधक मृत्यु को पार कर जाता है!

भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दी के
उपलक्ष्य में श्रद्धांजलि अर्पित

卐卐卐卐卐卐卐卐卐

卐卐卐卐卐卐卐卐卐

छुट्टनलाल धन्नालाल भंसाली

जयपुर-३, दिल्ली—६

'एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मोक्खो'

धर्म का मूल विनय है, और मोक्ष उसका अन्तिम फल है।
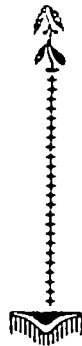
नेमीचन्द बैद

एवं समस्त परिवार
पीतलियों का चौक, जौहरी बाजार
जयपुर-३०२००३

'खमावणयाए पल्हायणभावं जणयइ'
क्षमापना से आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूति होती है।

'अर्णुचितिय वियागरे'

जो कुछ बोले, पहले विचार कर बोले।

'सरल आत्मा ही शुद्ध होती है
और शुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है। —भगवान् महावीर

With best Compliments From :

Himat Lal Jagani

No. 203/1 M. G. ROAD
(3RD FLOOR)
CALCUTTA-7

Phone : 331541

मानव ! तू अपने आप को वश में कर।
इस प्रकार तू दुःखों से छुटकारा पा जायगा।

—भगवान् महावीर

With Best Compliments From :

Nand Lal Kothari

CARD BOARD BOX MFG. CO.
41, Chowringhee Road.
CALCUTTA-16
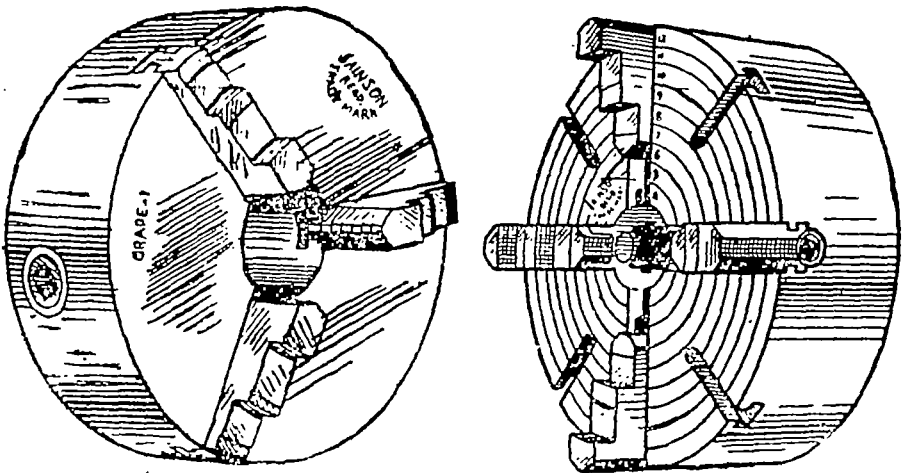
थोवाहारो थोवभणिओ य, जो होइ थोवनिद्दो य।
थोवोवहि-उवगरणे, तस्स हु देवा पणमंति॥

जो साधक अल्पाहारी, अल्पभाषी, अल्पशायी, अल्पपरिग्रही-सीमित सामग्री वाला है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं।
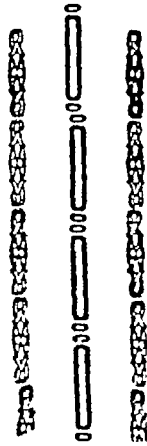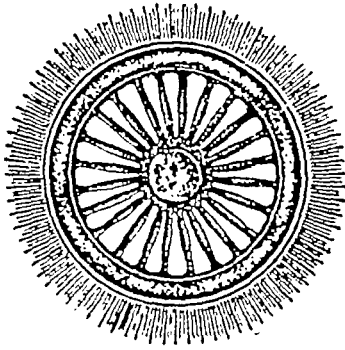
अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए।
अतीरंगमा एए नो य तीरं गमित्तए॥
अपारंगमा एए नोय परि गमित्तए।

जो वासना के प्रवाह को नहीं तैर पाए हैं, वे संसारप्रवाह को नहीं तैर सकते।

जो इन्द्रियजन्य कामभोगों को पार कर तट पर नहीं पहुँचे हैं, वे संसारसागर के तट पर नहीं पहुँच सकते।

जो रागद्वेष को पार नहीं कर पाए हैं, वे संसारसमुद्र से पार नहीं हो सकते।
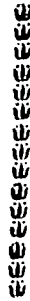
तीर्थंकर
महावीर
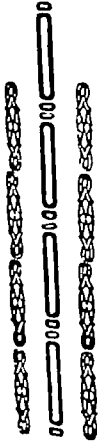
समग्र विश्व को जो समभाव से देखता है, वह न किसी का प्रिय करता है और न किसी का अप्रिय। अर्थात् समदर्शी अपने-पराये की भेदबुद्धि से पर होता है।

'He who looks at the world with perfect impartiality and equanimity, neither favours nor disfavours anybody. In other words, he transcends the petty differences of self and non-self.'
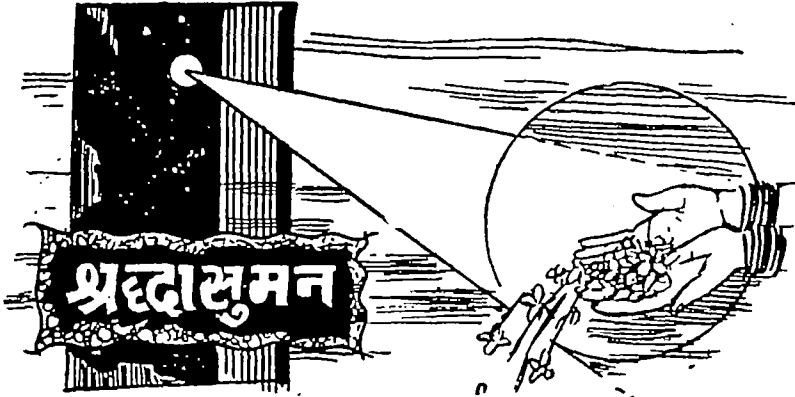
उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे।

मायमज्जवभावेण लोभं संतोसओ जिणे ॥

—दशवैकालिक-८।

भगवान् महावीर ने कहा है—

क्रोध को क्षमा से
मान को विनय से
कपट को सरलता से
लोभ को संतोष से
जीत कर सुखी बनो।

जल में पद्म की तरह निर्मल प्रभु वीर के चरणों में
शत शत वंदना !
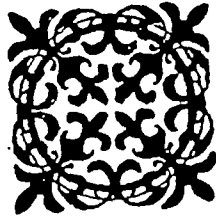
जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ।।

बुढ़ापा और मरण के महाप्रवाह में डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा=आधार है, गति है और उत्तम शरण है।

दीपपर्व के अवसर पर
अन्तर्हृदय के दीप जला कर
विश्वदीप भ० महावीर के
चरणों में कोटि कोटि वन्दना
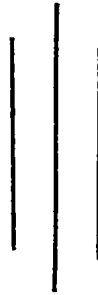
चत्तारि परमंगाणि
दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुइ सद्धा
संजयम्मि वीरियं।

—उत्तराध्ययन

इन चार बातों का मिलना दुर्लभ है—मनुष्यत्व, सद्‌वचन (शास्त्र) का सुनना, सुने हुए धर्मतत्व पर श्रद्धा और संयम, आचरण के लिए पुरुषार्थ करना।

✻

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो॥

शरीर को नाव कहा है, आत्मा उसका नाविक कहलाता है। संसार को समुद्र बतलाया है; जिस संसारसागर को महर्षिजन पार करते हैं।

एगो अहमंसि, न मे अत्थि कोई,
न वाहमवि कस्स वि।
एवं से एगागिणमेव,
अप्पाणं समभिजाणिज्जा ।।

मैं अकेला हूँ। मेरा कोई नहीं है; और न मैं ही किसी का हूँ। इस प्रकार साधक अपने को अकेला ही समझे।

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है। अहिंसा सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है; विज्ञान केवल इतना ही है।

—भगवान् महावीर

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ॥

जो जो रात और दिन बीत जाते हैं, वे फिर कभी लौट कर नहीं आते। जो मनुष्य धर्म करता है, उसके ये रात और दिन सफल हो जाते हैं।

—भगवान् महावीर

'ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान और मोह
के विवर्जन से तथा राग और द्वेष के क्षय से,
आत्मा एकान्तसुख-स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।'

'Through all pervading light of knowledge, through relinquishing of ignorance and attachment and through severance of passsion and animosity, human soul can attain all-blissful *moksha*.'

भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दी का पवित्र दिवस सबके लिए मंगलकारी हो !

सादर अभिनन्दन

निर्वाण-शताब्दी पर वीर प्रभु तेरी,
पावन हो रहा विश्व का कण-कण !
दीपावली की शुभ अमृतबेला में,
प्रभु तेरे ही गुण गाए प्रति जन-जन !
हे दयालु कृपालु त्रिशलानन्दन,
स्वीकार करो तुम मम अभिनन्दन !
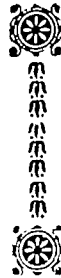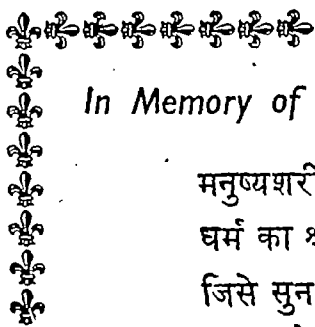
In Memory of Shri Jhaverchand Panachand Mehta

मनुष्यशरीर प्राप्त होने पर भी
धर्म का श्रवण दुर्लभ है ;
जिसे सुन कर जीव तप,
क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं ।

'Even in human life it is not easy to hear religious preachings through which man learns to practise penance, forgiveness and *ahimsa*.'
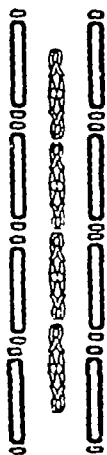
Shri M. J. Mehta

3, Allemby Road

Calcutta-20
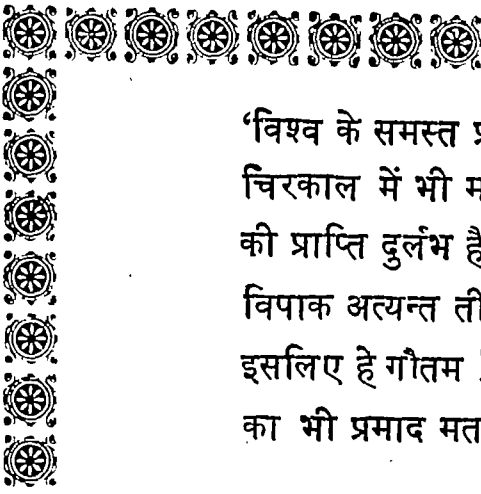
'विश्व के समस्त प्राणियों को
चिरकाल में भी मनुष्यजन्म
की प्राप्ति दुर्लभ है। कर्मों का
विपाक अत्यन्त तीव्र है।
इसलिए हे गौतम ! समयमात्र
का भी प्रमाद मत कर।'

'All creatures of the world cannot get human life even in the course of eternity. *Karmas* are very powerful. Therefore, O Gautam, don't have any illusions even about time.'

तीर्थंकर महावीर का
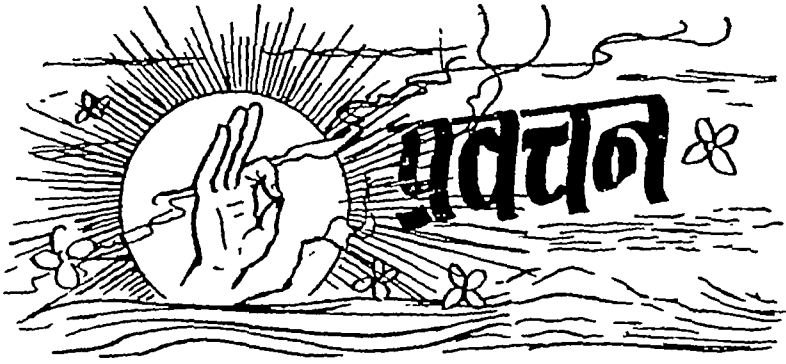
'जो व्यक्ति धर्म में दृढ़निष्ठा रखता है, वही वास्तव में बलवान है, वही शूरवीर है। परन्तु जो धर्म में निरुत्साही होता है, वह वीर और बलवान होते हुए भी न वीर है, न बलवान है।'

'He who has unshakable faith in his religion is really a brave man, a warrior, but he who is sceptical about his religion is neither strong nor brave despite all his claims for bravery and strength.'
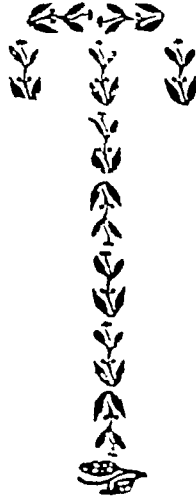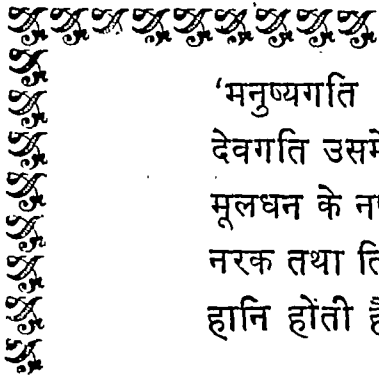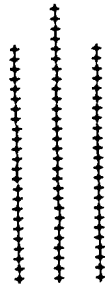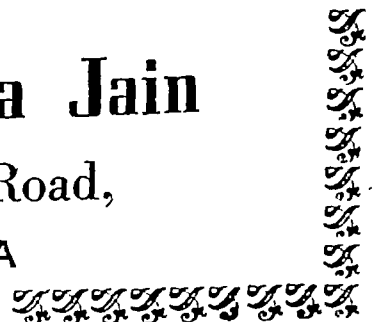
'बुद्धिमान ऐसी भाषा बोले, जो हितकारी हो एवं अनुलोम-सभी को प्रिय हो।'

'A wise man would speak a language that is beneficial and sweet to all.'
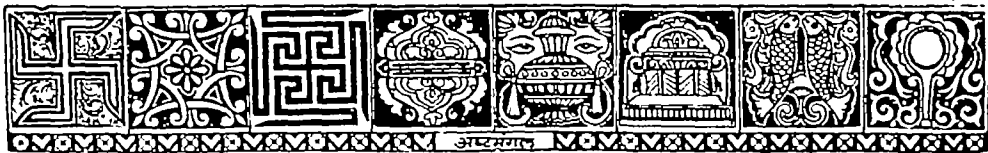
'जिसकी दृष्टि सम्यक् है, वह कभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होता।'

'He whose outlook is broad would never falter or stumble on the path of life.'

'निष्कामभाव से दान देने वाले
और निःस्पृह होकर साधनामय जीवन जीने वाले
दोनों ही सद्गति प्राप्त करते हैं।'

'Those who give charities in a detached spirit as well as who lives a disciplined life without attachment attain salvation.
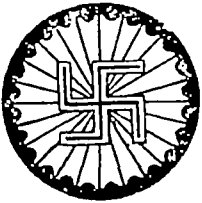
'जिस काल (समय) में जो कार्य करना हो,
उस काल में वही कार्य करना चाहिए।'

'What you undertake to do at a particular time, do that alone with all your might.'

'ऐसा सत्य बोलना चाहिए, जो
हित, मित और ग्राह्य हो ।'

'Speak the truth that is beneficial, sweet,
and acceptable to all.'

'समाधि (सुख) देने वाला
उसी प्रकार की समाधि
(सुख) पाता है।'

One, who gives 'the kind of happiness to others, receives the same in return."
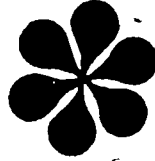
'नरदेव ! एक धर्म ही रक्षा करने वाला है।
उसके सिवाय विश्व में मनुष्य का त्राता कोई नहीं है।'

'Religion is the only saviour of man : nothing else can provide shelter to man in the world.'

प्रिय (अच्छा) करने वाले और प्रिय वचन बोलने वाले अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में अवश्य सफल होते हैं।'

'Those who do noble deeds and speak sweet words are sure to succeed in achieving the goal of their life.'
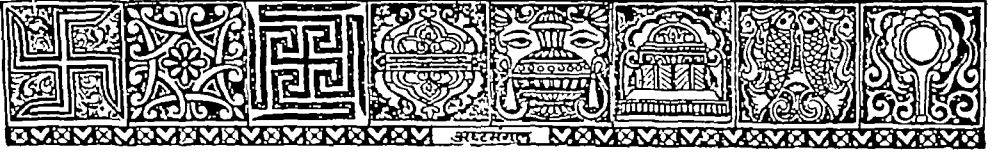
'हर कहीं हर किसी वस्तु में मन को मत लगा बैठिए।'

'Don't give away your heart to everything everywhere.'

करोड़ों जन्मों के संचित कर्मों को साधक तपस्या के द्वारा क्षीण कर देता है।'

'Through hard penance an ascetic can liberate himself of all his *Karmas* accumulated through millions of lives'.

'असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए।'

भगवान् महावीर का

सामाइयमाहु तस्स जं जो अप्पाणं भएण दंसए।

समभाव उसी को रह सकता है, जो अपने को हर किसी भय से मुक्त रखता है।
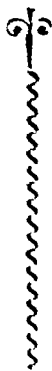
शरद सुधीर एण्ड कं०

बारा गनगौर का रास्ता

जौहरी बाजार

जयपुर-३०२००३

बैंकर्स —युनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, जयपुर

बैंक ऑफ इंडिया, जयपुर और बम्बई

केवल—ACHELOG

धम्मस्स मूलं विणयं वदंति, धम्मो य मूलं खलु सोग्गाइए।

धर्म का मूल विनय है और विनय का मूल सद्गति है।

२५००वें

निर्वाण महोत्सव पर

भगवान् महावीर

के प्रति

श्रद्धासुमन

इन्दरजीत सिंह

१३३/८२२ किदवई नगर

एम. ब्लॉक

कानपुर (उ० प्र०)

भगवान् महावीर का
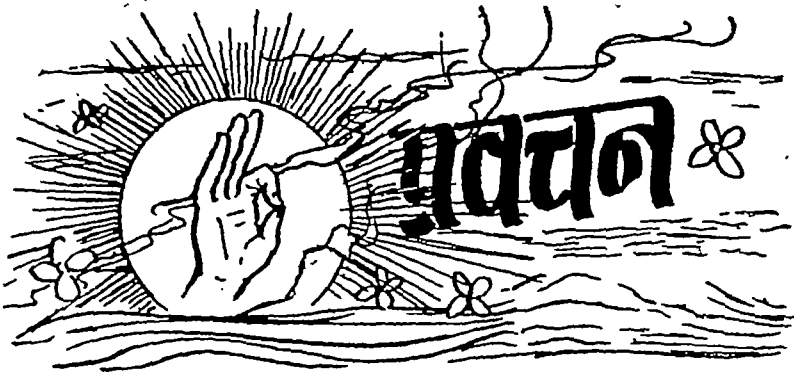
'कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे
बलाबलं जाणिय अप्पणो य'

अपने बल और निर्बलता को भलीभाँति जान कर यथावसर यथोचित कर्त्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र में विचरण करिए।

—भगवान् महावीर
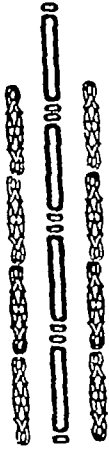
तीर्थंकर महावीर

ने कहा—

एगमवि मायी कट्टु आलोएज्जा
जाव पडिवज्जेज्जा अत्थि तस्स आराहणा

प्रमादवश हुए कपटाचरण के प्रति पश्चात्ताप करके जो सरल हृदय हो जाता है, वह धर्म का आराधक है।

गुरुदेव तुम्हें नमस्कार बार-बार है !

सयमेव कडेहिं गाहइ, नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं

आत्मा स्वयं अपने कर्मों से ही बन्धन में पड़ता है।
कृत कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं है।

भगवान महावीर

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थंभा कोहा पमाएणं रोगेणालस्सएण वा ॥

अहंकार, क्रोध, प्रमाद (विषयासक्ति), रोग और आलस्य, इन पाँच कारणों से व्यक्ति शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकता।

पुरुष तू ही स्वयं अपना मित्र है, तू बाह्य जगत् में मित्र क्यों ढूंढता है ?

जो व्यक्ति प्रमादी-गाफिल है, उसे सर्वत्र भय है । अप्रमत्त और सतर्क रहने वाले के लिए कहीं भी भय नहीं ।

'जत्थेव धम्मायरियं पासेज्जा
तत्थेव वंदिज्जा नमंसिज्जा ।'

जहाँ कहीं भी अपने धर्माचार्य को देखे,
वहीं उन्हें वन्दना-नमस्कार करना चाहिए ।

भगवान् महावीर स्वामी की पच्चीसवीं निर्वाण-
शताब्दी पर शुभकामनाओं सहित

उन्नति, अभिवृद्धि, उपयोगिता, जनसहयोग एवं
जनसेवा पर अविलम्बित

श्री महावीर जैन पुस्तकालय, हाथरस

पथ में कांटे बिछे हुए हैं,
बिजली गिरती हो ऊपर से !
वीर विहंसता, चलता जाए,
दृष्टि न भटके मंजिल पर से

—उपाध्याय अमरमुनि

शुभ कामनाओं सहित-

श्री सुन्दर-सत्संग-भवन : हाथरस

आगरा रोड
हाथरस (उ०प्र०)

प्रबन्धक
शकुन्तलादेवी जैन

महाश्रमण भगवान् महावीर के चरणों में

उनकी २५वीं निर्वाण-शताब्दी

के

अवसर पर

श्रद्धांजलि अर्पित

भूपतभाई कामानी

कलकत्ता

भगवान् महावीर के चरणों में
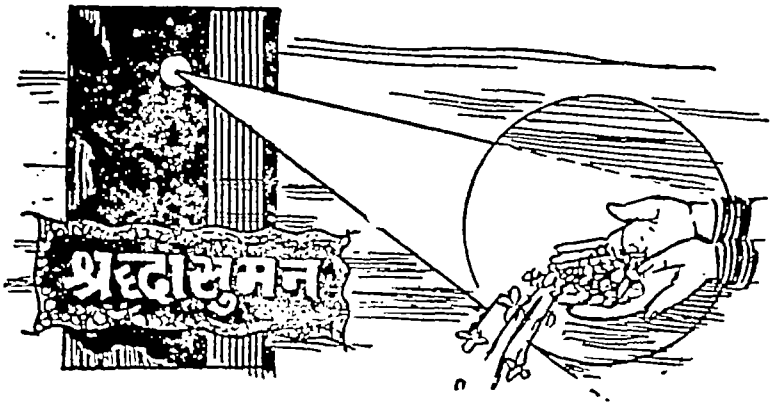
जयंतीलाल बदानी

कलकत्ता
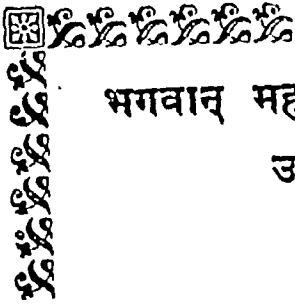
भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी के
उपलक्ष में श्रद्धांजलि समर्पित है

卐卐卐卐卐卐卐

स्व० श्री रामलालजी जैन

[मे०के०डी० रामलाल एण्ड कं० दिल्ली]

श्रद्धा-पुष्प

यह ठीक है कि जिसने जन्म लिया है, उसका मरण अवश्यम्भावी है। प्रकृति के इस अटल-विधान का आज तक कोई परिवर्तन नहीं कर पाया। परन्तु कुछ ऐसी धर्मनिष्ठ आत्माएँ होती हैं, जिनके प्रभावशील व्यक्तित्व की अमिट छाप समाज के हृदय पर तब भी वनी रह जाती है, जब वे असार संसार को छोड़ कर किसी अन्य लोक में चले जाते हैं। श्री रामलाल जैन ऐसे ही प्रभावशील एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, जिनका प्रभावशील व्यक्तित्व समाज के लिये सदा अविस्मरणीय रहेगा। पाकिस्तान वनने से पूर्व जब आप लाहौर में रह रहे थे, तभी से समाज-सेवा के कार्यों में आप अग्रणी रहे। आप पदलोलुपता से दूर रह कर अपने कर्त्तव्य की पुण्यप्रेरणा से प्रेरित हो कर एक मौनसाधक के रूप में सेवा के पुनीत कार्यों में लीन रहते थे, परन्तु आपकी सेवा सदा सबके लिए आदर्श वनी रही है और आज भी है।

आपके औदार्य और दानशीलता की चर्चा आज भी देहली के जैन-जगत् की वाणी का प्रमुख स्वर है। एस०एस० जैन महासभा पंजाब (उत्तरी-भारत) के निमन्त्रण पर आप जब चण्डीगढ़ आए थे, उस समय का आपका उदारता से भरा दान-परायणता से सम्पन्न एक-एक शब्द आज भी हमारे कानों में गूंज रहा है।

२७ अगस्त १६७४ को जैसे ही आपके स्वर्गवास का समाचार प्राप्त हुआ तभी हम सब शोकविह्वल हो गए। कर्म-विधान के समक्ष सबने घुटने टेक दिये। आज हम उन्हीं की स्मृति में शासनेश प्रभु महावीर का ध्यान करते हुए हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी स्वर्गीय आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें और उनके परिवार को उनके आदर्शों के अनुरूप चलने की प्रेरणा दें, उनके अपूर्ण कार्यों को पूरा करने की भावना एवं उनके असह्य वियोग को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

—: शोक-विह्वल :—

भोजराज जैन प्रधान,
हीरालाल जैन महामन्त्री
श्री महावीर जैन संघ, पंजाब।

टी० आर० जैन प्रधान,
मूलराज जैन महामन्त्री
एस० एस० जैन सभा पंजाब [उत्तरी भारत]

卐卐卐卐

स्व. लाला कुंजलाल जी कविश्री जी के शब्दों में सच्चे जैन एवं सच्चे श्रावक थे। उनका जीवन धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित था। जैन समाज में शिक्षाप्रचार के लिए वे प्रारम्भ से प्रयत्नशील रहे। वे श्रीमहावीर जैन हाईस्कूल, नई सड़क देहली के २० वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे। सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा की कार्यकारिणी के सदस्य रह कर साहित्यप्रचार में सदा प्रेरणा देते रहे।

व्यापारिक क्षेत्र में भी उनका बहुत अच्छा सम्मान था। सदर बाजार व्यापार एसोसिएशन के मंत्री तथा थ्रेडबॉल मेन्युफेक्चरिंग ऐसोसिएशन के पहले मन्त्री फिर अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने व्यापार में ईमानदारी एवं सच्चाई की प्रतिष्ठा की।

स्व. लाला कुंजलाल जी ओसवाल

जैन समाज के विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए सहयोग, गरीब भाइयों को रोजगार एवं पीड़ितों की चिकित्सा आदि उनकी सेवा के मुख्य कार्य थे।

जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने अपने पूज्य माता-पिता की स्मृति में 'श्री वासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेबिल ट्रस्ट' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य है शिक्षा, चिकित्सा एवं सार्धमिभाइयों की सेवा के लिए सहयोग करना। ट्रस्ट की सम्पत्ति वर्तमान में लगभग ८ लाख रु० के मूल्य की है।

स्व. लाला कुंजलालजी के उच्च आदर्श एवं सुन्दर संस्कार आज उनके सुपुत्रों—श्री शीतलप्रसाद जी एवं श्री देवेन्द्रकुमार जी तथा सुपुत्रियों श्रीमती शांतिदेवी एवं श्रीमती कमलादेवी के जीवन में भी साक्षात् देखे जाते हैं।

श्रमणशिरोमणि भ० महावीर के आप परम भक्त थे। आपकी अगाध श्रद्धा भ० महावीर के सिद्धान्तों और उपदेशों पर रही। आज भ० महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में उनके और उनके समस्त परिवार की ओर से श्रद्धांजलि समर्पित :

श्री बासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेबिल ट्रस्ट देहली

तिविहे भगवया धम्मे पण्णत्तो, तंजहा—
सुअहिज्जिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए।
जया सुअहिज्जियं भवइ, तया सुज्झाइयं भवई
जया सुज्झाइयं भवइ, तया सुतवस्सियं भवई ॥
से सुअहिज्जिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए
सुयक्खाएणं भगवया धम्मे पन्नते ॥

—स्थानांग सूत्रम्—२९६ सू०

भगवान् ने तीन प्रकार से संयुक्त मार्ग को धर्म कहा है। उस वस्तु का भलीभाँति अध्ययन करना, उसका भलीभाँति ध्यान करना तथा उसके लिए भलीभाँति तप करना। पहले किसी पदार्थ का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया जाता है, तब उसका ध्यान तो होता ही है; और अच्छी तरह उसके सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद उसके लिए कष्ट सह कर प्राणप्रण से जुटने से तपस्या भी हो जाती है।
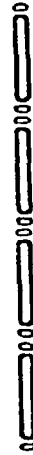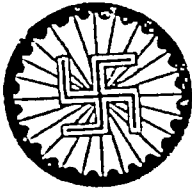
शुभ कामनाओं सहित—

बहादुरचन्द विद्यारतन जैन

पो०— हनुमानगढ़
जि०—गंगानगर
(राजस्थान)

++

पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए

पहले ज्ञान और फिर दया; सर्वसंयमी के जीवन में यही क्रम है।

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा।
एयाणि वंता अरहा महेसी, न कुव्वई पावं न कारवेइ ।।

क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार अन्तरात्मा के भयंकर दोष हैं, इनका पूर्णतः त्याग करने वाले अर्हन्त महर्षि न स्वयं पाप करते हैं, और न दूसरों से करवाते हैं।

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं ।

जो व्यक्ति प्रमादी है, उसे सर्वत्र भय है । अप्रमत्त और सतर्क के लिए कहीं भय नहीं है ।

जे अणण्णारामे से अणंतदंसी ।

जो साधक मोक्ष के सिवाय कहीं रुचि नहीं रखता, वही अटल श्रद्धा वाला माना गया है ।

नाणं नरस्स सारं, सारो वि नाणस्स होइ सम्मत्त ।
ज्ञान मानवता का सार है, लेकिन ज्ञान का भी सार है—
सम्यक्त्व—सच्ची आत्मश्रद्धा ।

'से सुयं च अज्झत्थं च मे, बंधपमोक्खो अज्झत्थमेव' ।
मैंने सुना है, और अनुभव किया है, कि बन्ध और मोक्ष
तुम्हारी आत्मा पर ही निर्भर है ।

ने कहा–

देवा वि सइंदगा न तित्ति न तुट्ठि उवलभंति

देवता और इन्द्र भी इन भोगों से न कभी तृप्त होते हैं और न कभी संतुष्ट।
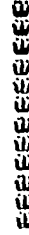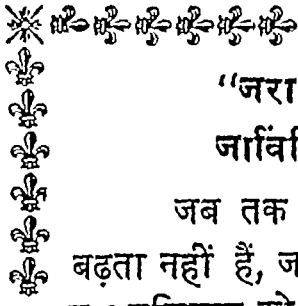
"जरा जा वन पीडेइ, वाही जा वन वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥"

जब तक बुढ़ापा आता नहीं है, जब तक व्याधियों का जोर बढ़ता नहीं हैं, जब तक इन्द्रियाँ (कर्तृत्वशक्ति) क्षीण नहीं होती; तभी तक बुद्धिमान को, जो भी धर्माचरण करना हो, कर लेना चाहिए।

महाश्रमण भगवान् महावीर के चरणों में
समस्त बडेर-परिवार का कोटि-कोटि वन्दन !
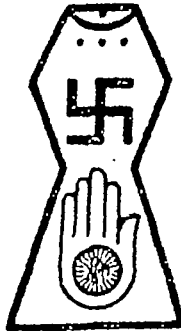
पूनमचन्द बडेर

बडेर भवन
नथमलजी का चौक, जौहरी बाजार
जयपुर-३

बलं थामं च पेहाए सद्धामारुग्गमप्पणो
खेत्तं कालं च विन्नाय तहप्पाणं निउंजए ।

अपना मनोबल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा, स्वास्थ्य, क्षेत्र और काल को ठीक तरह से परख कर ही अपने को किसी भी सत्कार्य में साधक नियोजित करे ।

जल में पद्म की तरह निर्मल प्रभु वीर के चरणों में
शत शत वंदना !
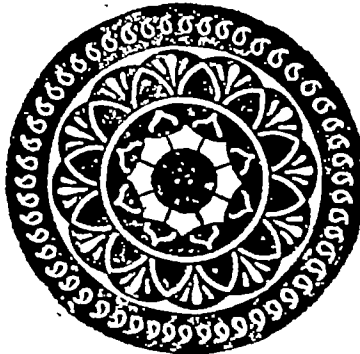
सुराणा चेरिटेबिल ट्रस्ट
हनुमान का रास्ता, जौहरी बाजार
जयपुर-३

वियाणिया अप्पगमप्पएणं
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ।

जो अपने को स्वयं अपनी अनुभूति से जान कर राग-द्वेष के विषम प्रसंगों में भी सम रहता है ! इधर-उधर विचलित नहीं होता, वही महनीय है ।

'संबुज्झमाणे उ नरे मइयं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइं दुहाइ मत्ता, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ।।

स्वयं दीपक होने पर बुद्धिमान व्यक्ति हिंसकभाव से होने वाले दुखों की कल्पना से परिचित हो कर बुरे कर्मों को स्वतः छोड़ देगा ।

'स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।'

—भगवान् महावीर
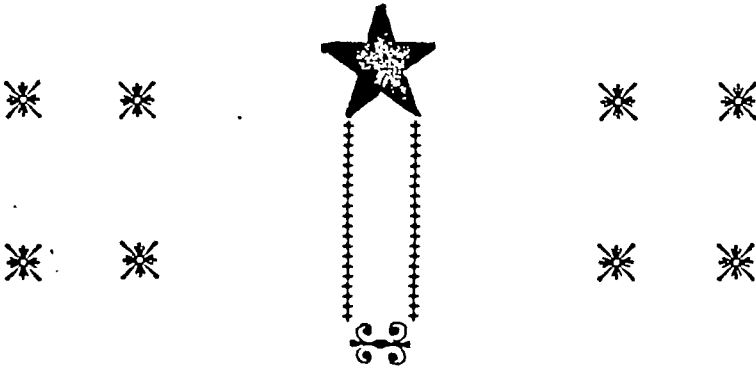
'धीर पुरुष ! भोगों की आशा तथा लालसा छोड़ दो।
तू स्वयं इस मोह को ले कर क्यों दुःखी हो रहा है ?

—भगवान् महावीर

मियं भासेज्ज पण्णवं
बुद्धिमान थोड़ा बोले।

'धीरो ! मुहुत्तमपि णो पमायए,
वओ अच्चेइ जोव्वणं च।'

धीर ! एक मुहूर्त (क्षण) का भी प्रमाद मत कर।
तेरी आयु बीत रही है, यौवन ढल रहा है।

भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी पर सहस्रकलाओं
से युक्त जीवन बने, यही हार्दिक मंगल कामना

पुढो छंदा इह माणवा, पुढो दुक्खं पवेइयं ।

संसार में लोग भिन्न-भिन्न अभिप्राय वाले होते हैं ।
अपना-अपना दुःख सबको स्वयं ही भोगना पड़ता है ।
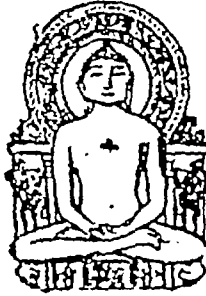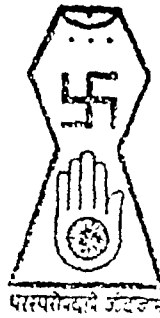
न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
अप्पियस्साविं मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई॥

सुशिक्षित व्यक्ति न किसी पर दोषारोपण करता है और न किन्हीं परिचितों पर कुपित ही होता है। और तो क्या मित्र से मतभेद होने पर परोक्ष में उसकी भलाई की ही बात करता है।

1emory of Shri Jhaverchand Panachand Mehta

मनुष्यशरीर प्राप्त होने पर भी
धर्म का श्रवण दुर्लभ है ;
जिसे सुन कर जीव तप,
क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं ।

'Even in human life it is not easy to hear religious
hings through which man learns to practise penance,
/eness and *ahimsa.*'